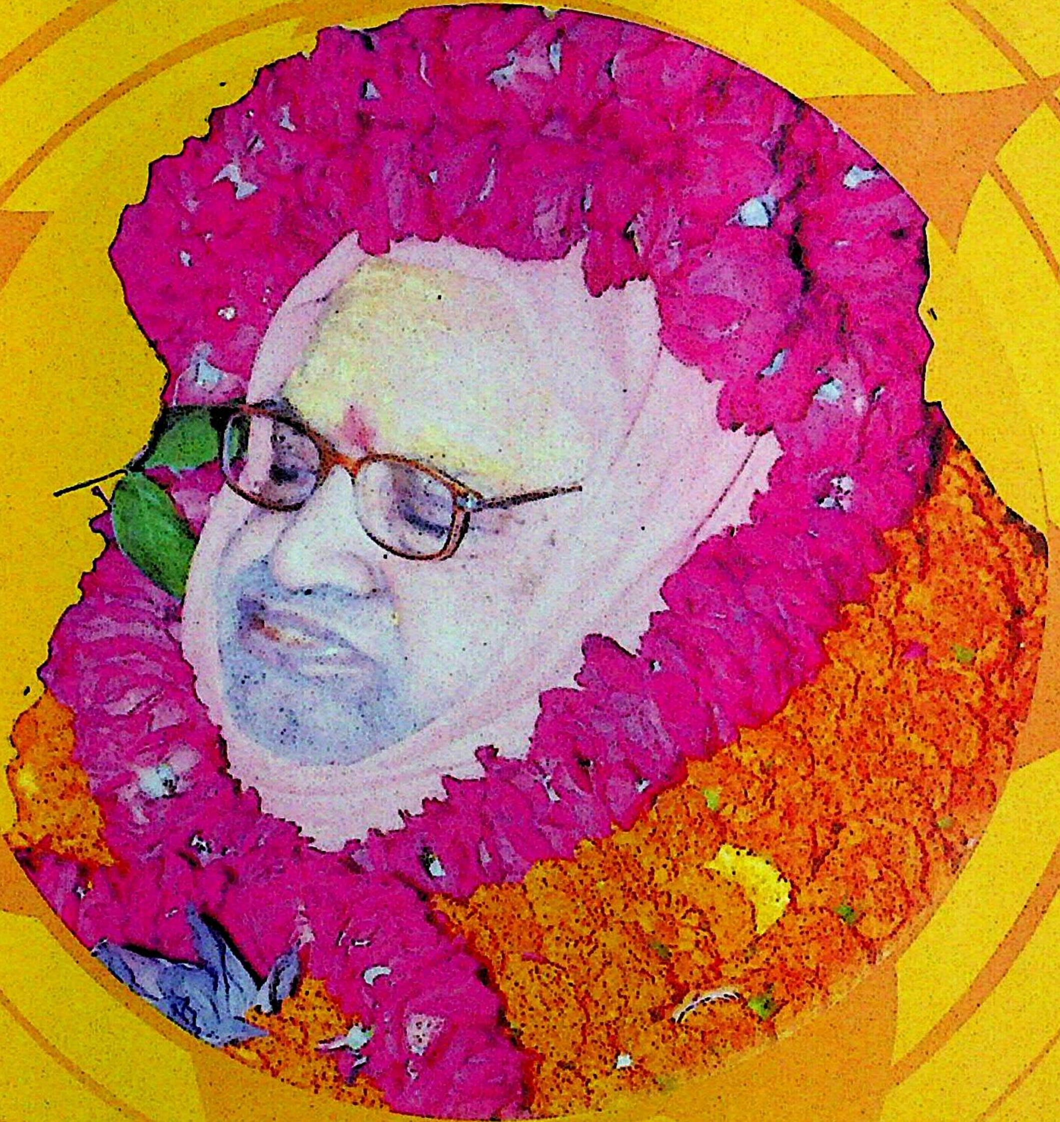
भक्तिमणिः

(स्वयंप्रभा)



ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज

सम्पादक- डॉ. प्रेमप्रकाश लक्कड़

महापुरुष का प्रसाद

॥ ॐ ॥

भक्तिमणिः

(स्वयंप्रभा)

संकलकः–

ब्रह्मलीनब्रह्मर्षिश्रीलक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराजः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव।

टीकाकारः–

डॉ. प्रेमप्रकाशलक्कड़ः

प्रकाशक–
राकेश कुमार, विनोद कुमार
498/28 साउथ सिविल लाइन,
मुजफ्फरनगर, उ.प्र. – 251001
फोन नं. : 09359984709

प्रथम संस्करण :विजयादशमा अक्टूबर 2016

सन्तावतार अनन्तश्री समलङ्कृत साङ्गत्रयी तत्त्वज्ञ, वात्सल्योदधिस्वरूप पूज्य सद्गुरुदेव ब्रह्मलीन ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज का आविर्भाव स. १९७३ कार्तिक वदी एकादशी (रमा एकादशी) एवं ब्रह्मलीन स. २०६९ श्रावण शुक्ल द्वादशी को उन्हीं स्वेष्टदेव के पवित्रतम निर्वाणलब्ध पादारविन्दों में वैकुण्ठवासी अपने पूज्य माता-पिता (श्रीमती शकुन्तला देवी तथा लाला आनन्द प्रकाश जी) की पुण्यस्मृतिप्रवाहरूप सुरसरिता में अवगाहित-श्रद्धार्द्र सिंघल परिवार की ओर से अचिन्त्य गुणगणमणि सम्पन्न भक्तिमणि रूपात्मक (ग्रन्थ) यह प्रसूनाञ्जलि समर्पित करते हुए विनयावनत हैं—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण प्रीतिभावेन, प्रसीद परमेश्वर ॥

मूल्यम् : प्रेम योग्यता च

मुद्रक–
रेनबो प्रिंटर्स
सिद्धगिरिबाग, वाराणसी।
Phone : 0542-2400663
email- rainbowprinters99@gmail.com

अद्वितीय प्रतिभा के धनी हमारे महाराजश्री

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै स्वेष्टदेवस्वरूपिणे ।

यस्य वाक् सकलं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

अनादि काल से (पुण्यातिपुण्यमयी सकल ब्रह्माण्ड की संपोषिका) यह भारतभूमि अपनी तप:पूत सन्तसन्तति के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में अपनी गरिमा महिमा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ रही है। अपने सच्चारित्र्य आलोक से जगत् के अज्ञान तिमिर को ध्वस्त करने वाले महापुरुषों में अन्यतम पूज्यश्रीस्वामी लक्ष्येश्वराश्रमजी महाराज।

पूज्यश्री का पादुर्भाव जनपद हरदोई के मोहन्दीपुर नामक गांव में सं. १९७३ कार्तिक कृष्ण एकादशी को अग्निहोत्रनिरत कान्यकुब्जीय विप्रप्रवर भोलानाथ जी के पुत्र श्रीनन्हा जी के घर पूर्वदिशारूपी इन्द्रयाणी की पावनतम कोख से हुआ। इन बालदिवाकर का शैशवकालीन नाम हुआ लालविहारी (दुई=दोई=द्वित्व=द्विर्भाव=द्वैत का जो हरण कर ले वह पवित्र अद्वैतमयी भूमि है हरदोई, मोहं दीपयति ज्वालयति इति मोहन्दी-मोह ममता को जलाकर भस्म कर दे वह जन्मभूमि मातृभूमि है मोहन्दीपुर) इन भावी महामनीषी के नैसर्गिक अद्वैतनिष्ठ मोहग्राह-निर्मुक्त स्वभाव के संपोषणार्थ ही दैव ने अल्प सांसारिक संरक्षक पिता का विप्रलम्भ करा दिया। पारिवारिक असहज वातावरण से हटाकर माता इन्हें लखनऊ ले आयीं, वहाँ योगेश्वर मठ के महन्त योगेश्वरानन्द जी के सम्पर्क में पूज्यश्री बीजभाव से वृक्षभाव की यात्रा पर निर्द्वन्द्व भाव से बढ़ने लगे; प्रथमा उत्तीर्ण कर अन्त:सुप्त वैराग्य जागृत हो व्यवहारिक जगत् में साकार हुआ और नाम पड़ा शान्तानन्द। तदनन्तर महाराजश्री ने सीतापुर में पं. मधुसूदन दीक्षितजी के आश्रय में आयुर्वेदिक ज्ञान प्राप्त किया। इसके अनन्तर वात्सल्यमयी मातृछाया भी छिन गयी, भावगम्भीर पूज्यश्री ने माता का शास्त्रोक्त विधि से गोमती तट पर संस्कारादि सम्पन्न कर नारदजी के समान ही स्वयं को अनन्तशक्तिसंबलित ब्रह्म के अनुग्रह से अनुगृहीत माना तथा घर त्यागकर सर्वविध बन्धन विनिर्मुक्त हो पूज्य धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्री जी के द्वारा कानपुर में आयोजित महायज्ञ का (लक्षचण्डी) दर्शन किया। सत्संग की वैराग्यानुवर्धिनी सुरभित त्रिपथगा में अवगाहन की दीक्षा ले ली और योगपट्ट हुआ। स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम जी परिव्राजक के रूप में साक्षात् वैराग्य की प्रतिमूर्ति सदृश प्रतीत होते थे। अर्धकुंभ के अवसर पर हरिद्वार में पूज्य स्वामी भूमानन्दजी से मिलन हुआ तो जन्मान्तरीय पारिवारिक आत्मीयता के संस्कार उद्‌बुद्ध हो उठे और उनमें एकात्मसत्ता का आभास संसार भर ने किया ।

महाराजश्री 'ऋते ज्ञानान् न मुक्ति:' के भाव को मन में संजोये सिरसा-नौहर-कुरुक्षेत्र-हरिद्वार-जयपुर-काशी आदि स्थलों पर ज्ञानार्थ गये। मुमुक्षु भवन, काशी के संस्थापक स्वामी घनश्यामानन्दजी का अन्तरंग भाव प्राप्त होने पर भी सर्वथा असंगतवंती, निष्कल्मष, अपरिग्रही, संन्यास सिद्धान्तों को आचरण द्वारा साकार करने वाले स्वामीजी साधारण वेष में केलि करने

वाले, 'सबके प्रिय सबके हितकारी सुख-दु:ख सरिस प्रशंसा गारी' प्रदर्शन पराङ्मुख तथा द्रव्य निरपेक्ष-यायावर हैं। स्वामी जी सं. २००१ से अब तक ६५ चातुर्मास्यव्रत सम्पन्न कर चुके हैं, हरिद्वार के साथ ही महाराजश्री की कृपा कुरालसी उमरपुर-लुहसाना हुसैनपुर आदि गाँवों पर विशेष रही। स्व. पूरनचन्द्र जी, ठा. लहना सिंहजी, बीराभगतजी, लाल पद्मसैनजी को माध्यम (निमित्त) बनाकर पूज्यश्री हमारे उद्धारार्थ ही इस क्षेत्र में पधारे। उनकी कृपा का अनुभव बाल्यावस्था से आज तक हम करते आ रहे हैं। जैसे बाल रक्षा में माँ, भक्त रक्षा में भगवान् तन्मय रहते हैं, ठीक वैसे ही सद्गुरु भी शिष्य के प्राशस्त्यवर्धन में सचेष्ट रहते हैं (जिमि बालक राखहि महतारी) भिक्षान्नाशी पूज्य स्वामीजी ने शास्त्रों का अनुशीलन करके मननार्थ-लोकोपकारार्थ जो संकलन किया उसे उनकी ही कृपानुमति से प्रकाशित कराया जा रहा है। संयोग की बात है कि जिस दिन पूज्य स्वामीजी से वह संकलन (डायरी) प्राप्त हुआ, उसी दिन डॉ. प्रेम प्रकाश लक्कड़जी, निवर्तमान आयकर आयुक्त (सहसम्पादक कल्याण) से गीता भवन में भेंट हो गयी। उन्होंने वह दिव्य संग्रह देखा और हमारे मन की भावना को अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया— वे बोले-अद्भुत है प्रकाशित कराओ-उन्होंने ही कम्प्यूटरीकृत प्रकाशन का शोधन किया- अद्वितीय द्वितीय संयोग। जिस दिन काशी जी से परिशुद्ध यह संकलन मुजफ्फरनगर घर पहुँचा (उसी दिन त्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी पूज्य महाराजश्री जी के दर्शनार्थ घर पधारे, संकलन को देखा तो देखते ही रह गये। आगे जो भी हुआ उसका प्रभाव 'मणि-प्रभा' के रूप में प्रस्तुत है। तदनन्तर श्री राधेश्याम खेमकाजी (प्रधान सम्पादक गीता प्रेस) के माध्यम से परम सहयोगी के रूप में श्रीकृष्णकुमार खेमका जी प्राप्त हुए और उनके माध्यम से श्री रवि प्रकाश पण्डया जी (रेनबो प्रिन्टर्स,सिद्धगिरिबाग, काशी) से भेंट हुई। इनकी सौम्यता से मन विश्वस्त हो गया कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न होगा। सहज हीं यह सम्पूर्ण कार्य महाराजश्री ने न जाने कैसे करा लिया, हम जान ही नहीं पा रहे हैं—बस इतना समझ पाये हैं कि यह उनका ही कार्य है और उनके कृपा-प्रसाद से सम्पन्न हुआ है। अत: सभी सहभागी- सहयोगी बान्धवों सहित हम इस कार्य को उनके ही श्रीचरणों में समर्पित करते हैं।

प्रस्तोता

पवन कुमार

प्रकाशकीय

हे सद्गुरु आपने मेरे मस्तक पर हाथ रख कर, मुझे सुखी किया है ।

परन्तु वह सुख मैं मुक्तरूप से स्वच्छन्द होकर सदा सर्वथा योग (ऐसी कृपा करें) यह बात सत्य है, तथापि मेरा अनुभव मेरे मुख द्वारा ही कहलवाना ऐसा भी मुराही मनोभाव दृष्टिगत होता है। परन्तु शिव ने सूर्य के हाथ में तेज का सूत्र दिया। उसके प्रकाश से सारे संसार को प्रकाश मिला । सूर्य स्वयं इस प्रकाश का सुख लेने के कारण उस प्रकाश को सारे संसार को दे सका । चन्द्रमा को अमृत दिया वह उसी के काम के लिए है क्या? यहाँ पर कहने का तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा ने अमृत प्राप्त कर अपने शीतल किरणो से सारे संसार को अमृत जैसा प्रकाश दिया । उसी प्रकार समुद्र से मेघों ने जल लेकर उस जल को अपने बादलों से वर्षा करके सारे संसार को दिया । दीपक का प्रकाश दीपक के लिए न रहकर वह समस्त घर को प्रकाशित करता है । आकाश का विस्तार उसके लिए न होकर समस्त जगत के लिए उसका उपयोग होता है। वसन्त ऋतु के आने से वृक्ष अपना विकास कर पत्ते, फुल और फल का दान देने में समर्थ होते है। इसलिए हे गुरुदेव यह आपकी दैवी शक्ति का विशाल औदार्य है। इसमे दैवी कृपा का ही सामर्थ्य है ।

अतः यह जो ग्रन्थ बन रहा है यह सब गुरुदेव का वैभव है । इसमे डॉ० श्री प्रेमप्रकाश लक्कड़ जी (पूर्व चीफ कमिश्नर आयकर) का विशेश स्नेह है ।

पवन कुमार

प्रस्तावना

प्रात:स्मरणीय ब्रह्मविद्वरिष्ठ स्वामी श्री लक्ष्मेश्वराश्रम जी महाराज के द्वारा विभिन्न सद्ग्रन्थों के अवलोकन मनन से संग्रहीत विशाल ज्ञानराशि को सात खण्डों की चिन्तामणि में प्रकाशित कर श्री पवन कुमार जी अग्रवाल ने अनुकरणीय गुरुभक्ति और उदारता का परिचय दिया है, इसके लिए वे अनन्त साधुवाद के पात्र हैं ।

उस विशाल ज्ञानराशि से अद्वैत वेदान्त विषयक सामग्री को टीका सहित ज्ञानमणि शीर्षक से पिछले दिनों उन्होंने प्रकाशित कराया, जिससे ज्ञानमार्ग के जिज्ञासु साधकों को वह दुर्लभ सामग्री एकत्र प्राप्त हो सके।

उसी श्रृंखला में भक्ति मार्ग के जिज्ञासु साधकों के हित में उन्होंने प्रस्तुत भक्तिमणि के प्रकाशन का स्तुत्य संकल्प किया, जो महाराजश्री की अनुकम्पा से पूर्ण हो रहा है। इसमें चिन्त्रामणि के सातों खण्डो में अङ्कित उपासना से सम्बद्ध उद्धरणों का टीका सहित संकलन करने का प्रयास हुआ है। जिज्ञासु साधक इसका लाभ लेंगे तो यह प्रयास सार्थक होगा ।

अकारणकरुण करुणावरुणालय प्रभु की अहैतुकी कृपा का स्मरण करने हुए,

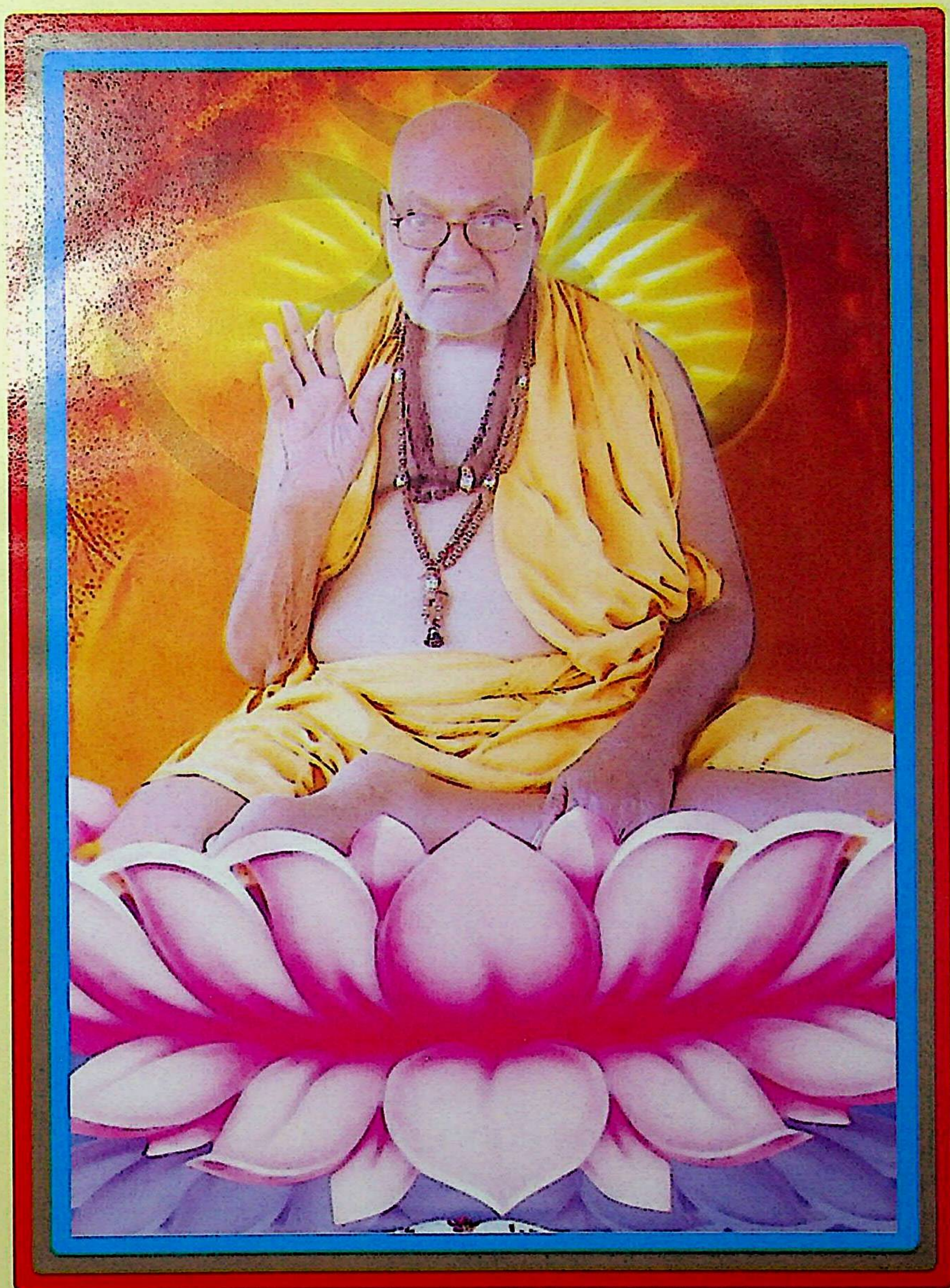
विनयावनत

प्रेम प्रकाश लक्कड़

वाराणसी

श्रावणी पूर्णिमा,

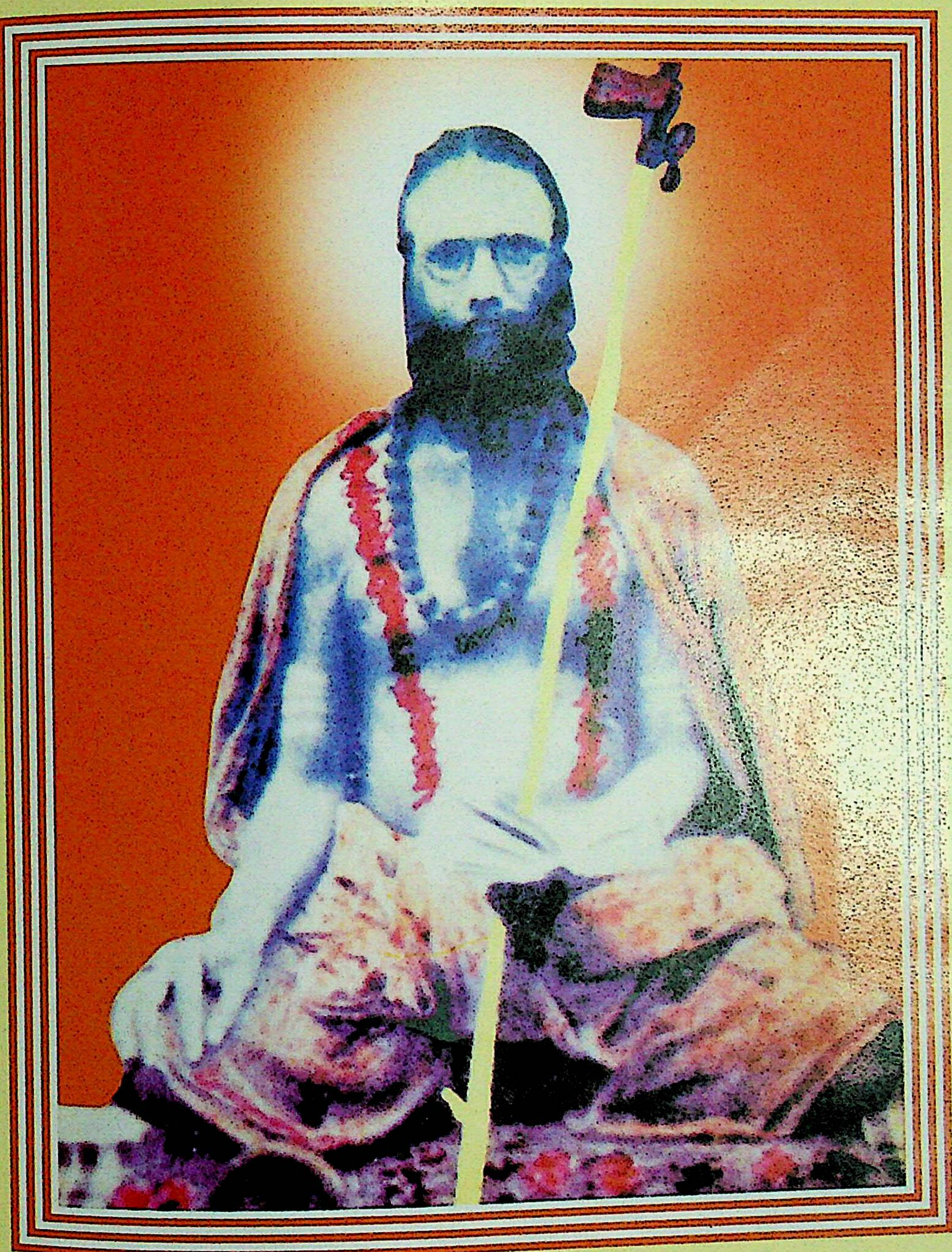
सन् २०१६



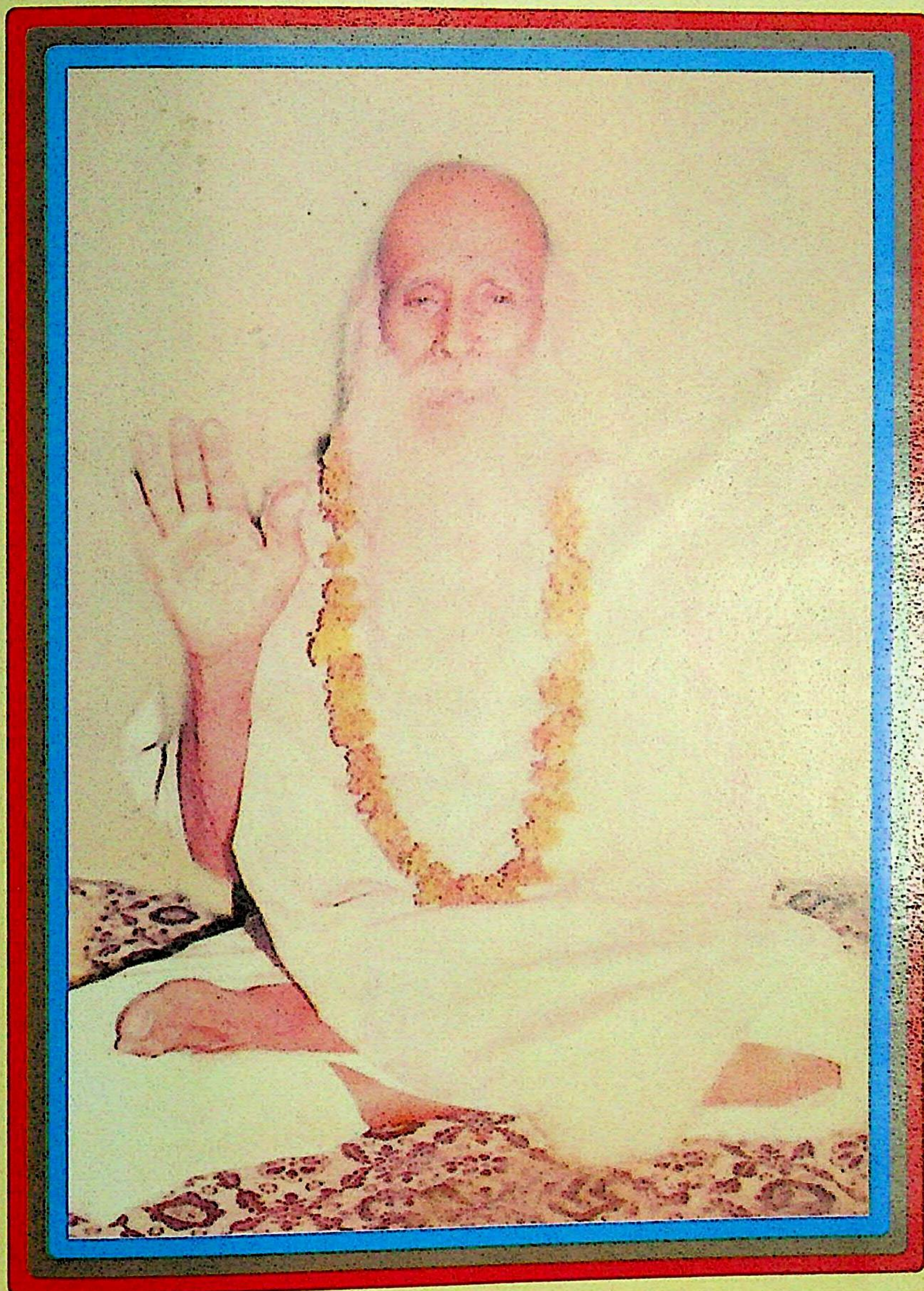
अखिल-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायक परात्पर परब्रह्म सद्गुरुदेव
ब्रह्मलीन ब्रह्मऋषि श्रीलश्येश्वर आश्रमजी महाराज

ब्रह्मलीन परम सद्गुरु ब्रह्मर्षि श्रीज्ञानबोध आश्रमजी महाराज





ब्रह्मलीन परात्पर सद्गुरु ब्रह्मर्षि श्रीआनन्द आश्रमजी महाराज



ब्रह्मलीन स्वामी विश्वम्भर सहाय (स्वामी जी लुहसाना वाले)

ब्रह्मलीन ब्रह्मर्षि लश्येक्षर आश्रम जी के प्रथम संन्यास गुरु



अनन्त श्री विभूषित

१००८ परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्री योगानन्द जी महाराज

ॐ

पुत्रत्व की सफलता के लिए ही सारस्वत यज्ञ द्वारा मातृ-पितृतर्पणम्

महाराजश्री जी की कृपामृत सुरसरिता
से ही परिपोषित-पल्लवित-पुष्पित-फलित
यह वंशवल्लरी-

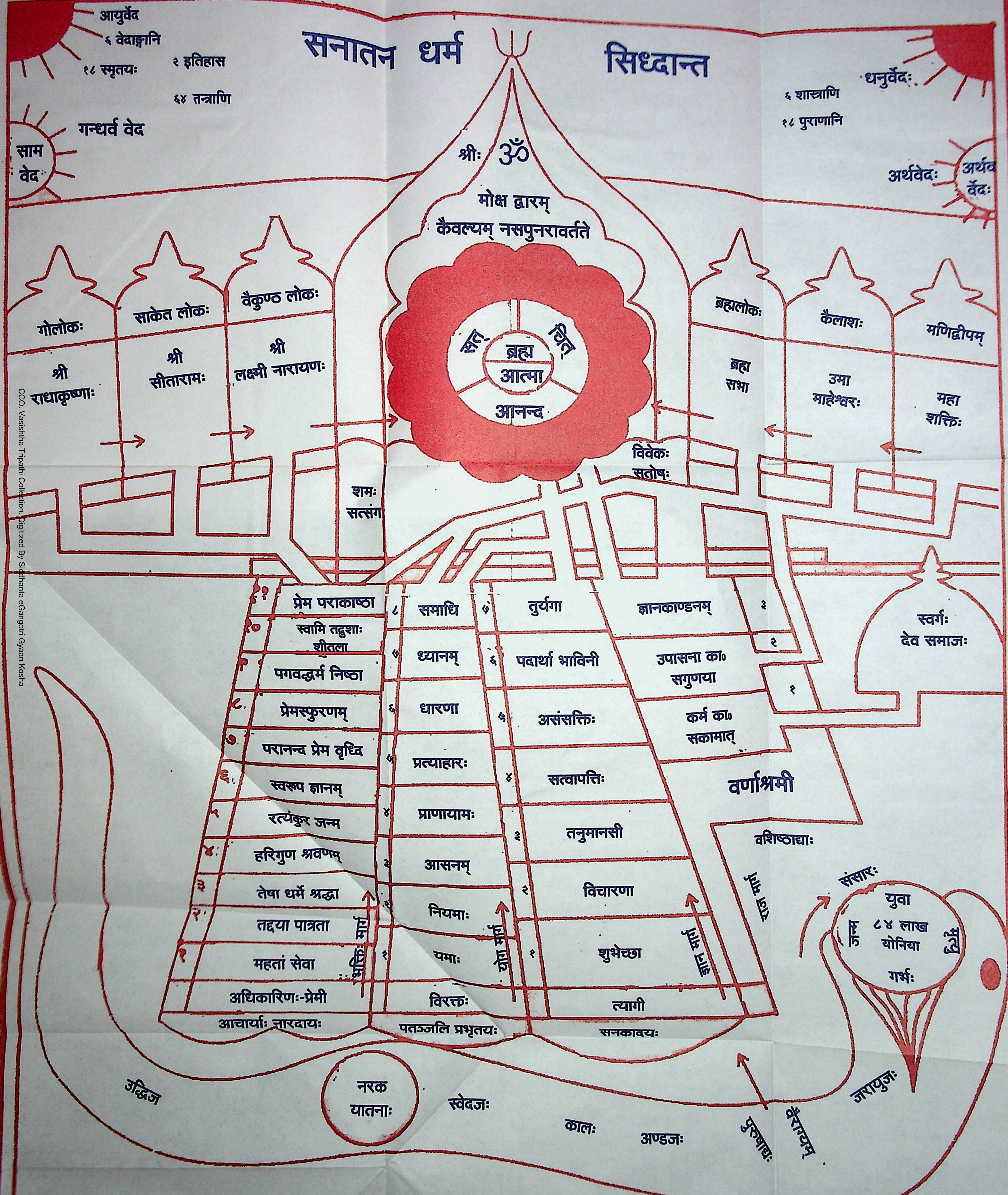
१. पवन कुमार-कुसुमलता,
२. राजेश कुमार-पूनमरानी,
३. राकेश कुमार-ऊषारानी
४. प्रदीप कुमार-मंजूरानी
५. विनोद कुमार-सुधारानी
६. शिवहरि-संगीतारानी
७. दिनेश कुमार-कवितारानी

महत्पद्रजोभिषिक्त सौभाग्यशाली सुजन

ब्रह्मलीन पिताश्री श्री लाला आनन्द प्रकाश जी

ब्रह्मलीन माताश्री श्रीमति शकुन्तला देवी

विश्वकल्याण हेतु मानव जाति के लिए पथ-प्रदर्शक
सद्गुरुदेव ब्रह्मर्षि श्रीलक्ष्येश्वराश्रमजी महाराज का प्रसाद



बलातिबला विद्या

ॐ बलातिबलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः, गायत्री छन्दः, सविता देवता, अकारो बीजम्, उकारः शक्तिः, मकारः कीलकम्, क्षुधादिनिरसने विनियोगः। क्लीं इत्यादि षडङ्गन्यासः॥

ध्यानम्-

अमृतकरतलार्द्रौ सर्वसञ्जीवनाढ्यावघहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे।
प्रणवमयविकारौ भास्कराकारदेहौ सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ॥

मन्त्रः—ॐ ह्रीं बले महादेवि ह्रीं महाबले क्लीं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिप्रदे तत्सवितुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वदयामूर्ते बले सर्वक्षुद्भ्रमोपनाशिनि धीमहि धियो यो नो जाते प्रचुर्यो या प्रचोदयादात्मिके हुं फट् स्वाहा॥ (सावित्र्युपनिषत्)

बला-अतिबला मन्त्र महाविद्या

बला-अतिबला मन्त्र के विराट् पुरुष ऋषि हैं, गायत्री छन्द, सविता देवता, अकार बीज, उकार शक्ति और मकार कीलक है। क्षुधा आदि निवारण में इस मन्त्र का विनियोग है। 'क्लीं–इत्यादि से षडङ्गन्यास करना चाहिए। यथा–ॐ क्लीं हृदयाय नमः। ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ क्लीं कवचाय हुम्। ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्लीं अस्त्राय फट्।

भगवती बला-अतिबला का ध्यान

जिनके कर-तल अमृत द्रव से आर्द्र हैं, (जो अपने अमृतस्रावी कर-कमलों से अधिकारी आराधकों को अभिसिञ्चित करती हैं) चराचर जगत् को सञ्जीवनी प्रदान करने में जो प्रसिद्ध हैं, प्राणियों के पापों को अपहरण करने में जो अत्यन्त कुशल हैं, जो सूर्य के समान परम प्रकाशक शरीर वाली हैं,–ऐसी वेदसारभूता, ज्योतिर्मयी, प्रणवस्वरूपा, भगवती बला और अतिबला का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ।

तदुपरान्त गुरुपरम्पराप्राप्त उपर्युक्त मन्त्र अधिकारी साधक सिद्ध गुरु की सन्निधि में विहित संख्या में जप-पाठ क्रिया सम्पन्न करे।

मन्त्र-माहात्म्य–वाल्कीकीय रामायण में इस बला-अतिबला महाविद्या मन्त्र की सविधि दीक्षा देते हुए विश्वामित्र जी लक्ष्मणसहित श्रीराम से कहते हैं–हे राम! तुम इस बला-अतिबला मन्त्रसमूह (महामन्त्र) को आदरपूर्वक ग्रहण करो, इससे तुम्हें श्रम (थकान-दुर्बलता), ज्वर व सौन्दर्यविकार नहीं होगा। इसके प्रभाव से सुप्तावस्था व प्रमाद (असावधानी) की स्थिति में भी राक्षस प्रभावी नहीं हो सकेंगे। तुम्हारे द्वारा इस मन्त्र का पाठ करने से संसार में कोई भी सौभाग्य में, दक्षता में, ज्ञान में, निश्चयात्मिका बुद्धि में और वचन-प्रतिवचन में तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा। यह महाविद्या सभी प्रकार के ज्ञान की जननी है, तेजस्विता से परिपूर्ण यही बला-अतिबला विद्या पितामह ब्रह्मा जी की पुत्री हैं। हे राघव! इसके पाठ-मात्र से तुम्हें भूख-प्यास नहीं लगेगी।

महामुद्रा/योगचूडामण्युपनिषत्

वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामांघ्रिणा
हस्ताभ्यामनुधारयन्प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम्।
आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनै रेचयेत्
सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते।।

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः।
रसानां शोषणं चैव महामुद्राभिधीयते।।

चन्द्रांशेन समभ्यस्य सूर्यांशेनाभ्यसेत्पुनः।
या तुल्या तु भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत्।।

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।
तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्।।

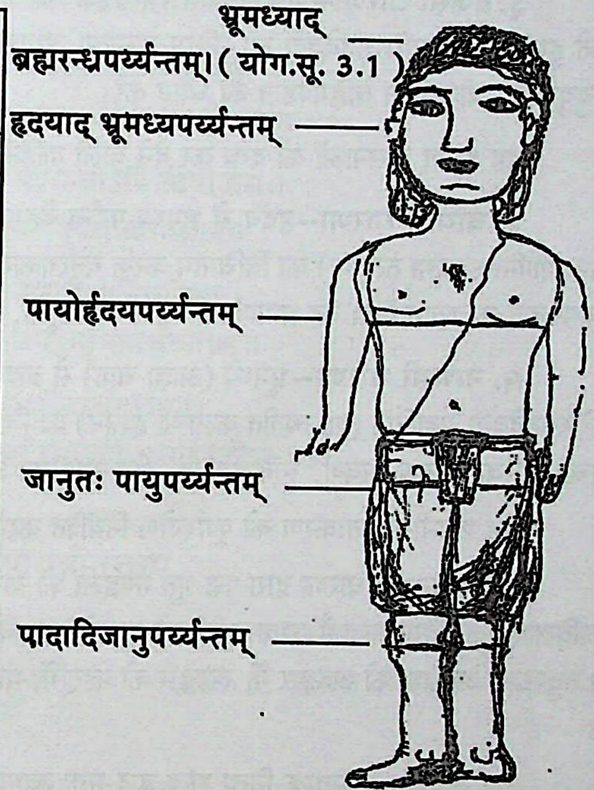
महामुद्रा

सर्वप्रथम हनु (ठोड़ी) को वक्षःस्थल पर देर तक दृढ़तापूर्वक रखते हुए बायें पैर की एड़ी से योनि (वृषणमूल) को पीड़ित करें–दबायें तथा दायें पैर को सीधा फैलाकर पैर के अग्रभाग को दोनों हाथों से पकड़ें, फिर दोनों कोरवों (कुक्षि प्रदेश) को बाँधकर श्वास भरें-खींचें (पूरक करें) श्वास खींचते समय ऐसा लगेगा कि कोरवें बँध सी गयी हैं। तदनन्तर शनैः शनैः रेचक करें अर्थात् भरी हुई श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालें। यह अतिविशिष्ट व सर्वव्याधि-विनाशिनी महामुद्रा मनुष्यों के कल्याण के लिए कही गयी है। इस मुद्रा के उत्तम प्रयोग से नाड़ीगत समस्त दोषों-अवरोधों का शोधन हो जाता है तथा सूर्य व चन्द्र से सम्बन्धित स्वरों, इडा-पिंगला का सञ्चालन विशुद्ध रूप से होता है। यह मुद्रा अपेक्षित रसों का पोषण करती हुई अतिरिक्त व अनावश्यक रसों का शोषण करती है। अतः इस मुद्रा का महामुद्रा के रूप में अभिधान किया गया है। चन्द्रांश (इडा-वाम स्वर) से अभ्यास करके सूर्यांश (पिंगला-दक्षिण स्वर) से पुनः अभ्यास करें, जब दोनों (चन्द्रांश-सूर्यांश) की संख्या तुल्य हो जाये, तब इस मुद्रा का विसर्जन करना चाहिए।

इस महामुद्रा के सविधि प्रयोग से क्षयरोग, कुष्ठरोग, गुदावर्त-गुदा से सम्बन्धित अर्शादि रोग, गुल्म तथा अर्जीण आदि विविध असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा

5.	स्वच्छवारिवत् (हम्) सदाशिवः शमनी, नाभसी धारणा
4.	कृष्णम्, ईश्वरः (यम्) भ्रामणी, वायवी धारणा
3.	रक्तम्, रुद्रः रम् दाहिनी, तैजसी धारणा
2.	श्वेतम्, विष्णुः वम् वमप्लाविनी, वारुणी धारणा
1.	पीतम्, ब्रह्मा लम् अवष्टम्भिनी, पार्थिवी धारणा



धारणा

देह के एक देशविशेष में चित्त की एकाग्रता को धारणा कहते हैं।

१. पार्थिवी धारणा— पाद से जानुपर्यन्त (पैरों से जंघा तक) देह भाग में चित्त की एकाग्रतापूर्वक वहाँ के अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मा (अन्यत्र-शिवाराधनप्रसङ्ग में निवृत्तिकलात्मा सद्योजात) का विशिष्ट चिन्तन करते हुए चतुरस्र (चौकोर) पीत वर्ण, बिन्दुयुक्त लं, बीज-सहित पृथिवी मण्डल का ध्यान करें। यह चित्त को सुस्थिर करने वाली अवष्टम्भिनी, पृथ्वी तत्त्वात्मिका-पार्थिवी धारणा कही जाती है।

२. वारुणी धारणा— जानु से पायु (गुदप्रदेश) पर्यन्त एकाग्र चित्त होकर शरीर भाग में (नाभ्यादिजानुपर्यन्तं यह पाठ भी मिलता है) तदधिष्ठातृदेवता विष्णु (प्रतिष्ठा कलात्मा वामदेव) का सुष्ठु चिन्तन करते हुए अर्ध चन्द्राकार (धनुषाकार) शुभ्र (श्वेत) वर्ण, सबिन्दुक वं, बीजसहित वरुणमण्डल का ध्यान करें। यह प्लाविनी—

रस से प्लावित कर देने वाली जलात्मिका वारुणी धारणा है।

३. तैजसी धारणा—पायु से हृदय पर्यन्त (अन्यत्र नाभ्यादिहृदय पर्यन्त) देहभाग में चित्त को सुस्थिर रखते हुए वहाँ के अधिष्ठातृदेवता रुद्र (विद्या कलात्मा अघोर) का सम्यक् चिन्तन करके त्रिकोण, रक्तवर्ण, बिन्दुयुक्त 'रं' बीजसहित वह्निमण्डल का ध्यान करे।

यह असत् वासनाओं को दग्ध कर देने वाली दाहिनी, प्रकाशात्मिका तैजसी धारणा है।

४. वायवी धारणा—हृदय से भ्रूमध्य पर्यन्त देहभाग में चित्त की एकाग्रतापूर्वक तदधिष्ठातृदेवता ईश्वर (शान्तिकलात्मा तत्पुरुष) का विचिन्तन करके वर्तुलाकार कृष्णवर्ण (धूमवर्ण) सबिन्दुक 'यं' बीजसहित वायुमण्डल का ध्यान करे। यह भ्रामणी-सर्वथा सर्वदोषशून्य, भ्रमापहारिका, वाटवात्मिका वायवी धारणा है।

५. नाभसी धारणा—भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र) से ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार चक्र) पर्यन्त देहभाग में वहाँ के अधिष्ठातृदेवता सदाशिव (शान्त्यतीत कलात्मा ईशान) का विशिष्ट रूप से चिन्तन करते हुए सप्त कोणाकार, स्वच्छ वारिवत् नीरूप-अवर्ण, सबिन्दुक 'हं' बीज समन्वित आकाश मण्डल का ध्यान करे।

यह शमनी—अन्तःकरण को पूर्णरूपेण नियंत्रित करने वाली आकाशात्मिका नाभसी मुद्रा है।

इस प्रकार पञ्च धारणा द्वारा पञ्च भूत मण्डलों का योगशास्त्र विधि से ध्यान करके फिर उनके कारणों में प्रविलापन कर दिया जाता है। यथा—पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में। तदुपरान्त आकाश को अहङ्कार में, अहङ्कार को महत् में, महत्तत्व को प्रकृति में और प्रकृति को आत्मा (ब्रह्म) में।

उस अवस्था में साधक नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव होकर ब्रह्मरन्ध्रगत पद्म के मध्य में अवस्थित शशिशुभ्र सच्चिदानन्दघन साम्बसदाशिव के ध्यान में अद्वैत भावापन्न हो जाता है।



अथ गायत्रीतत्त्वम्

श्रीगणेशाय नमः। श्रीगायत्र्यै नमः।।

श्रीगायत्रीतत्त्वमालामन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। परमात्मा देवता। हलो बीजानि। स्वराः शक्तयः। अव्यक्तं कीलकम्। अभीष्टे विनियोगः।।

ॐ चतुर्विंशतितत्त्वानां यदेकं तत्त्वमुत्तमम्।
अनुपाधिपरं ब्रह्म तत्परं ज्योतिरोमिति।।१।।

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य तत्परं ज्योतिरोमिति।।२।।

यत्सदादिपदैर्वाच्यं परमं पदमव्ययम्।
अभेदत्वं पदार्थस्य तत्परं ज्योतिरोमिति।।३।।

यस्य मायांशभागेन जगदुत्पद्यतेऽखिलम्।
तस्य सर्वोत्तमं रूपं अरूपस्याभिधीमहि ।।४।।

यं न पश्यन्ति परमं पश्यन्तोऽपि दिवौकसः।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावताम्।।५।।

यदंशः प्रेरितो जन्तुः कर्मपाशनियन्त्रितः।
आजन्मकृतपापानां अपहन्तुं समर्थकः।।६।।

इदं महामुनिप्रोक्तं गायत्रीतत्त्वमुत्तमम्।
यः पठेत्परया भक्त्या स याति परमां गतिम् ।।७।।

गायत्रीतत्त्वम्

श्रीगणेश के लिए नमस्कार, श्रीगायत्री को नमन। श्रीगायत्री तत्त्व माला मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा देवता है, हल वर्ण बीज है, स्वर वर्ग शक्ति है, अव्यक्त कीलक है। अभीष्ट सिद्धि में यह श्रीगायत्री माला मन्त्र विनियुक्त है।

चौबीस तत्त्वों में (गायत्री मन्त्र के २४ अक्षर ही २४ तत्त्व हैं) जो एक श्रेष्ठतम तत्त्व है, वह उपाधिरहित परब्रह्म है, वही परं ज्योतिस्वरूप ॐ है।।१।।

जो वेदारम्भ में 'हरि ॐ, कहा जाता है तथा वेदान्त में प्रतिष्ठित है, वेदान्त–औपनिषद् विद्या में प्रकृतिलय होता है वही परम ज्योतिस्वरूप ओङ्कार है।।२।।

जो सत्, चित्, आनन्दादि पदों से वाच्य है, परम पद है, अव्यय है, पदार्थों का जिससे अभेद सिद्ध है, वही परं ज्योति ॐ है।।३।।

जिसके मायांश भाग से अखिल जगत् उत्पन्न होता है, उसी अरूप के सर्वोत्तम रूप ज्योतिस्वरूप 'ॐ' का हम ध्यान करते हैं।।४।।

देखते हुए भी उस परम तत्त्व को देवता तक नहीं देख पाते, उन समस्त प्राणियों के आश्रय सुपर्ण देव का आश्रय पाना चाहिए।।५।।

जिसके अंश से प्रेरित कर्मपाश-नियंत्रित जन्तु आजन्म कृत (जन्म-जन्मान्तरीय) पापों का विनाश करने में समर्थ होता है।।६।।

जो इस महामुनिप्रोक्त उत्तम गायत्री तत्त्व का अनन्य भक्तिभाव से पाठ करता है, वह परम गति को प्राप्त हो जाता है।।७।।

अथ श्रीचाक्षुषोपनिषद्

अस्याः श्रीचाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीसूर्यो देवता। चक्षुरामय-निवृत्तये विनियोगः।। ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुस्तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकराय अमृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्याय। ॐ अक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरणमयं ज्योतिरूपं तपन्तं विश्वस्य योनिं प्रतपन्तमुग्रं, पुरुः पुरस्तादुदयत्येष सूर्यः।। ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिने अहोवाहिने स्वाहा। ॐ वयः सुपर्णाऽउपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः। उपध्वान्तमूर्णूहि पूर्द्धि चक्षुर्तुमुग्ध्यस्मान् निधयेनबद्धान्। पुण्डरिकाक्षाय नमः। पुष्करेक्षणाय नमः। अमलेक्षणाय नमः। कमलेक्षणाय नमः। विश्वरूपाय नमः। महाविष्णवे नमः।।

श्रीचाक्षुषोपनिषद्

इस चाक्षुषी विद्या के अहिर्बुध्न्य ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, सूर्य देवता हैं, नेत्ररोग की निवृत्ति में इस विद्या का विनियोग है। स्थूल, सूक्ष्म व सूक्ष्मतर चक्षुओं की ज्योति स्थिर रहे, अथवा आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक चक्षुओं में ज्योति सुस्थिर रहे। चाक्षुषी महाविद्या के अधिष्ठातृदेवता जगत् प्रकाशक भगवान् सूर्य नारायण मेरी रक्षा करें, शीघ्र ही मेरे नेत्रगत रोगों का शमन करें, मेरे स्वाभाविक तेजस्वरूप का दर्शन करायें, ऐसी कृपा करें कि मैं अन्धा न बनूँ, मेरा कल्याण करें, जो मेरे पूर्व जन्मार्जित नेत्रज्योतिप्रतिरोधक दुष्कर्म हैं, उन सभी को विनष्ट करें, नेत्रज्योति प्रदाता दिव्य भास्कर को नमस्कार है, करुणाकर अमृतरूप के लिए नमस्कार है, सूर्य के लिए नमस्कार है, भगवान् सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ। नेत्रगोलक मध्यवर्ती ज्योतिस्वरूप सूर्य को नमस्कार, विचरणशील सूर्य को नमन, महान् ऐश्वर्यशाली सूर्य को नमन, रजोगुणात्मा सूर्य को प्रणाम, तमोगुणात्मा सूर्य को प्रणाम, असत् से सत्य की ओर मुझे ले चलें, अज्ञानान्धकार को निवृत्त करके ज्ञानरूप प्रकाश की ओर ले जायें, मृत्यु से अमृत की ओर प्रेरित करें, तेजसम्पन्न

भगवान् सूर्य पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं, विश्वरूप, घृणि जातवेद, हिरण्यमय, ज्योतिरूप में तपते हुए जगत्स्रष्टा, तीव्र तापयुक्त सम्मुख ही पूर्व दिशा से यह सूर्य उदित होते हैं। दिवस के नियामक–दिवस को साथ में लेकर उदित हुए भगवान् आदित्य को नमस्कार है और आहुति रूप में अर्घ्य प्रदान करते हैं।



प्रणवं द्विविधम्

१. सूक्ष्ममेकाक्षरम्।   २ स्थूलं पञ्चाक्षरम्।

जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि।
मन्त्रेणार्थानुसंधानं स्वदेहविलयावधि॥

स्वदेहे गलिते पूर्णं शिवं प्राप्नोति निश्चयः।
केवलं मन्त्रजापी तु योगं प्राप्नोति निश्चयः॥

षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योगमाप्नुयात्।
सूक्ष्मं तु द्विविधं ज्ञेयं ह्रस्वदीर्घविभेदतः॥

१. दीर्घ-अः उः मः नादः शब्दकालकलायुतम्। योगिनामेव हृद्गतम्। निवृत्तानाम्।

२. मः-त्रितत्त्वं ह्रस्वप्रणवः। शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं प्रवृत्तानाम्॥

नवकोटिजपात् संशुद्धः पुरुषो भवेत्।
पुनः नवकोट्या पृथिवीजयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या अपां जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या तेजसां जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या वायोर्जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या आकाशजयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या गन्धादीनां जयमाप्नुयात्।
पुनः नवकोट्या अहंकारस्य जयमाप्नुयात्।
सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्यशुद्धो भवेत्पुमान्। ततः परं स्वशुद्ध्यर्थं जपो भवति।
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन प्रबुद्धः शुद्धयोगमवाप्नुयात्। तेन जीवन्मुक्तः॥

सदा जपन्सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम्।
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः॥

ऋषिच्छन्दोदेवतादि न्यस्य देहे पुनर्जपेत्।
प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत्॥ (शिवपुःवि.सं. १७)

दो प्रकार का प्रणव

प्रणव दो प्रकार का है–सूक्ष्म प्रणव (ॐ) एकाक्षर है और स्थूल प्रणव (अ उ म नाद) पञ्चाक्षरात्मक है। जीवन्मुक्त प्राणी को सूक्ष्म एकाक्षर प्रणव है। इस मन्त्र का अनुसन्धान तब तक करें, जब तक देहाध्यास गलित न हो जाय। देहाध्यास के विनष्ट होते ही निःसन्देह शिवतत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। छत्तीस करोड़ प्रणव जप करने वाला निश्चित ही योग (जीवात्मा परमात्मा की युति) को प्राप्त हो जाता है।

सूक्ष्म प्रणव भी दो प्रकार का है–ह्रस्व और दीर्घ भेद से। दीर्घ– अ उ म नाद, शब्द काल व कला से युक्त है। वह निवृत्तात्मा योगियों के हृदय में ही भासित होता है। ह्रस्व-प्रणव (ॐ) में शिव शक्ति दोनों का ऐक्य है, यह प्रवृत्तिमार्ग के साधकों के लिए है।

९ करोड़ प्रणवजप से पुरुष सकल कल्मष शून्य हो जाता है। पुनः ९ करोड़ जप से पृथिवी को जीत लेता है। पुनः ९ कोटि जप से जल को जीत लेता है। पुनः ९ कोटि जप से तैजस् तत्त्व पर विजय प्राप्त कर लेता है। पुनः ९ कोटि जप करने से वायु तत्त्व पर विजय पा लेता है। पुनः ९ कोटि जप से गन्धादि पञ्च तन्मात्राओं को जीत लेता है। पुनः ९ कोटि प्रणवजप से अहङ्कारादि पर विजय पा जाता है।

तदनन्तर एक हजार प्रणव मन्त्र जप से नित्य शुद्ध हो जाता है। इसके उपरांत स्वत्व शुद्ध्यर्थ जप होता है।

इस प्रकार १०८ करोड़ जप करने पर प्रबुद्ध साधक शुद्ध योग को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

प्रणवरूप शिव का सदा जप करता हुआ–ध्यान करता हुआ समाधिस्थ हो जाता है, तब वह महायोगी सदाशिव ही है; इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रणव मन्त्र के ऋषि, छन्द और देवता आदि का विनियोग में स्मरण करके, ऋष्यादिन्यासपूर्वक जप करे। मातृकायुक्त प्रणव का देह में न्यास करने मात्र से साधक ऋषि हो जाता है।

अन्तर्हवनम्

मूलाधारे त्र्यस्त्रं कुण्डम्। कालाग्निरुद्रोऽग्निः कामाग्निः। वासना इन्धनम्।
प्राणादिपञ्चवायुभिः संधुक्षितम्।
कुण्डलिनीरूपदेवताधिष्ठितं चिदग्निमण्डलम्॥

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा॥
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्॥
पुण्यपापकृत्याकृत्यसंकल्पविकल्पधर्मात्मकं हविः।
सप्तकं हुत्वा अधर्मं जुहोमि स्वाहा इति पूर्णाहुतिः।

(श्रीविद्यार्णवेः १०)

अन्तर्हवनविधि

दृष्ट जगत् में जैसे समिधा-घृत-कुण्ड-होता-हव्य हुताशन की आवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही आन्तरिक दिव्यतम होम में मूलाधार में ही त्र्यस्य (त्रिकोण) हवन कुण्ड में कालाग्नि रुद्र को अग्निरूप में अङ्गीकार कर अथवा कामाग्नि को प्रज्वलित करके वासनारूपी ईंधन (समिधा) का हवन करें, उस अग्नि को प्राणादि पञ्च वायु से उद्दीप्त करें। वहाँ कुण्डलिनीरूप देवता द्वारा अधिष्ठित चैतन्य अग्निमण्डल में धर्म-अधर्म रूप हवि को प्रदीप्त आत्माग्नि में मनरूपी स्रुवा द्वारा सुषुम्णा मार्ग से नित्य इन्द्रिय वृत्तियों का होम करता हूँ–ऐसी भावना होनी चाहिए।

पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प और धर्मात्मक सप्त हवि का हवन करके अन्त में अधर्मं जुहोमि स्वाहा–अधर्म का भी होम करता हूँ, इस प्रकार पूर्णाहुति प्रदान करें।

ताक्ष्यर्मनुः

त्रयोविंशार्णको मन्त्रः उपरागे सुसाधितः।
फणिदंष्टान् पिशाचाद्यैः क्लिष्टान्नयांश्च रोगिणः॥

पालयेच्छतजप्तेन तोयेनाभ्युक्षणात्क्षणात्।
कुर्वतस्ताण्डवं शम्भोः अग्रे मेरुसमं विभुम्॥

अहितानि च खादन्तं, स्मरन्ताक्ष्यर्मनुं जपेत्-ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं वैरिमोहे गरुडपक्षी हंस हंस हिंस हिंस स्वाहा।

पद्माक्षबीजतैलेनाप्याशु नस्येन नाशयेत्।
गरलं भुजगानां च समस्तानामयत्नतः॥

(श्रीविद्यार्णवतंत्रे २१)

गारुडी विद्या

यह तार्क्ष्य मन्त्र अर्थात् गारुड विद्या मन्त्र २३ अक्षरों का है, इसे ग्रहण-काल में सिद्ध किया जाता है। मन्त्र को सिद्ध कर लेने वाला साधक सौ बार गारुड़ मन्त्र अभिमन्त्रित जल से अभ्युक्षण द्वारा सर्प से दंष्ट, पिशाचपीड़ित और भी अन्यान्य तीव्रतर रोगों से आर्त प्राणियों का परिपालन करे। इस प्रक्रिया में विशुद्ध रूप से लोक-कल्याण की भावना होनी चाहिए, न कि आर्थिक आदि लाभ के लिए।

मन्त्रजापक सिद्धि व प्रयोग-काल में ऐसी भावना करे कि सम्मुख ही मेरुसमान व सर्वव्यापक भगवान् शिव समस्त अहितों का भक्षण करते हुए ताण्डव कर रहे हैं, इसके पश्चात् उपर्युक्त तार्क्ष्य मन्त्र का जप करे।

पद्माक्ष बीजों के तेल से शीघ्र ही नासिका के द्वारा नस्य (आघ्राण) करने से भी बिना किसी अन्य प्रयत्न के समस्त सर्पों का विष शान्त हो जाता है।



ब्रह्मप्राप्तेरुपायः

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः।
अन्त्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य।।

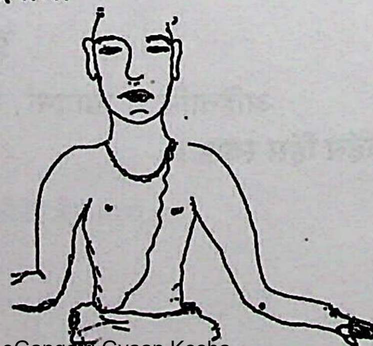
हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।।

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये।।

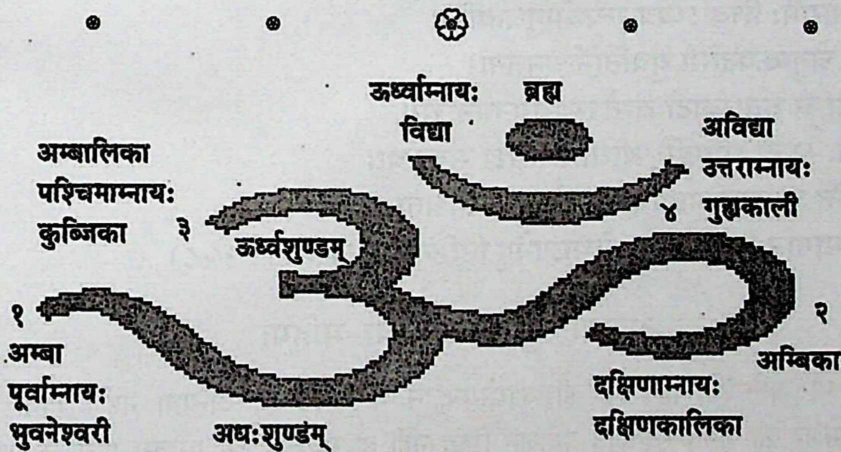
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सपंश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना।।
(कैवल्योपनि.१)



ब्रह्मप्राप्ति के उपाय

निर्जन व शांत स्थान पर सुखासन पर स्थित हो शुचितापूर्वक ग्रीवासहित शरीर को सीधा करके संन्यासी समस्त इन्द्रियों का निरोध कर भक्ति से स्वकीय गुरु को प्रणाम करके विरज, विशुद्ध हृदयकमल के मध्य में विशद, विशोक, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, शिव, प्रशान्त, अमृत, ब्रह्मयोनि, आदिमध्यान्तहीन, एक, विभु, चिदानन्द, अरूप, अद्भुत, प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, प्रशान्त परमेश्वर श्रीसाम्बसदाशिव का चिन्तन करता हुआ (ध्यान करके) मुनि अज्ञानान्धकार से परे समस्तसाक्षी, भूतयोनि (ब्रह्मरूपता) को प्राप्त हो जाता है।

वह ब्रह्मा है, शिव है, इन्द्र है, अक्षर है, परम है, स्वराट् है, वह ही विष्णु, प्राण, काल, अग्नि और चन्द्रमा है। जो हो चुका और जो भी होगा, वह सब वही है, वह सनातन है। उसको जानकर मृत्यु को पार कर लेता है, विमुक्ति के लिए इससे अतिरिक्त और कोई मार्ग (उपाय) नहीं है। समस्त भूतों को स्वयं में और स्वयं को समस्त भूतों (जीवों) में देखता हुआ परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। किसी अन्य हेतु (उपाय) से यह सम्भव नहीं।



शिवशक्तिस्वरूप प्रणव

यहाँ प्रणवाङ्कित चित्र के माध्यम से तत्तत् दिशाओं में अम्बा-भुवनेश्वरी आदि शक्ति की स्थिति तथा बिन्दु में ब्रह्मरूप शिव की अवस्थिति प्रतिपादित है।

ॐ कार के अधःशुण्ड के अग्रभाग पूर्वाम्नाय में उपर्युक्त स्तवन श्लोक में प्रदर्शित अम्बाशक्ति भुवनेश्वरी का निवास है, दक्षिणाम्नाय में दक्षिण कालिका अम्बिका शक्ति विराजमान हैं, पश्चिमाम्नाय ऊर्ध्व शुण्ड के अग्रभाग में कुब्जिका शक्ति भगवती अम्बालिका विद्यमान हैं, ऊर्ध्वाम्नायस्थ दक्षिण शिखर पर विद्या और वाम शिखर पर अविद्या विद्यमान हैं और बिन्दु ब्रह्मस्वरूप शिव सुशोभित हैं।

अजपास्तुतिः

शिवोऽपि शक्तियुक्तश्चेत् प्रभुः कार्याय नान्यथा।
स्वमायया विनेशस्य परस्यानुभवात्मनः॥
न घटेतार्थसम्बन्धः ततो माया परावरा।
यस्याः प्रभावं वक्तुं ब्रह्माद्या अप्यलं बलम्॥
वैष्णवीयं महामाया सुरासुरमुनिस्तुता।
शय्यां देवमयीं कृत्वा शेतेऽसाविति गीयते॥
सर्वे देवाश्च मुनयो विषये यां स्तुवन्ति हि।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुरेका सनातनी॥
विदुषोऽपि हठाच्चेतो महामोहाय यच्छति।
अभक्तानां बन्धहेतुः भक्तानां मुक्तिदा च सा॥
सर्वेष्वपि हि भूतेषु चेतनेत्युच्यते ततः।
स्वात्मारामः शिवोऽप्यत्र रत्यर्थमनुधावति॥
माया चतुष्कपर्दासौ युवतिर्नित्यनूतना।
सुपेशा च घृतास्यादौ वस्तेऽस्यवयुनानि च॥
भक्तिः श्रद्धा धृतिर्ह्रीः श्रीर्धीर्मेधाद्यैश्च सत्सु या।
कुर्वन्ति च बहून् मार्गान् तान् हेतुबलमाश्रिताः।
सतां मार्गान् विलुम्पन्ति लोभाज्ञानेषु निष्ठिताः॥ (महाभ.शा. १९८)

अजपा स्तुति महामाया-महिमा

शिव भी शक्तियुक्त होने पर ही कार्यसम्पादन में समर्थ हैं, अन्यथा नहीं। माया के बिना अनुभवगम्य परमेश्वर का जगत् सृष्ट्यादि प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। उस परावरा माया के प्रभाव और बल का वर्णन करने में ब्रह्मादि देवता भी समर्थ नहीं हो सकते। ऐसा कहा जाता है कि सुरासुरमुनिवन्दित ये वैष्णवी माया महादेव को देवमयी शय्या बना कर शयन करती हैं। समस्त देवता और मुनिजन इनकी स्तुति करते हैं, ये सनातनी सृष्टि, स्थिति और विनाश की हेतु हैं। बड़े-बड़े विद्वानों का चित्त भी बलात् महामोह के प्रति ग्रस्त हो जाता है। ये ही भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाली हैं और अभक्तों के बन्धन का हेतु हैं। समस्त भूतों में इन्हें चेतनाशक्ति कहा गया है। स्वात्माराम श्रीशिव इनके प्रति रमणार्थ दौड़ लगाते हैं। चतुष्कपर्दरूपा यह माया युवती नित्य नूतना हैं–अखण्ड सौन्दर्यशालिनी हैं। सुन्दर शरीरधारिणी, घृतभक्षिणी और ज्ञान को आच्छादित कर देने वाली ये महामाया सज्जनों (उपासकों) के हृदय में भक्ति, श्रद्धा, धृति, ह्रीं, श्री, धी, मेधा आदि रूपों में निवास करती हैं।

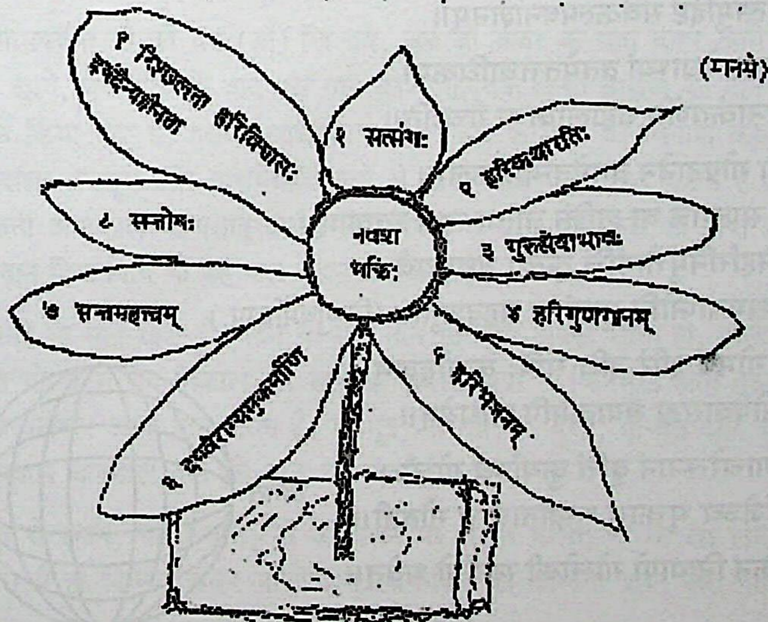
स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः।
स्वयं ध्यानं स्वयं ध्याता स्वयं सर्वत्र देवता।। (अकुलतन्त्रम्)

स्वयं शिष्य एवं स्वयं गुरु

स्वयं देवी है, स्वयं देव है, स्वयं शिष्य है और स्वयं ही स्वयं का गुरु भी हैं। ध्याता भी स्वयं हैं और ध्यान भी स्वयं हैं–इस तरह भेद में भी अभेद दर्शन करता हुआ स्वयं में ही सर्वत्र सबको देखे। यह उत्कृष्ट भाव होना चाहिए। देवता भी मैं स्वयं हूँ, स्वयं से अतिरिक्त परकीय कुछ नहीं। इस अद्वय भाव के जागृत होते ही भव-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।



मानसे नवधा भक्तिः



भक्तिवन्त अति नीचहु प्राणी। मोहि परम प्रिय असि मम वाणी।
सुचि सुशील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग।।

मानस में नवधा भक्ति

चित्र में नव-दल-कमल के माध्यम से नौ प्रकार की भक्ति का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। भगवत्प्राप्ति में सहायक भक्ति का प्रथम भेद सत्संग है, दूसरा भेद भगवान् की लीला-कथाओं के श्रवण में अत्यन्त रुचि, इसी प्रकार क्रमशः--गुरुशुश्रूषापूर्वक अमान भावना, हरिगुणगान, हरिभजन, दम, वैराग्य और सत्कर्म, सन्त महत्त्व, सन्तोष, भगवान् में दृढ़ विश्वास और हर्ष व दैन्य की शून्यता तथा निश्छलता। भगवान् कहते हैं कि अत्यन्त नीच प्राणी भी यदि मेरी भक्ति से युक्त है, तो वह मुझे परम प्रिय है। पवित्र, सुशील और सुन्दर मति से युक्त सेवक किस स्वामी को अच्छा नहीं लगता है।

एकां गां धारयेन्मासं दद्यात्तस्यास्तथा यवान्।
गोमयांस्तांस्तथाश्नीयात् मासमेकमतः शुचिः॥

मासान्ते तां तथा धेनुं दद्याद्विप्राय भक्तिमान्।
व्रतमेतत्समुद्दिष्टं सर्वकल्मषनाशनम्॥

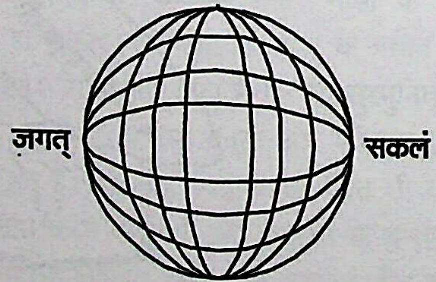
राजसूयाश्वमेधाभ्यां व्रतमेतत्तथाधिकम्।
विमानेनार्कवर्णेन ब्रह्मलोकं च गच्छति॥

विनापि गोप्रदानेन व्रतमेतन्महत्फलम्।
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा शक्तिं ज्ञात्वा तथा स्वकाम्॥
गवां निर्हारनिर्मुक्तैर्वृत्तिं कृत्वा तथा यवैः।
पापमोक्षमवाप्नोति पुण्यं च महदश्नुते॥ (विष्णुधर्मोत्तरपु.)

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत्॥

गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्याच्च गोरसैः।
गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती॥

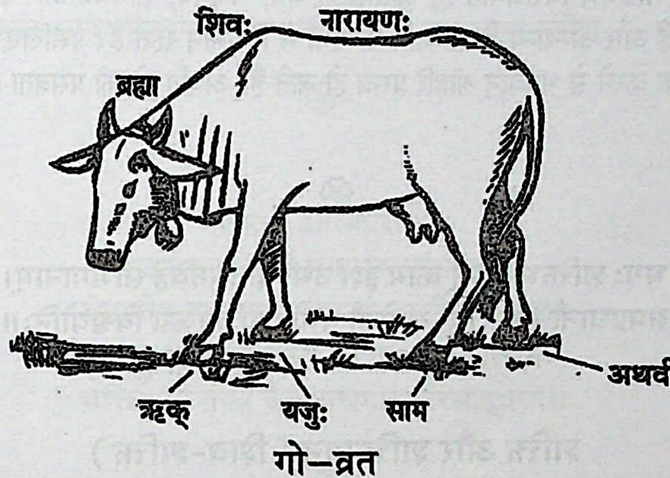
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी स्वर्गगो भवेत्॥
(अग्निपु.)



देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः धार्यते वै
सदा तस्मात् सर्वे पूज्यतमा मताः।

यस्याः शिरसि ब्रह्मास्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः।
पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च॥

या अन्या देवताः काश्चित् तस्या लोमसु ताः स्थिताः।
सर्वदेवमया गावः तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः॥ (वृ. पराशरस्मृ.)



गो–व्रत

एक मासपर्यन्त गौ को यव (जौ) खिलाये, जब जौ गोबर के साथ बाहर आये, उन्हीं यवों को एक मासपर्यन्त खाये, एक मास के बाद उस गाय को भक्तिपूर्वक किसी ब्राह्मण को दान कर दे। यह जो गोव्रत का कथन किया गया है, इसका आचरण समस्त प्रकार के पापों को विनाश करने वाला है। इस व्रत को करने वाला राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञों से भी अधिक फल प्राप्त करता है और इस व्रत के प्रभाव से वह व्रती अन्तकाल के पश्चात् अर्कवर्णीय विमान के द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। उस गौ को ब्राह्मण को दान बिना किये भी यह फल महान् फलदायी है।

तीन रात्रि या सात रात्रि–तीन दिन या सात दिन भी जैसी अपनी शक्ति हो, अन्य कोई भी आहार न लेते हुए मात्र गोमय से यव निकाल कर खाने से समस्त पापों से विनिर्मुक्त होता हुआ मोक्ष को प्राप्त होता है, महापुण्यस्वरूप अमृत पान करता है। गो-मूत्र, गो-मय, गो-दुग्ध, गो-घृत और कुशोदकपानपूर्वक अहोरात्र का उपवास चाण्डाल तक को शुद्ध कर देता है।

गो-मूत्र से स्नान, गोरस-वृत्ति, गौ के चलने पर चलने वाला, गौ के खा लेने पर खाने वाला गोव्रती एक मास में ही निष्पाप होकर गोलोक व स्वर्गगमन की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

यह जगत् पाँच के द्वारा धारित है

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् इन पाँच–देव, ब्राह्मण, गौ, साधु और सती साध्वी पतिव्रता स्त्रियों के पातिव्रत धर्म पर आधारित है। ये उक्त पृथिवी के आधार हैं–इन पर पृथिवी टिकी हुई है। इसलिए पाँचों परम पूजनीय हैं, सदैव इनकी पूजा-वंदना–सम्मान करना चाहिए।

गौ के शरीर में देवताओं का वास

गौ के शरीर में समस्त देवताओं का निवास है। शिर में ब्रह्मा, स्कन्ध देश में भगवान् शिव स्थित हैं, पृष्ठ भाग में भगवान नारायण विराजमान हैं, श्रुतियाँ-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चारों पैरों में आधाररूप से स्थित हैं और अन्यान्य देवता गाय के रोमों में विद्यमान रहते हैं। इसलिए गाय सर्वदेवमयी है। भक्तिपूर्वक गौ की सेवा करने से भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। अर्थात् गो की प्रसन्नता ही श्रीहरि की प्रसन्नता है।



भगः शक्तिर्भगवान् काम ईश उभौ दातारविह सौभगानाम्।
समप्रधानौ समसत्त्वौ समोजौ तयोः शक्तिरजरा विश्वयोनिः॥
(ॐ ह्रीमों ह्रीम्)

शक्ति और शक्तिमान् (शिव-शक्ति)

'भग' शक्ति है और भगरूप शक्ति से युक्त कामेश्वर सदाशिव हैं। दोनों ही समन्वित रूप से सौभाग्य प्रदाता हैं, इन दोनों में कोई एक प्रधान या अप्रधान नहीं हैं, अपितु दोनों ही समान रूप से प्रधान हैं, बल और ओज भी दोनों का समान ही है, दोनों का नित्य सम्मिलन है, दोनों की अजरा शक्ति ही विश्व के उद्भव का हेतु है।

शक्ति और शक्तिमान् का यह मन्त्रात्मक स्वरूप है–ॐ ह्रीमोम् ह्रीम्)



हकारो सकारो मकारो त्रयमेकस्वरूपं भवति। ह्सौं बीजाक्षरं भवति। तज्जापकानां संपत्सारस्वतौ भवतः। तत्स्वरूपज्ञानां वैदेही मुक्तिश्च भवति। (हयग्रीवोपनिषत् २)

ब्रह्म ऋ. गायत्री छ. श्रीमान्हयग्रीवः परमात्मा दे.।

हयग्रीवैकाक्षर मन्त्रराज

यह मन्त्र ब्रह्मपरम्परा से व्यासजी को प्राप्त हुआ। व्यासजी के द्वारा अधिकारी साधकों को इस मन्त्र का उपदेश मिला। इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, श्रीमान् हयग्रीव परमात्मा देवता हैं। सम्पत्ति, सरस्वती,-ब्रह्मविद्या, स्वरूपज्ञान, देहाध्यासराहित्य और मुक्ति के लिए इसका विनियोग है।

यह समस्त बीजों में एकाक्षर बीज मन्त्र सर्वोत्तम व मन्त्रराज संज्ञक है। यह मन्त्र–हयग्रीवैकाक्षर–ब्रह्मविद्या के रूप में साधकों के मध्य जाना जाता है।

मन्त्र–'ह्सौं'। इसमें हकारों, सकारों, मकारों,–यह तीनों ही एक स्वरूप हैं–इस प्रकार यह बीजाक्षर है। इस मन्त्रराज के जापकों को सर्वसम्पत्ति, विद्या की प्राप्ति होती है, सरस्वती सदैव कृपा वर्षण करती हैं। स्व स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, देहाध्यास का विनाश हो जाता है और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। न्यासपूर्वक भगवान् हयग्रीव का ध्यान करके गुरुपरम्परा प्राप्त इस मन्त्र का जप करना चाहिए।



भक्तिः (अग्निपुराणे)

अक्षरं ब्रह्म परमं सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरव्ययम्।।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यजते स कदाचन।
भक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया।।

भक्ति

वेद-वेदान्तों में जिसे अक्षर, सनातन, अज, विभु, एक, चैतन्य, ज्योति, अव्यय व परब्रह्म कहा गया है, उसका सहज आनन्द जब कभी व्यक्त हो जाता है, उसका चैतन्य चमत्काररूप रस भक्ति नाम से जाना जाता है। अर्थात् भक्ति में अव्यक्त को व्यक्त करने की शक्ति है। उसमें निर्गुण को सगुण, निराकार को साकार बनाने की क्षमता है। भक्ति की परिपुष्टि के लिए ही वह अजन्मा इस भूतल पर जन्म (अवतार) धारण करता है।



नीलाभ्रश्यामलं विष्णुं शङ्खेन्दुधवलं बलम्।
रक्तं सुदर्शनं चक्र सुभद्रां कुङ्कमारुणाम्।।
(स्कन्दपुरा. ३.३० ख. १९-२१)

श्रीवासुदेवस्य रथः, गरुडध्वजचिह्नितः। विस्तारम् १६ हस्तः। २२ करोच्छायम् पद्मध्वजः सुभद्रायाः १२ ह.। षोडशचक्रो-विष्णोः, चतुर्दशबलस्य, १४ ह. सुभद्रायास्तु द्वादश।
(,, ,, २५)

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्वायतनेषु च।
तत्फलं लभते सर्वं सिन्धुस्नानान्न संशयः।। (,, ,, ३५. १६१)

मूढानां नास्तिकानां च कृतघ्नानां हतात्मनाम्।
धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वासस्य युक्तयः।। (३१.४७)

सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः।
तदुच्छिष्टोपभोगो हि सर्वाघक्षयकारकः॥ (स्क.पु.वै.ख.उ. ३८.३)
जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते।
तदश्नाति जगन्नाथः तच्छेषं दुरितापहम्॥ (,, ,, २०)
कुक्कुरस्य मुखाद् भ्रष्टं ब्राह्मणेनापि भोक्तव्यम् (,, ,, १६)
नाल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते॥ (,, ,, २५)

जगन्नाथपुरी के प्रधान देवता

नील मेघ के समान श्यामसुन्दर श्रीविष्णु पुरुषोत्तम श्रीजगन्नाथजी विराजमान हैं। उनके दक्षिणभाग में शङ्ख-इन्दु के समान शुभ्र वर्ण के श्रीबलरामजी हैं। इन दोनों के मध्यभाग में कुङ्कुम के समान लाल वर्णवाली कल्याणमयी सुभद्रा देवी सुशोभित हो रही हैं। वहाँ पर रक्तवर्ण वाला सुदर्शन चक्र भी है।

उनके रथों का आकार-प्रकार

भगवान् वासुदेव के रथ पर गरुड से चिह्नित ध्वजा है, उनका रथ सोलह हाथ के परिणाम का है, बाईस हाथ ऊँचा है और उस रथ में सोलह पहिये हैं। भगवती सुभद्रा का रथ पद्मध्वज से युक्त है, बारह हाथ का विस्तार है और बारह पहिये वाला है। श्रीबलरामजी के रथ का विस्तार चौदह हाथ है और उसमें चौदह पहिये हैं। उस रथ पर हलचिह्नित ध्वज है।

समुद्र-स्नान का फल

समस्त तीर्थों का सेवन करने और समस्त देवालयों में दर्शन-पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल निश्चित ही समुद्र-स्नान करने से प्राप्त हो जाता है।

अविश्वास

मूढ़, नास्तिक, कृतघ्न और आत्महन्ता प्राणियों को धार्मिक कृत्यों में दुर्भाग्य से अविश्वास की युक्तियाँ उत्पन्न हो जाती है।

जगन्नाथ भगवान् के प्रसाद का माहात्म्य

अमृतोपम पक्वान्न को नारायण प्रभु स्वयं भक्षण करते हैं। उनके भोजन से शेष बचे उच्छिष्ट-उत्कृष्ट अन्न को जो प्रसादरूप में खाता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

भगवती जगद्धात्री महालक्ष्मी के द्वारा वैष्णवाग्नि में सुसंस्कृत-पकाये गये पक्वान्न का ही भगवान् श्रीहरि जगन्नाथजी भोग लगाते हैं। उनके द्वारा सेवित प्रसाद (उच्छिष्ट) सकल पापों का हरण करने वाला है।

वह प्रसाद इतना पवित्र है कि (कुक्कुर) कुत्ता के मुख से स्पर्श हो जाने पर भी ग्राह्य है। थोड़े पुण्य वाले मनुष्यों का उस प्रसाद में विश्वास नहीं होता।



काशी

शिवलोकाभिधं क्षेत्रं निर्मितं तेन ब्रह्मणा।
तदेव काशिकेत्येतत्प्रोच्यते क्षेत्रमुत्तमम् ॥
परं निर्वाणसंस्थानं सर्वोपरि विराजितम्।
मुने प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन ॥
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः।
अस्यानन्दवनं नाम पुराकारि पिनाकिना ॥ (शिवापुरा. रु.सं.सृ. ६)

काशी

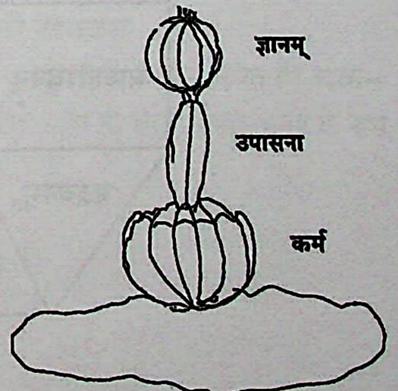
कालस्वरूपी उस ब्रह्म ने शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया। उसी उत्तम शिव क्षेत्र को सबके ऊपर विराजमान होने के कारण 'काशी' नाम से कहते हैं। वह 'मोक्ष-क्षेत्र' भी कहा गया है।

हे मुनि! भगवान् शिव और शक्ति प्रलयकाल में भी इस क्षेत्र का त्याग नहीं करते। इसी से इस क्षेत्र को अविमुक्त क्षेत्र भी कहा जाता है। पिनाक धारण करने वाले सदाशिव ने सर्वप्रथम अपने इस विहार-स्थल को 'आनन्दवन' नाम से कहा था।



शिवनैवेद्याशनम्

शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढनिश्चयः।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम्।
दृष्टेऽपि शिवनैवेद्ये यान्ति पापानि दूरतः।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ (शिवपु.वि.सं. २२)



(भुशुण्डिरामा. ९६)

शिव नैवैद्य की प्रशंसा

शिवभक्त सर्वदा पवित्र, शुद्ध सद्व्रती एवं दृढ़ निश्चय कर शिव-नैवेद्य भक्षण करें और उसके अग्राह्य होने की भावना त्याग दें। शिव-नैवेद्य के दर्शन मात्र से ही समस्त पाप दूर भाग जाते हैं। शिव-नैवेद्य के भक्षण कर लेने पर शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है।

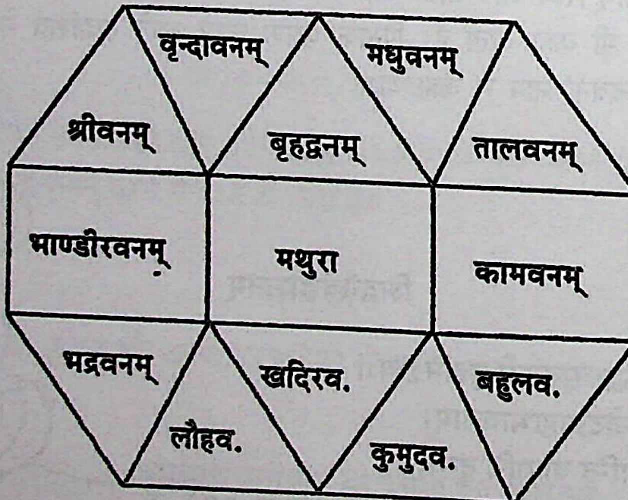
कर्म, उपासना और ज्ञान

यह एक क्रम है–कर्म, उपासना और फिर ज्ञान। वेदों में भी यही त्रिकाण्ड क्रम है। भगवद्दाज्ञा स्वरूप वेद-स्मृति वचनों में विश्वास करते हुए तदनुसार सत्कर्मों के अनुपालन से उपासना-भगवान् के सान्निध्य प्राप्ति की भावना जागृत होती है। उत्कट उपासना से उपास्य-उपासक भाव के एकीभूत होने को ही ज्ञान कहते हैं। जीव सत्कर्मों के द्वारा उपासना रूप शक्ति के आश्रय से ही ज्ञानस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है।



मथुरा

मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते।।



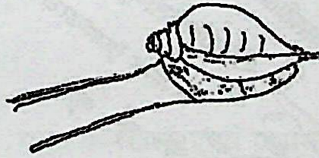
(गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्)

मथुरा

ब्रह्मज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का मन्थन करने पर जो उसका सारभूत है, वह मथुरा नाम से कथित है। जिस (परमात्मा कृष्ण) ब्रह्मज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण संसार को मथा जाय, उस ज्ञान का सारभूत जिसमें है; उसे मथुरा कहते हैं। यह मथुरा द्वादश वनों से आवृत्त होती हुई भारतभूमि पर सुशोभित है, बारह वन हैं– १. बृहद्वन, २. मधुवन, ३. तालवन, ४. कामवन, ५. बहुलवन, ६. कुमुदवन, ७. खदिरवन, ८. लौहवन, ९. भद्रवन, १०. भाण्डीरवन, ११. श्रीवन, १२. वृन्दावन।



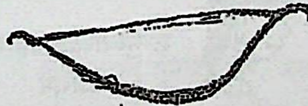
१. त्वक्केशांगुलिदशनापर्वाणि। २. भुजौ नेत्रे हनुर्जानू नासा। ३. पाण्यंघ्रितलनेत्रान्ते तालुजिह्वाधरोष्ठकं सनखम्। ४. वक्षःकुक्ष्यालिकस्कन्धकरवक्त्रम्।



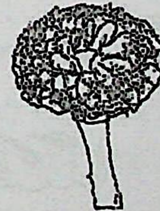
पञ्चभूतात्मकः शङ्खः परो रजसि संस्थितः।



चलस्वरूपमत्यन्तं मनश्चक्रं निगद्यते।



आद्या माया भवेच्छार्ङ्गम्।



पद्मं विश्वं करे स्थितम्।

शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग और पद्मधारी नारायण

शङ्ख– पञ्च भूतात्मक ही भगवान् श्रीनारायण का शङ्ख है, जो रजोगुणरूपी हाथों में स्थित है। **चक्र–** अत्यन्त चञ्चल स्वरूप मन ही चक्र कहा गया है। **शार्ङ्ग धनु–** आदिशक्ति माया ही शार्ङ्ग नामक धनुष के रूप में हैं। **पद्म–** विश्वरूप पद्म (कमल) ही भगवान् के हाथ में स्थित है।



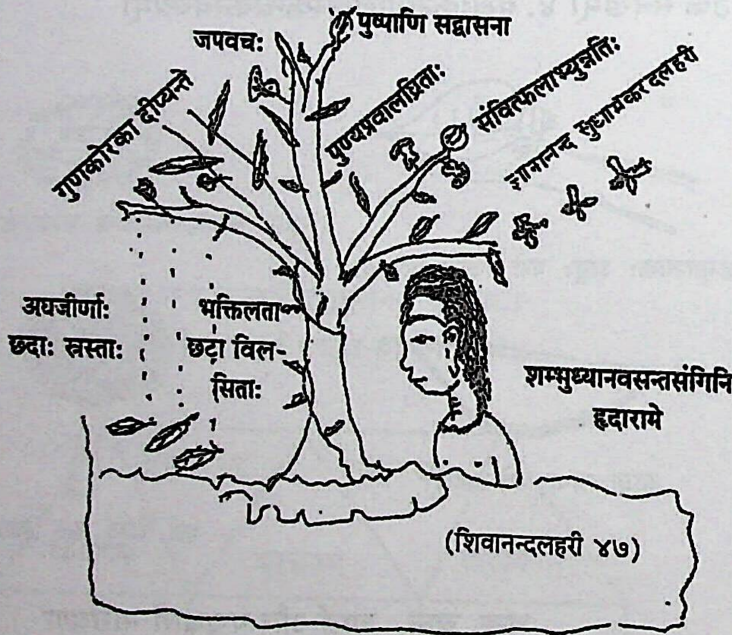
तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः।। (अद्वैतमार्तण्डः)

भगवत् शरणागति

मैं उसी का हूँ, वह मेरा ही है और मैं वह ही हूँ–इस प्रकार साधना के अभ्यास से परिपक्व हो जाने पर भगवत् शरणागति तीन प्रकार की हो जाती है।

• • ✿ • •

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासांगत्यसम्भाषणे।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते!
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् कृतार्थोऽस्म्यहम्।। (शिवानन्दलहरी २८)



शिवोपासना में चारों मुक्ति

परम शिवोपासक कहता है कि हे भवानीपति! तुम्हारे पूजन में सारूप्य, शिव-महादेव–इन मङ्गलमय नामों के संकीर्तन में सामीप्य, तुम्हारी भक्ति में अग्रगण्य भक्तों के साथ सम्भाषण में सालोक्य और चराचरात्मक शिव-विग्रह के ध्यान में सायुज्य–इस तरह मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया, मैं स्वयं में कृतार्थ हो गया। मुझे चारों मुक्तियाँ प्राप्त हो गयीं।

अथवा शिव-पूजन और नाम-संकीर्तन में सारूप्य, श्रेष्ठ शिवभक्तों का सत्संग व उनके साथ वार्तालाप से सामीप्य, चराचरात्मक शिवविग्रह के ध्यान में सालोक्य–इन तीन मुक्तियों को प्राप्त करता हुआ जब मैं अपने

में ही कृतार्थ होता हूँ–शिवस्वरूप आत्मा में निमग्न हो जाता हूँ, तब मेरा सायुज्य भी सिद्ध हो जाता है। हे शिव! आपके श्रीचरणों में मुझे चारों मुक्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं। मेरा यह मानव शरीर कृत-कृत्य हो गया, मैं धन्य हो गया।

शिवानन्दलहरी

भगवान् शम्भू का ध्यानरूप वसन्त संगी हृदय एक सुन्दर बगीचा है। उसमें शक्तिलता अङ्कुरित होकर अपनी छटा से शोभा को प्राप्त हुई; किन्तु पाप के कारण वह वृद्धि को प्राप्त नहीं हो पाती है, अघ से जीर्ण होकर उसके पत्र नीचे गिर जाते हैं। पुनः पुण्यों के प्रभाव से पत्ते निकल आते हैं, गुणरूपी कलियाँ सुशोभित होने लगती हैं और जप-वचनों से समुत्पन्न सद्वासना के पुष्प विकसित होते हैं। फिर उसमें ज्ञानानन्दरूपी अमृत.की लहरें उठने लगती हैं और संवित्–ज्ञानरूपी फल की अभ्युन्नति हो जाती है। अर्थात् ज्ञानोदयरूप फल की प्राप्ति हो जाती है।



गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागं पुष्करं तथा।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे॥ (देवीपु.)

महापुण्यप्रद कुरुक्षेत्र-स्नान

कनखल में गंगा-स्नान पुण्यप्रद् है, प्रयाग और पुष्कर में भी स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है, किन्तु राहुग्रस्त सूर्यग्रहण काल में कुरुक्षेत्र में किया गया स्नान महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है।



श्रीहरिः

अपने को पाना बाकी है

कितना कुछ करके देख लिया क्या करना है क्या बाकी है।
संसार समुद्र के कतरे को भवसागर तरना बाकी है॥१॥
इस पार किंनारे बैठ लिया सिर पैर पसार के लेट लिया।
उधार नकद सब बेच दिया उस पार उतरना बाकी है॥२॥
इस लोक से कितना प्यार किया निरस सौदे का व्यापार किया।
तन-मन-धन उस पे वार दिया पर लोक से डरना बाकी है॥३॥

इस तलपे जल की थाह नहीं तरने का कोई उपाय नहीं।
किश्ती में चतुर मल्लाह नहीं रो-रो कर मरना बाकी है।।४।।
संग साथ बनाकर देख लिया संसार बनाकर देख लिया।
अपनों को पाकर देख लिया अपने को पाना बाकी है।।५।।
घर महल सजाकर देख लिया कई बार लुभाकर देख लिया।
अरमान मिटाकर देख लिया अभिमान मिटाना बाकी है।।६।।
पा-पा कर खोना देख लिया हँसना रोना सब देख लिया।
संसार खिलौना देख लिया अब सहज समाना बाकी है।।७।।
जीवन मुक्ति को पाने की रख कुंजी हाथ खजाने की।
शंकर परिवार घराने का जगमात ठिकाना बाकी है।।८।।



अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च।
नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः।। (ब्रा. प. ५६.३०)

ग्रहों का अनुग्रह

अहिंसक, जितेन्द्रिय, नियम में स्थित और न्याय से धर्नाजन करनेवाले पुरुषों पर ग्रहों का सदा अनुग्रह रहता है।



तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी।
तिलहोता च दाता च षट्तिलो नावसीदति।। (भवि.पु. उत्तर प. १२२)

तिल की महिमा

तिल का उबटन, तिल मिश्रित जल से स्नान, तिलों से पितृतर्पण, तिल का हवन, तिल का दान और तिल से बनी हुई सामग्री (भोज्य पदार्थ) का भोजन करने से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता।



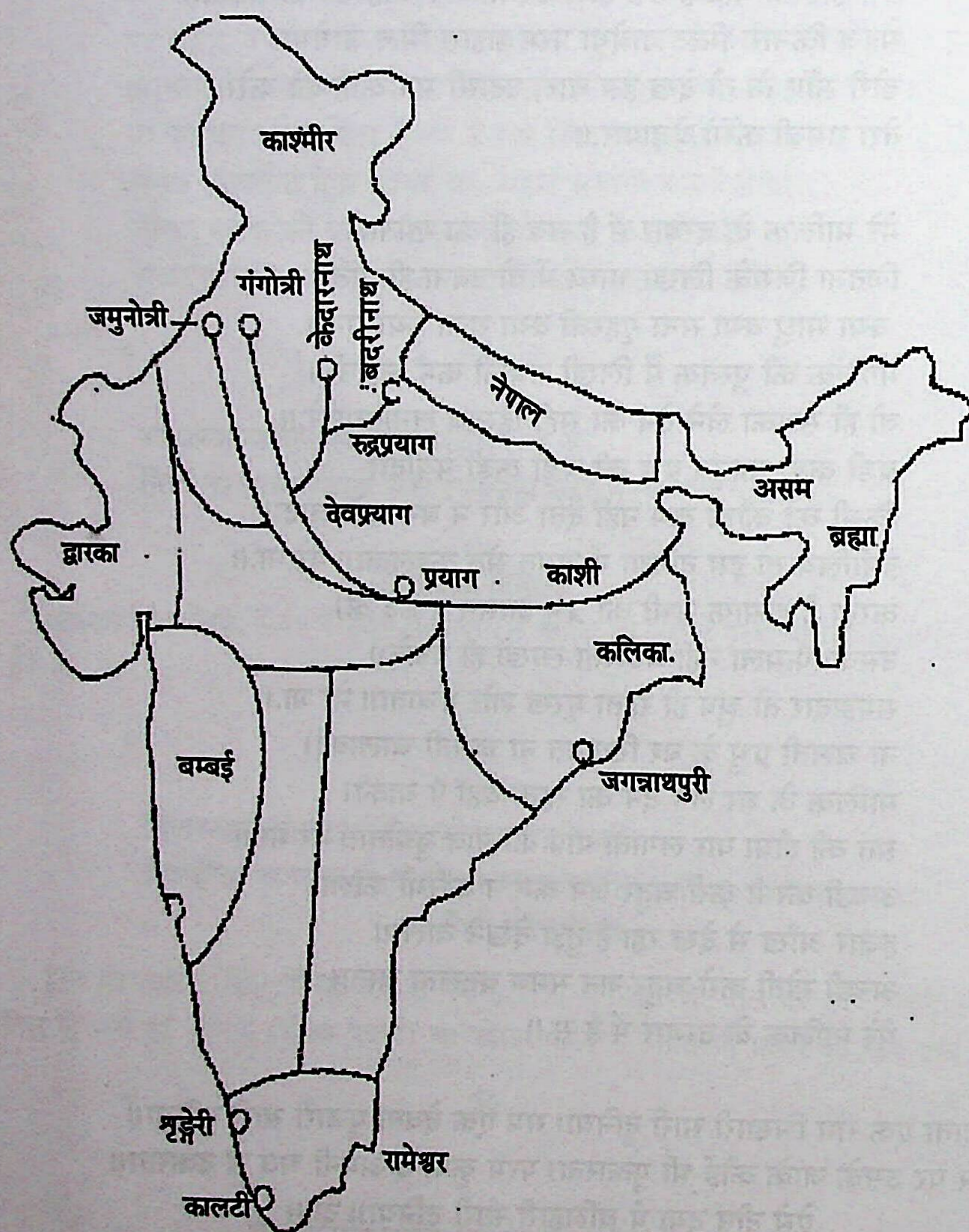
तेरा रामजी करेंगे बेड़ापार उदासी मन काहे को रे।
काहे को डरे रे काहे को डरे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ।।

नैया तेरी राम हवाले, लहर लहर हरि आप संभाले।
हरि आप ही उठावे तेरा भार, उदासी मन काहे को करे।। तेरा.।।
काबू में मँझधार उसी के, हाँथों में पतवार उसी के।
तेरी हार भी नहीं है तेरी हार, उदासी मन काहै को करे।तेरा.।।
सहज किनारा मिल जायेगा परम सहारा मिल जायेगा।
डोरी सौंप के तो देख इस बार, उदासी मन काहै को करे।।
तेरा रामजी करेंगे बेड़ापार.।।

मेरे मालिक के दरबार में है सब ही का खाता।
जितना जिसके लिखा भाग्य में वो उतना ही पाता।
क्या साधु क्या सन्त गृहस्थी क्या राजा क्या रानी।
मालिक की पुस्तक में लिखी सबकी कर्म कहानी।।
वो ही सबका लेने देन का सही हिसाब लगाता।।मेरे.।।
बड़ी कड़ी कानून प्रभू की बड़ी कड़ी मर्यादा।
किसी को कौड़ी कम नहीं देता और न बन सके जादा।
इसीलिये तो इस दुनिया में जगत सेठ कहलाता।। मेरे मा.।।
करता है इन्साफ सभी का प्रभु आसन पे डट के।
उसका फैसला नहीं बदलता लाखों ही पटके।।
समझदार तो चुप ही रहता मूरख शोर मचाता।। मेरे मा.।।
ना चलती प्रभु के घर खिदमत ना चलती चालाकी।
मालिक के घर लेन देन का रहता वहाँ पै बाकी।
सत की शैया पार लगाता पाप की नाव डुबोता।। मेरे मा.।।
अच्छी करनी करो चतुर जन कर्म न करियो काला।
हजार आँख से देख रहा है तुझे देखने वाला।।
अच्छी खेती करो चतुर जन समय बदलता जाता।
मेरे मालिक के दरबार में है स.।।

दाता एक राम भिखारी सारी दुनिया। राम एक देवता पुजारी सारी दुनिया।।
द्वार पर उसके जाके कोई भी पुकारता। परम कृपा दे अपनी भव से उबारता।।
ऐसे दीन दया पै बलिहारी सारी दुनिया।। दा.।।
दो दिन का जीवन प्राणी कर ले विचार तू। प्यारे प्रभु को अपने मन में निहार तू।।
विना हरि प्यार से दुखारी सारी दुनिया।। दा.।।

नाम का प्रमाण जब अन्दर जगायेगा । प्यारे श्रीराम का तू दरशन पायेगा।
ज्योति से जिसकी है उजियारी सारी दुनिया । दाता एक राम भिखारी सारी दुनिया।।



अथ महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्री महामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। श्रीमृत्युञ्जयो देवता। गौरी शक्तिः। सर्वारिष्टशान्त्यर्थं इष्टप्राप्त्यर्थं च पाठे विनियोगः।

ध्यानम्

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तस्थितम्।
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्॥
कोटीन्दुप्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलम्।
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपति मृत्युञ्जयं भावयेत्॥

ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥१॥
नीलकण्ठं कलामूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम्। नमामि शि.॥२॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम्। नमामि शि.॥३॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्। नामामि शि.॥४॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम्। नामामि शि.॥५॥
गंगाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम्। नमामि शि.॥६॥
अनाद्यं परमानन्दं कैवल्यपदकारणम्॥७॥ नमामि शि.॥७॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थितिविनाशकम्॥8॥ नमामि शि.॥८॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारकर्तारमीश्वरं गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किन्नो मृत्युः करिष्यति॥९॥
मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसंन्निधौ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति नाग्निचोरभयं क्वचित्॥१०॥
शतावर्तं प्रकर्तव्यं संकटे कष्टनाशनम्।
शुचिर्भूत्वा पठेत्स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥११॥
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः॥१२॥
तावदस्थिगतप्राणः त्वच्चित्तोऽहं सदा मृडः?।
इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यं मनुं जपेत्॥१३॥
नमः शिवाय साम्बाय हरये परमात्मने।

प्रणतक्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः॥१४॥

अथ शतमनुः

ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रों ह्रैं ह्रः ह्रन ह्रन दह दह पच पच गृहाण गृहाण मारय मारय मर्दय मर्दय महा महा भैरव भैरव रूपेण धुनय धुनय कम्पय कम्पय विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वरीं क्षोभय क्षोभय कटु कटु मोह्य मोह्य हुं फट्. स्वाहा। इति मन्त्रमात्रेण सर्वाभीष्टो भवति। श्री मार्कण्डेयपुराणे।

महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

इस महामृत्युञ्जय स्तोत्र मन्त्र के मार्कण्डेय ऋषि हैं, अनुष्टुप छन्द है, श्री मृत्युञ्जय देवता हैं, गौरी शक्ति हैं, सर्वारिष्ट शांति के लिए तथा इष्टप्राप्ति के लिए ही इसका पाठ में विनियोग है।

ध्यानम्

चन्द्र सूर्य अग्निरूपी विलोचन वाले जिनके पावनतम मुखारबिन्द पर मुस्कराहट खिली है, ऐसे विश्वनाथ जो पद्मासन में विराजमान हैं, अथवा (दैहिकावस्था का दृष्ट पद्मासन एवं आन्तरिक ध्यानावस्था में हृत्पद्मस्थ अवस्थित) ज्ञानमुद्रा-मृग एवं अक्षसूत्रादि हाथों में शोभित है, चन्द्र की शीतल एवं अमृतस्त्रावी प्रभा जैसे प्रभा वाले, करोड़ों चन्द्रों की द्रवीभूत सुधा से परिप्लावित दिव्य देह वाले–हारादि आभूषणों से उज्ज्वल, विश्वविमोहन पशुपति जगदीश्वर महादेव मृत्युञ्जय को अन्तःकरण में भावित करें।

रुद्र पशुपति स्थाणु नीलकण्ठ उमापति देवाधिदेव महादेव को मस्तक झुकाकर नमन करता हूँ, हमारा मृत्यु क्या कर सकता है।।१।।

नीलकण्ठ-कलामूर्ति-कालज्ञाता-कालहन्ता महाकाल को हम नमन करते हैं, मृत्यु हमारा क्या बिगाड़ सकता है।।२।।

नीलकण्ठ-विरूपाक्ष-निर्मल निलयप्रभ महादेव की हम वन्दना करते हैं, मृत्यु हमारा क्या बिगाड़ सकता है।।३।।

वामदेव-महादेव-लोकनाथ जगद्गुरु महादेव को हम वन्दन करते हैं, मृत्यु हमारा क्या कर सकता है।।४।।

देवदेव-जगन्नाथ-देवेश वृषध्वज महादेव को हम प्रणाम करते हैं, मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।५।।

गंगाधर-महादेव-सर्वविध आभरणभूषित महादेव को हम नमन करते हैं, मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।६।।

अनादि दिव्य परमानन्द कैवल्यपद प्रदाता महादेव को हम प्रणाम करते हैं, मृत्यु हमारा क्या लेगा।।७।।

स्वर्ग व मोक्ष प्रदाता, सृष्टि-स्थिति-एवं संहारक मृत्युञ्जय को हम नमन करते हैं, मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।८।।

मार्कण्डेय ऋषि द्वारा सृजित स्तोत्र का पाठ जो साधक शिवसन्निधि में करता है, उसको मृत्युभय-

अग्निभय-चोरभय नहीं हो सकता है।।१०।।

संकट के समय १०० बार इस (संकटनाशक) स्तोत्र का पाठ जो आभ्यन्तर बाह्यपवित्रतापूर्वक करता है, उसे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।।११।।

हे महामृत्युञ्जय हे महादेव मैं शरणागत हूँ मेरी रक्षा करें, मैं जन्म, मृत्यु-जरा (बुढ़ापा) रोगप्रद कर्मबन्धनों से पीड़ित हूँ।।१२।।

मैं तुम्हारा हूँ, हे मृड! सदा तुममें ही मेरे प्राण हैं, तुममें ही मेरा चित्त लगा है। ऐसा भगवच्चरणों में निवेदन करके त्र्यम्बक इस मन्त्र को जपे।।१३।।

माँ पराम्बासहित शिव हर परमात्मा योगियों के स्वामी शरणागतों के रक्षक (आर्तत्राण) महादेव के चरणों में नमस्कार है।।१४।।

ये दिव्य मन्त्र मूल में है। इस मन्त्र के जपमात्र से अभीष्ट प्राप्त होता है।



ज्ञान रहित ज्ञाता रहित रहित ज्ञेय अरु ज्ञान।
लगी कभी छूटै नहीं यह समाधि विज्ञान॥

ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय = (ज्ञान=जानने की विधि, ज्ञाता-जानने वाला, ज्ञेय–जिसे जानने की आकांक्षा है) इस त्रिपुटी से रहित होकर अर्थात् इनके इस भेद-भाव की भिन्न प्रतीति को मिटाकर स्वयं को स्वयं में विलीन करने पर ही वास्तविक समाधि है, एक बार लग जाये तो फिर टूटे नहीं।



व्रणकुष्ठादिकं सर्वं नश्येद्द्वाविंशतिस्तवात्। (विष्णुसहस्त्रनाम)।

(अगस्त्यसंहिता)

श्रीगणेशाय नमः। श्रीपार्वतीपतये नमः अथ बीजाक्षरवर्णमालिकास्तोदम्।

साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव। साम्ब सदाशिव साम्ब शिव॥

अद्‌भुतविग्रह अमराधीश्वर अगणित गुणगण अमृत शिव॥सा.॥१॥

आनन्दामृत आश्रित रक्षक। आत्मानन्द मेश शिव॥सा.॥२॥

इन्दु कलाधर इन्द्रादि प्रिय। सुन्दर रूप सुरेश शिव॥सा.॥३॥

ईश सुरेश महेश जनप्रिय। केशव सेवित कीर्ति शिव॥ सा.॥४॥

उरगादि प्रियभूषण शंकर। नरक विनाश नरेश शिव।सा.॥५॥
ऊर्जितदानव नाश परात्पर। अर्जित पाप विनाश शिव।सा.॥६॥
ऋग्वेद श्रुति मौलि विभूषण। चन्द्रार्काग्नि त्रिनेत्र शिव।सा.॥७॥
नृपमनादि प्रपञ्च विलक्षण। तापनिवारण तत्त्वशिव॥ सा.॥८॥
लिङ्गस्वरूप सर्वबुधप्रिय। मंगलमूर्त्ति महेश शिव॥ सा.॥९॥
लूताधीश्वर सर्वजनप्रिय। वेदान्त प्रिय वेद्य शिव।सा.॥१०॥
एकानेक स्वरूप विश्वेश्वर। योगि हृदि प्रियवासशिव।सा.॥११॥
ऐश्वर्याशय चिन्मय चिद्घन। अच्युत नन्द महेश शिव।सा.॥१२॥
ओंकार प्रिय उरगविभूषण। ह्रींकारादि महेश शिव।सा.॥१३॥
औरस लालित अन्तक नाशन। गौरी समेत गिरीश शिव।सा.॥१४॥
अम्बरवास चिदम्बर नायक। तुम्बुर नारद सेव्य शिव।सा.॥१५॥
आहार प्रिय आदिगिरीश्वर। भोगादि प्रिय पूर्णा शिव।सा.॥१६॥
कमलाक्षार्चित कैलास प्रिय। करुणा सागर कान्तशिव।सा.॥१७॥
खड्ग शूल मृग ठक्कद्यायुध। विक्रमरूप विश्वेशशिव।सा.॥१८॥
गङ्गा गिरिसुतबल्लभगुणहित। शंकर सर्वजनेश शिव।सा.॥१९॥
घातक भञ्जन पातकनाशन। गौरी समेत गिरीश शिव।सा.॥२०॥
शाश्रित श्रुति मौलि विभूषण। वेदस्वरूप विश्वेश शिव।सा.॥२१॥
चण्ड विनाशन सकल जन प्रिय। मण्डलाधीश महेश शिव॥ सा.॥२२॥
छत्रकिरीट सुकुण्डल शोभित पुत्रप्रिय भुवनेश शिव।सा.॥२३॥
जन्म जरामृति नाशन कल्मष। रहित ताप विनाश शिव।सा.॥२४॥
झङ्काराश्रय भृङ्गिरिटिप्रिय। ओङ्कारेश महेश शिव।सा.॥२५॥
ज्ञानाज्ञानविनाशक निर्मल। दीन जनप्रिय दीप्त शिव।सा.॥२६॥
टङ्काद्यायुध धारण सत्वर। ह्रीं करादि सुरेश शिव।सा.॥२७॥
टङ्क स्वरूप सहकारोत्तम। वागीश्वर वरदेव शिव।सा.॥२८॥
डम्बविनाशडिंडिमभूषण। अम्बरवास चिदीश शिव।सा.॥२९॥
ढं ढं. डमरुक धरणी निश्चर। ढुण्ढिविनायक सेव्य शिव।सा.॥३०॥
नलिन विलोचन नटन मनोहर। अलि कुलभूषण अमृतशिव।सा.॥३१॥
तत्त्वमसीत्यादि वाक्यस्वरूप। नित्यानन्द महेश शिव।सा.॥३२॥

स्थावर जंगम भुवनविलक्षण। भावुक मुनिवर सेव्यशिव।।सा.।।३३।।
दलितमनोन्मन दारिदनाशन। चन्दनलेपित चरण शिव।। सा.।।३४।।
धरणीधर शुभ धवलविभास्वर। धनदाक्षिप्रिय दानशिव।।सा.।।३५।।
नानामणिगणभूषण निर्गुण। नरल जनप्रिय नाट्यशिव।।सा.।।३६।।
पन्नगभूषण पार्वतिनायक। परमानन्द परेश शिव।।सा.।।३७।।
फालविलोचन मानु कोटि प्रभु। हालाहरधर अमृत शिव।।सा.।।३८।।
बन्धविनाशन बृहदीशानम्। स्कन्दादिप्रिय कनकशिव।।सा.।।३९।।
भस्मविलेपन भवमयनाशन। विस्मयरूप विश्वेश शिव।।सा.।।४०।।
मन्मथनाशन मधुपान प्रिय। मन्थरपर्वत वासशिव।।सा.।।४१।।
यतिजनहृदय निवासित ईश्वर। विधिविष्ण्वादि सुरेश शिव।।सा.।।४२।।
रामेश्वर रमणीय मुखाम्बुज। सोमेश्वर सुकृत शिव।।सा.।।४३।।
लङ्काधीश्वर सुरगण सेवित। लावण्यामृत लसित शिव।।सा.।।४४।।
वरदामयर वासुकिभूषण। वन मालादिविभूषण शिव।।सा.।।४५।।
शान्तिस्वरूप जगत्रयचिन्मय। कान्ति मति प्रिय कनक शिव।।सा.।।४६।।
षणमुखजनक सुरेन्द्रमुनिप्रिय। षड्गुणादि समेत शिव।।सा.।।४७।।
संसारार्णवनाशन शाश्वत। साधुहृदयप्रियवासुशिव।।सा.।।४८।।
हर पुरुषोत्तम अद्वैतामृत। पूर्ण मुरारि सुसेव्य शिव।।सा.।।४९।।
लद्धालित भक्तजनेश निजेश्वर। कालि नेटेश्वर कामशिव।। सा.।।५०।।
क्षर रूपादि प्रियान्वितसुन्दर। साक्षि जगत्रय स्वामि शिव।सा.।।५१।।
साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव। साम्ब सदासिव साम्बशिव।।

विष्णु सहस्त्रनाम के २२ आवृत्ति पाठ करने से व्रण कुष्णादि रोग नष्ट हो जाते हैं। जगत-अम्बा-सहित सदा कल्याण रूप, सदाशिव का चार वार कीर्तन करें। अद्भुत विग्रह वाले, देवों के देव महादेव, (अमरगणमधीश्वर) असंख्यगुण गण। वाले अमृत रूप शिव। आनन्दसुधा सिन्धु-शरणागतवत्सल, आत्मानन्दरूप। महान् ईश शिव। चन्द्रकला को सिर पर धारण करने वाले, इन्द्रादि देवों के प्रिय, सुन्दर रूप वाले सुरेश शिव। ईश्वर, सुरों के स्वामी-महेश-जनप्रिय कृष्ण द्वारा पूजित इस कीर्ति वाले शिव। सर्पालंकार वाले, नरकनाशक, नटराजादि सशक्त दानवों का नाश करने वाले परों से भी परे एकत्रित पाप हन्ता शिव ऋग्वेद की श्रुति को शिरोभूषण बनाये (शिरोधार्य किया ज्ञान-वेद वह कहा शिर में) चन्द्रसूर्य-अग्निरूपी त्रिनेत्र वाले शिव। ये पवित्र स्तोत्र सरल ही है हिन्दी व संस्कृत में विशेष भेद नहीं है जो स्तोत्र में है वहा

हिन्दी अर्थ बनेगा, अतः श्रद्धाभाव भरित हो इसका पाठ करें, भगवान् के एक-एक नाम की महिमा का चिन्तन करें।

'साम्बसदाशिव, साम्बसदाशिव, साम्बसदाशिव साम्बशिव'।



श्रीकार्तिकेयस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः। स्कन्द उवाच।

योगीश्वरो महासेनः, कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः।
स्कन्दः कुमारः सेनानी, स्वामी शङ्करसम्भवः॥१॥

गाङ्गेयस्ताम्रचक्षु, ब्रह्मचारि शिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः, क्रौञ्चारिश्च षडाननः॥२॥

शब्दब्रह्मसमुद्रश्च, सिद्धः सारस्वतो गुहः।
सनत्कुमारो भगवान्, भोगमोक्षफलप्रदः॥३॥

शरजन्मा गणाधीशः, पूर्वजो मुक्तिमार्गकृत्।
सर्वागमप्रणेता च, वाञ्छितार्थप्रदर्शनः॥४॥

अष्टाविंशति नामानि मदीयानि च यः पठेत्।
प्रत्यूषे श्रद्धया युक्तो, मूको वाचस्पतिर्भवेत्॥५॥

महामन्त्रमयानीति, मम नामानुकीर्तनम्।
महाप्रज्ञामवाप्नोति, नात्र कार्या विचारणा॥६॥

॥ श्रीरुद्रयामले प्रज्ञाविर्धनम्॥

कार्तिकेयस्तोत्र प्रज्ञा (बुद्धि) वर्धक (२८ नाम वाला स्तोत्र है यह)

श्रीगणेश जी को नमन—स्कन्द बोले— १. योगेश्वर, २. महासेन, ३. कार्तिकेय, ४. अग्निनन्दन, ५. स्कन्द, ६. कुमार, ७. सेनानी ८. स्वामी, ९. शंकरसम्भव, १०. गांगेय, ११. ताम्रचूड, १२. ब्रह्मचारी, १३. शिखिध्वज, १४. तारकारि, १५. उमापुत्र, १६. क्रौंचारि, १७. षडानन, १८. शब्द ब्रह्म समुद्र, १९. सिद्ध, २०. सारस्वत, २१. गुह, २२. भगवान् सनत्कुमारभोगमोक्षफलप्रद, २३. शरजन्मा, २४. गणाधीश, २५. पूर्वज, २६. मुक्तिमार्गकर्ता, २७. सर्वागमप्रणेता, २८. वाञ्छितार्थ प्रदर्शक।

प्रातःकाल मेरे इन अट्ठाईस नामों को जो श्रद्धापूर्वक पढ़ता है, वह मूक भी बृहस्पति सम हो जाता है। महामन्त्र स्वरूप इन मेरे नामों का कीर्तन महाप्रज्ञा प्रदान करने वाला है, इसमें शंकित होकर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।



श्रीकृष्णश्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकी कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणेऽङ्घ्रिपद्मभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वमिवादने कपिपतिर्दास्ये च सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कैवल्यमेते विदुः॥

नवधा भक्ति के नवाचार्य

श्रीकृष्णतत्त्व श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव जी, स्मरण में प्रह्लाद, पदपद्मभजन में लक्ष्मी, पूजन में पृथुजी, अभिवादन में अक्रूर, दास्य में हनुमान्, सख्य में अर्जुन, सर्वस्वसहित आत्मनिवेदन में बलि हुए। इन्होंने कैवल्यतत्त्व को भक्ति की एक विधा द्वारा प्रसन्न कर हृदय में धारण किया।



काशी

काश्यां हि काशते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन, तेन प्राप्ता हि काशिका॥१॥
काशी मध्येन धर्मोऽस्ति, नाधर्माः सन्ति वै तथा।
तत्कार्ये न कदाचिद्वै, ज्ञानगंगाप्रभावतः॥२॥
विश्वेश्वरः स्वयं ह्यात्मा, तुर्या वै मणिकर्णिका।
सा वै प्रोक्ता कुरुक्षेत्रं, त्रिधा मुक्तिप्रदायकम्॥३॥
प्रयागादग्रिमं स्थानमत्रापि च सदैव सा।
द्वैताद्वैतसमा काशी, निर्विकारः सदा भवेत्॥४॥
यमुना ब्रह्मा विद्या वै, गंगा च ब्रह्मरूपता।

तयोरैक्यं प्रयागः स्यात्, ग्रन्थिविच्छेदनिश्चयः।।५।।
अन्नपूर्णा सदा तुर्या, विवेको ढुण्ढिनायकः।
निर्भयो निश्चयो यस्य, कालभैरवनामकः।।६।।
काशीमध्ये वसेन्नित्यं, काशीरूपतया सदा।
काशीरूपस्वरूपोऽस्मि, काशिकामाप्तवानयम्।।७।।
न मे जन्म न मे मृत्युः, न दुःखं नासुखं तथा।
सदा एक स्वरूपोऽस्मि, द्वैताद्वैतं न विद्यते।।८।।
वेदशास्त्रं च यद्यावद्, व्यवहारो लौक़िकस्तथा।
अविद्या विषं च तद्वै, मनःस्फुरणमेव च।।९।।
आत्मवस्तु सदा पूतं, अवस्तु मनने क्वचित्।
मन एव हि संसारः, तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
शोधनं वादमात्रं च, न तु रूपोयमर्दनम्।।१०।।

काशीतत्व

काशृ दीप्तौ से काशी वन जैसे प्रकाश धन्य है–ये सर्व प्रकाशिन काशी अन्तःकरण में दिव्य ज्ञान प्रकाश के साहचर्य से ही प्रकाशिन होनी है, जिसने उस दिव्य ज्योनिर्मयी ज्ञानमयी काशी को जान लिया, उसने ही वास्नव में काशी को प्राप्न किया है।।१।।

काशी में न नो धर्म है (पुण्यकृन संसृनि परम्परा का वन्धन नहीं है। न ही अधर्म है (पाप नो पनन वन्धन दुःखादि का हेतु है ही जव नक धर्माधर्म पुण्यपाप रहेंगे, नव नक जन्ममरण का चक्र लगा रहेगा) जव धर्म अधर्म है ही नहीं, नव इनके कार्य कैसे होंगे, कारण विना कार्य कदापि संभव नहीं, धर्मकृन कार्य व अधर्मकृन कार्य भी नहीं है क्यों? क्योंकि ज्ञान गंगा के प्रवाह में पनिन प्रवाहिन धर्माधर्म रहे ही नहीं।।२।।

विश्वेश्वर स्वयं ही आन्मा हैं नथा नुरीयावस्था ही मणिकर्णिका है, नुरीयावस्था ही कुरुक्षेत्र भी है आन्मनीर्थ का प्रसंग है ये नौ ही मुक्तिदायक हैं।।३।।

प्रयाग से भी वढ़कर मुक्तिदान में उदार है यह मुक्तिक्षेत्र यहाँ मुक्ति का खुला भण्डार है आओ पाओ जाओ प्रयाग यहाँ स्वयं है ये काशी द्वैन व अद्वैन में मग्न है, यहाँ आकर प्राणी निर्विकार हो जाना है।।४।।

ब्रह्मविद्यारूपीयमुना-द्रवीभूत ब्रह्मतत्त्वरूपी गंगा (जैसे गंगा यमुना का संगम ही प्रयाग है, वैसे ही ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्मैकतत्त्व का संगम ही प्रयाग है) इन दोनों का एक रूप हो जाना ही प्रयाग है (भूतल का प्रयाग भौतिक से प्रतीत होने वाले दिव्य जल का फल है, किन्तु ये तो आन्तर प्रयाग है) यही प्रयाग चिज्जडग्रन्थि का विमोचक है। (दृष्टि संगम प्रयाग मलादिनाशक अभीष्टप्रदायक है, दर्शन में रोचक है। ठीक वैसे ही अदृष्ट आन्तर प्रयाग मलविक्षेपनाशपूर्वक भ्रम-ग्रन्थि नाशक है)।।५।।

माता अन्नपूर्णा जैसे दृष्ट काशी में है, ठीक वैसे ही ज्ञानमयी काशी में भी है तुरीयावस्था में जीना ही अन्नपूर्णा है, सत् असत् विवेक ही ढुढिराज विघ्नहन्ता गणेश है निर्भयत्व निश्चय की दृढ़ता ही काल भैरव की सत्ता है। मैं आन्तर काशी में स्वयं काशी रूप होकर (ज्ञानमयी काशी) ही काशी में निवास करे, जिसे दृढता से ये विश्वास हो गया में काशी रूप ही हूँ, उसने ही काशी को जाना है, माना है एवं वास्तव में काशी को पाया है। ।।(६-७)।।

मेरा जन्म मृत्यु नहीं है (काशी का भी जन्म मरण नहीं है-प्रलयेऽपि या काशते प्रकाशते सा काशी) दुःख और सुख भी नहीं है, सुख-दुःख प्रत्यय ही नहीं है। द्वैत और अद्वैतचर्चा रहितं मैं सदा एकरस एक रूप हूँ।।८।।

वेदशास्त्र प्रतिबोधित जितना भी लौकिक व्यवहार है, वह सब अविद्या विषय है (विद्या की ओर ले जाने के लिए) तथा मन की ही संकल्पना मात्र है मन की ही उछलकूद है।।९।।

दृष्टकाशी भौतिक	:	अदृष्ट ज्ञानमयी काशी
विश्वेश्वर विश्वनाथ	:	आत्मा
अन्नपूर्णा मणिकर्णिका	:	तुरीयावस्था
काशी	:	निर्विकारसाम्यावस्था
गंगा यमुना, प्रयाग, विवेक	:	ब्रह्मविद्या, ब्रह्मरूपता, मिलन
कालभैरव ढुण्ढिराज	:	निर्भयता व दृढता

आत्मतत्त्व सदैव पवित्रता है अवस्तु की मननावस्था भी कदाचित् पवित्र हो सकती है (अवस्तु का मनन ही उसके मिथ्यारम्भ से मुक्त होने में सहयोगी है) मन ही स्वयं विविध रूप धारण करके संसार बन गया है जैसे स्वप्न में बन जाता है वैसे ही। अतः उसे प्रयत्नपूर्वक साधा जाये शोधा जाये (साधना, व शोधना) मन का शोधन कैसे करें? शोधन अर्थात् मन की सत्ता का ही बाध करे, मन के रूप का उपमर्दन नहीं है,मन है ही नहीं, इस विचार द्वारा उसके अभाव प्रत्यय को दृढ करना ही शोधन है,जब मन नहीं, तब मनजन्य संसार कहाँ।।१०।।

यह मुरली त्रिवेद स्वरूपिणी है। श्रुति मन्त्रन् सौ यह पूरी है।।
यह लज्जा वधू के मारन में । जनु अथर्व मन्त्र की रूरी है।।
यह मदन पाल के जारन में बस। साम गान की चेरी है।।
यह प्रेमाद्वैत करनमें मुरली। तत्त्वमसि की भेरी है।।

श्रीकृष्ण की वंशी त्रिवेदस्वरूपिणी श्रुतिमन्त्रमयी है। लज्जावधू के वधार्थ अथर्ववेद के अभिचार मन्त्रमयी है। कामपात के ज्वालनार्थ ये सामगान की भेरी है। ये प्रेमाद्वैत के विस्तार में तत्त्वमसि की घोषणा है।



क्लेशहन्त्री, सुभग मोक्षलघुताकृतसुदुर्लभा।
सान्द्रौनन्दविशेषात्मा, श्रीकृष्णकर्षिणी च सा।।

(भक्तिरसामृ. सिं. १।१३)

षड्गुण भक्ति

वैधी	१. क्लेश हन्त्री–पाप वासना अविद्या क्लेशनाशिका।
	२. सुभगा–जगत्प्रियता से वैकुण्ठ पर्यन्त सुख देने वाली।
भावमती	३. मोक्षलघुताकृत–मुक्तिसुख से भी उत्तमानन्दप्रदः।
	४. सुदुर्लभा।
प्रेमा भक्ति	५. सान्द्र-सघन आनन्दाम्बुधिनिमग्न विशेषावस्थाप्रदा।
	६. श्रीकृष्णप्रदायिका।



रागाङ्कुरश्चेतसि गोपिकानां, पुण्यद्रुमश्चेतसि भक्तिभाजाम्।
आनन्दपुष्पं हृदि मुक्तिभाजां, विश्वस्य बीजं फलितं श्रियेऽस्तु।।

(बिल्वमंगलः)

श्रीकृष्णतत्त्व

गोपिकावृन्द के अन्तःकरण में राग का बीज अंकुरित हुआ भगवती भक्ति के कृपापात्रों के चित्त में पुण्यमय पादप उग आया है। मोक्षाकांक्षियों के पवित्रतम हृदयसरोवर में परमानन्दमय सुरभित पुष्पलता आज विश्व का मूल कारण बीजभूत परमेश्वर फलित हो गया, वह विश्वबीजभूत श्रीकृष्ण कल्याण का हेतु बने। अर्थात् वहीं जगत् कारण सर्वेश्वर सर्वनियन्ता ही गोपाङ्गनाओं में प्रेमपाथेय बना, वही भक्तों के भव्य हृद्भवन में पुण्य पादप बना, वही मोक्षाभिलाषुकों के हृदय में सुरभित पुष्प बना है; वही सब कुछ है सब जगह है।



अष्टांगार्धः। अतीवर वितोषणः।

आपः क्षीरं कुशाग्राणि, घृतं मधु गवां दधि।
रक्ताणि करवीराणि, रक्तचन्दनमित्यपि॥

(स्क.पु.का.खा. २७।९८)

श्रीगंगामन्त्रः (स्क.पु. काशी ख.)
ॐ.नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा॥

सूर्यार्घ्य

सूर्य को प्रसन्न करने के लिए इन आठ वस्तुओं से युक्त अर्घ देना चाहिए जब कोई रोगविशेष बहुविध उपचार करने पर भी शांत न होता हो, तो ये उपासनापरक आध्यात्मिक उपचार अवश्य करें अनुभूत प्रयोग है श्रद्धा तथा विश्वास की कसौटी पर कसा गया समर्पण भरा (दैन्यभाव भरा) अर्घ्यरूपात्मक आराधक रोग दुःख दारिद्र्यादि अंधकार को मिटाकर स्वास्थ्य-सौख्य-सौभाग्यसहित सम्पन्नता का जीवन में नव प्रभात लायेगा नया सबेरा आयेगा।

अर्घ में आठ द्रव्य हैं– १. पवित्र जल, २. गोदुग्ध, ३. कुशाओं के अग्रभाग, ४. गोघृत, ५. शुद्ध मधु (शहद), ६. गोदधि, ७. लाल कनेर के पुष्प, ८. लाल चन्दन घिसकर उसमें मिला लें।

श्री गंगा मन्त्र

श्री गंगा जी की प्रीतिविशेष की प्राप्ति के लिए–'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा'। अनुपनीत (जिनका यज्ञोपवीत नहीं है) प्रणवरहित इस मन्त्र को देखें–यह मन्त्र गंगा

दशहरा के दिन दश-विध पापों के शमनार्थ गंगा पूजन में आता है। सदा ही पुण्य फलप्रद है।

क्षेत्र-संन्यासः

विज्ञाप्यक्षेत्रसंन्यासं, ये वसन्तीह मानवाः।
जीवन्मुक्तास्तु ते देवि, तेषां विघ्नं हराम्यहम्।। (स्क.का. ३२)
अन्यत्र विहितं पापं, नश्येत् काशीनिरीक्षणात्।
काश्यां कृतानां पापानां, दारुणेयं सुयातना।। (स्क.पु.का.ख. ३३)

श्रीकाशी क्षेत्रसंन्यास

भगवान् सदाशिव कहते हैं, हे देवि! जो मनुष्य काशी क्षेत्र में संन्यास लेकर रहतें हैं, (क्षेत्र संन्यास अर्थात् ये संकल्प करना कि मैं कदापि अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी काशी नहीं छोड़ूँगा पल भर भी पग भर भी) वे जीवन्मुक्त ही हैं, उनके विघ्नों का अपसारण मैं करता हूँ। अन्यत्र कहीं भी पाप किया हो कैसा भी पाप हो, वह काशी दर्शन मात्र से नष्ट हो जाता है, किन्तु काशी में रहकर किया गया पाप दारुण भैरव यातना द्वारा ही शान्त होता है।

उपस्तरणमसि

अन्नम्

अमृतापिधानमसि

१. भूःपतये स्वाहा, २. भुवनपतये स्वाहा, ३. भूतानां पतये स्वाहा।
अंगुष्ठमात्रः पुरुषः, त्वंगुष्ठं च समाश्रितः।
ईशानः सर्वजगतः, प्रभुः प्रीणातु विश्वभुक्।।

भोजन कैसे करें– भोजन करने से पूर्व आचमन करें, तब बोले-आपोपस्तरणमसि भोजनोपरान्त आचमन करे अमृतपिधानमसि।

भोजन से पूर्व ही भूमि पर जल का आसन देकर तीन आहुति दे (दाहिनी ओर)– १. भूः पतये स्वाहा, २. भुवनपतये स्वाहा, ३. भूतानां पतये स्वाहा।

अंगुष्ठाश्रित अंगूठे मात्र प्रमाण वाले चेतन पुरुष जो सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर हैं, वे विश्वभोक्ता प्रभु तृप्त हो जायें। (भोजन काल में स्वयं की तृप्ति का चिन्तन न करके प्रभु की तृप्ति के लिए हम होम कर रहे हैं, ये भाव हो।

❀

विश्वेश्वरो विशालाक्षी, धुनदीकालभैरवः।
श्रीमान् ढुण्ढिर्दण्डपाणिः, षडङ्गो योग एष वै॥ (स्क.पु.का.ख.)
गंगास्नानं महामुद्रा।
काशीवीथिषु संचारो, मुद्रा भवति खेचरी।
उड्डीय सर्वतो देशात्, यानंवाराणसी प्रति। उड्डियाणो महाबन्धः।
जालन्धरं शिरे यत्स्यात्, शिवनिर्माल्यधारणाम्।
वृतो विघ्नशतेनापि, यन्न काशीं त्यजेत्सुधीः। मूलबन्धः स्मृतोधेषुः।

काशीयोग

श्रीकाशी षडङ्गयोग बाबा विश्वनाथ, माता राजविशालाक्षी माँ गंगा, कालभैरव, ढुण्डि गणेश, दण्डपाणि महाकाल यही षडङ्गयोग है।

महामुद्रा–श्रीकाशीं जी में उत्तरवाहिनी गंगा में स्नान ही महामुद्रा है।

खेचरी–श्रीकाशी की गलियों में शिवशिव जपते घूमना खेचरी मुद्रा है।

उड्डीयन बन्ध–सभी देशों से वाराणसी की ओर आना ही उड्डीयान महाबन्ध है।

जालंधर–शिवनिर्माल्य को शिर पर धारण करना ही जालन्धर बन्ध है।

मूलबन्ध–सैकड़ों विघ्नों के द्वारा घिर जाने पर भी काशी न छोड़े, यही मूल बन्ध है।

❀

श्रीहनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रम्

वीताखिलविषयेच्छं, जातानन्दाश्रुपुलकमत्युच्चम्।
सीतापतिदूताद्यं, वातात्मजमद्य भावये हृद्यम्।।1।।

तरुणारुणमुखमतम, रुणरसपूरपूरिताङ्गम्।
संजीवनमाशासे, मंजुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम्।।२।।

शम्बरवैरिशरातिगमम्बुजदलविपुललोचनोदारम्।
कम्बुगलमनिलदिष्टं, बिम्बं ज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे।।३।।

दूरीकृतसीतार्तिः, प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः, पुरतो मम मातु हनुमतो मूर्तिः।।४।।

वानरनिकराध्यक्षं, दानवकुलकुमुदरविरसहक्षम्।
दीनजनीवनदीक्षं, पवनतपःपाकपुञ्जमुद्राक्षम् ।।५।।

एतत्पवनसुतस्य, स्तोत्रं यः पठति पञ्चरत्नाख्यम्।
चिरमिह निखिलान् भोगान्, भुक्त्वा श्रीरामभक्तिर्या भवति।।६।। (हनुमदाङ्के)

हनूमानञ्जनीसूनुः वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः, पिंगाक्षो मितविक्रमः।।

उदधिक्रमणश्चैव, सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च, दशग्रीवस्य दर्पहा।। (हनुमत्कवचनम्)

।। श्रीहनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रम् ।।

जो सभी विषयों की कामना से रहित (निष्काम) है, भगवत्स्मरणजन्य आनन्दाश्रुपूरित रोमाञ्च जिनकी शोभा बढ़ा रहा है, ऐसे राघवेन्द्र के दूत वायुनन्दन श्रीहनुमान् जी का आज में ध्यान करता हूँ।।१।।

नूतन रक्तकमल की आभा जैसा जिनका मुखकमल है। करुणा रस से परिपूर्ण जिनका अंक अंग है, आशारूपी संजीवनी के प्रतीक-पवित्र महिमा वाले माता अंजनी के मूर्तिमान् भाग्य।।२।।

(शम्बरासुर के शत्रु है काम उस) कामदेव के उद्दीपन उत्तेजक तीरों का भी मानमर्दन करने वाले) (अखण्ड बालब्रह्मचारी) कमलदल के समान विकसित विशाल नेत्रों वाले उदारहृदय (दृष्टि संकुचित नहीं विशाल है, हृदय भी विशाल है, जिनका) शंख के समान ग्रीवा वाले, वायु के सौभाग्य, रक्तोष्ठ वाले हनुमान् जी का मैं आलम्बन लेता है।।३।।

सीताशोकनाशक, रामवैभवस्फूर्ति के साकार रूप, रावण के यश का मर्दन करने वाले

हनुमान् जी की मूर्ति मेरे सामने भाषित होवे।।४।।

वानरसेनाधीश-दानवकुल कुमुदनी के लिए सूर्य प्रभा सदृश, दीनजनों की रक्षा में कृतसङ्कल्प, वायुकृत तप के परिपक्व पुञ्ज श्री हनुमन्त लाल मेरी दृष्टि का विषय बने।।५।।

जो हनुमान् जी के इस हनुमत्पंञ्चरत्नस्तोत्र का पाठ करता है, वह चिरकाल तक सम्पूर्ण भोगों को इस लोक में भोगकर श्रीराम की भक्ति पाता है।।६।।

हनुमान, अञ्जनीसुनु, वायुपुत्र, महाबल, रामेष्ट, अर्जुनसखा, पिंगाक्ष, अमितविक्रमः, उदधिक्रमण, (समुद्र का लंघन करने वाले) सीताशोकविनाशक, लक्ष्मणप्राणदाता, दशग्रीव के दर्प का दलन करने वाले इन बारह हनुमतन्नामों का स्मरण करें।



ॐ

आकाशादिपदार्थानां, वाचकः प्रणवः स्मृतः।
सर्वावभासकत्वेन, ब्रह्मणः सदृशः स्मृतः।।

जपेन्मन्त्रवरं भक्त्या, लक्षाणां दशकं द्विजाः।
ततः सिद्ध्यति मन्त्रोऽयं, सत्यमेव न संशयः।। (सूतसंहिता)

प्रणव (प्राचीन होने पर भी नया का नया) आकाशादि पदार्थों का वाचक है। सर्वप्रकाशक होने से ब्रह्मसदृश कहा जाता है।

हे द्विजो! भक्तिपूर्वक इस मन्त्रराज को दश लाख संख्या में जपने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं, यह सत्य है।



द्विपञ्चवारं यस्यैव, तुला साम्यं न जायते।
नद्यां वा प्रक्षिपेद्भूयो, यदा तदुपलक्ष्यते।
तदा बाणं समाख्यातं, शेषं पाषाणसम्भवम्।। (श्रीकालोत्तरे)

संस्थाप्य बाणलिङ्गं तु, रत्नात्कोटिगुणं भवेत्।
रसलिङ्गे ततो बाणात्, फलं कोटिगुणं स्मृतम्।। (श्रीकालोत्तरे)

आत्ममन्त्रः-सोऽहम्। ऋषिः-ब्रह्मा, छन्दो-गायत्री, देवता-आत्मा।

सः-शक्ति हं-वीजम्
 
प्रकृतिः पुरुषः
 
विद्या शिवः

} ध्यायेत्साम्बं महादेवम्।

बाणलिङ्ग की पहचान– नर्मदाखण्ड के धारावर्ती नार्मद (नर्मदा प्राप्त) शिव लिङ्ग को ३ बार या ५ बार तोलने पर भी वजन समान न रहे, नदी में डालकर देख ले तौलने पर सम नहीं रहे, तो बाण लिङ्ग है, नहीं तो पाषाण लिङ्ग है।

बाण लिङ्ग की स्थापना करके पूजने से रत्नलिङ्ग की पूजा करने की अपेक्षा कोटिगुणित फल होता है, किन्तु रसलिङ्ग (पारद लिङ्ग) की पूजा करने से बाण लिङ्ग से भी कोटिगुणित फल होता है।

आत्म मन्त्र

सोऽहम् = मैं वहीं हूँ, वही मैं हूँ। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री, देवता आत्मा है, सः शक्ति है, हं बीज है, सः ही प्रकृति है विद्या है हं ही पुरुष हैं। शिव है इस प्रकार सोऽहं = शिव शिव की एकता का प्रतिपादक मन्त्र अम्बासहित महादेव का ध्यान करना चाहिए।

षडक्षरं प्रवक्ष्यामि, येन संसारविच्छित्तिर्ब्रह्मेन्द्रादिविभूतयः। ऋषिर्ब्रह्मा, गायत्रं छन्दः। ॐ नमः शिवाय॥

मन्त्रार्थः

सत्यं ज्ञानपरानन्द-स्वरूपस्य शिवस्य तु।
असंपृक्त्या शिवस्यायं, शिवशब्दस्तु वाचकः।
नमःशब्दः पृहवाची, मायया सा न च स्वतः॥ (सू.सं.य.वै.)
समन्ध एव तेनैव, सोऽपि तादात्म्यलक्षणः।
नित्यसिद्धः शिव साक्षात्स्वरूपः सर्वदेहिनाम्॥ (टी.)
न हेये महितं तद्वद्रस्तो न स्वरूपतः।

मकारो मम शब्दार्थो लुप्तस्त्वेको मकारकः।
तस्माच्चतुर्थी शब्दस्तु, प्रोच्यते नहि वस्तुतः।
ॐ कारशब्दः सर्वार्थवाचकः परिकीर्तितः। सर्वार्थ शिव एव हि।

(स.सं.य.न.स्व. ८)

ॐ नमः शिवाय—इस षडक्षर मन्त्र के जप से संसार बन्धन कट जाता है, ब्रह्मेन्द्रादि विभूति देवता, ब्रह्मा ऋषि, (वामदेव) गायत्री छन्द।

सत्यज्ञान परानन्द स्वरूप शिव है। ये जगत् शिव से असम्पृ है। ॐ शिव शब्द तो वाचक है, इसका नमः शब्द पृहवाची है, माया द्वारा स्वतः नहीं।

मन्त्र के साथ शिव का तादात्म्य सम्बन्ध है, सर्वप्राणियों का स्वरूप होने से शिव साक्षात् नित्य सिद्ध है। अहित वस्तु को भी स्वरूपतः सहसा न त्यागे। उपादेय वस्तु सदा हितकारक नहीं होती, ये नकार के अर्थ हैं।

मकार मम शब्द का अर्थ है—मम का एक म लुप्त हो गया मम से ही नमः बना है, इसीलिए चतुर्थी शब्द मात्र है, वस्तुतः नहीं कहा गया।

ॐ शब्द सर्वार्थवाचक कहा गया है, सर्वार्थ है शिव।

द्रव्यं त्रिविधम् (स्क.पु.व्यौ. ४।३-५)

शुक्लं-उत्तमम्-श्रुतेः संपादनाच्छियात्।
शबलं-मध्यं-कुत्पीद वाणिज्यं कृषियाचितमेव च।
कृष्णं-अधमं-द्यूतचौर्यसाहसव्याजैरुपार्जितम्।

शुल्कवित्तेन यो धर्मं, प्रकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः।
तीर्थं पात्रं समासाद्य, सदेवत्वे समश्नुते॥६॥

राजसेन च भावेन, वितेन शवलेन च।
प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो, मानुष्यत्वे तदश्नुते॥७॥

तमोवृत्तस्तु यो दद्यात्, कृष्णवृत्तेन मानवः।
तिर्यक्त्वे तत्फलां प्रेत्य, समश्नाति नराधमः॥८॥

द्रव्य तीन प्रकार का होता है

१. शुक्ल-उत्तम–वैदिक कर्म करने से अथवा शिष्यों से श्रद्धापूर्वक सम्प्राप्त धन।

२. शबल मध्य–नौकरी-व्यापार-कृषि-याचना द्वारा अर्जित धन।

३. कृष्ण-अधम–जूआ-चोरी-डाका-ठगी व्याजादि से उपार्जित धन।

सश्रद्धः शुक्ल (उत्तम) वित्त से धर्म करने वाला तीर्थपात्र होकर देवयोनि में दानफल पाता है।

रजोगुणी भाव से शबल (मध्यम) धन याचकों को दान पर मनुष्य योनि में फल भोगता है।

तामसिक भाव से कृष्ण (अधम) धन दान करने पर तिर्यक् (पशुपक्षी) योनि में फल पाता है।

सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपरम्ये,
सुकल्पद्रुमाकस्य कादम्बसंन्ये।
स्फुरत्स्वर्णसिंहासने रत्नपीठे,
भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्नपूर्णाम्।। (सुभगोदया. टी. ७)

बिन्दु स्थानं सुधासिन्धुः, पञ्चयोन्यः सुरद्रुपाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च, तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं, देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे, महेशानोपवर्हणे।। (वामकेश्वर तंत्रे)

नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये, मनसो मण्डलं विदुः।
शाम्भवस्थानमेतत्ते, वर्णितं पद्मसम्भव!।। (या.शि.उ.अ. ५)

सुधासमुद्र के बीच दिव्य मनोरम मणिद्वीप में सुन्दर कल्पद्रुम के समान कदम्ब वृक्षों के मध्य स्वर्णसिंहासनमण्डित रत्नपीठ पर देवाधिदेव महादेव की गोद में विराजमान माँ अन्नपूर्णा का मैं ध्यान करता हूँ।

बिन्दुस्थान सुधासिन्धु है पाँच योनियाँ ही कल्पवृक्ष हैं, वही नीप (कदम्ब) श्रेणी है, उसके मध्य में मणिमण्डप है, वहाँ चिन्तामणिरचित देवी का उत्तम मंदिर है। वहाँ शिवात्मक महातल्प पर (मंच पर) महेशान का विस्तार लगा है। वहाँ माँ जगदम्बा विद्यमान हैं। दोनों भौंहों के मध्य मन का मण्डल है। यही शाम्भव स्थान है-ब्रह्मा जी ने ऐसा कहा है।

शुभगोदयस्तुतिः

भवानि त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपुः,
पराकारणं देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम्।
महाकालातीतां कलितसरणीकल्पिततनुम्,
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम्॥1॥

महाकुण्डलिनीरूपे, सच्चिदानन्दरूपिणि।
प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते, नमो दीपशिखात्मिके॥ (टी. देवी भा. ४।१५)

हे सच्चित्सुखरूपा, सदाशिवसहचरी, हे इन्दुकलासम्पन्न पराकारा हे अमृतलहरी, हे महाकालातीत हे कल्पितदेहधारिणी, निरन्तर दिव्यप्रकाशयुक्त सुधासिन्धु में निवास करने वाली भवानी मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

हे महाकुण्डलिनीरूपा हे सच्चिदानन्दरूपा, हे प्राण का अग्निहोत्र करने की महाविद्या, हे दीपशिखात्मिके देवि, आपको नमन है।

श्रीराधामनुः

ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा (देवीया. ९।५०) जग्राह प्रथमं श्रीकृष्णः मूलदेव्याः गोलोके रासमण्डले।

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।

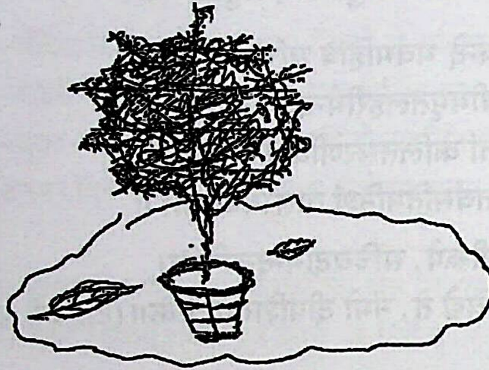
ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा—इस मन्त्र को भू देवी के साथ श्रीकृष्ण ने गोलोके रासमण्डल में लिया। कृष्णोपासना का अधिकार राधार्चन के बिना नहीं मिलता।

तुलसीमनुः (देवी.भा. ९।१५)—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा।

नामाष्टकं स्तोत्रम्

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपाविनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च, तुलसी कृष्णजीवनी।

यः पठेत्तां संपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ (देवी भा.)



तुलसीपूजा मन्त्र–'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा'।
नामाष्टक जरूर पढ़े–

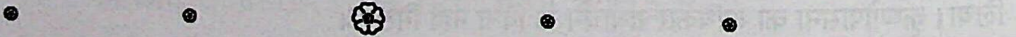
वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी तुलसी च कृष्णजीविनी॥

जो इस मन्त्र का जप इन नामों का पाठ करके तुलसी की पूजा करते हुऐ आरती भोग जल देता है, उसके जीवन की दरिद्रता मिट जाती है। अमंगल नष्ट होते हैं। व अश्वमेधसमान फल मिलता है।



श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा।
मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः॥ (देवीभा. ४२)

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा–ये मन्त्र ब्रह्मा जी से प्राप्त हुए सर्वदा कल्पवृक्ष के समान है।



उपासनम्

ज्ञानान्तरेणान्तिरित-सजातिज्ञानसन्ततेः।
सम्पन्नदेवतात्मत्त्वमुपासनमुदीरितम्॥ (शि.णी. १२)

ज्ञानान्तर से व्यवधान रहित सजातीय ज्ञानपरम्परा का उदय होता है। उससे दिव्यत्व देवतात्मत्व सम्पन्न होता है, इसी को उपासना कहते हैं।

बिल्ववृक्षं समाश्रित्य यो मन्वान् विधिना यजेत्।
एकेन दिवसेनैव तत्पुश्चरणं भवेत्।। (शि.गी.)

बिल्व वृक्ष के आश्रय में विधिपूर्वक जो मन्त्र जपा जाता है। एक दिन मात्र से ही उस मन्त्र का पुरश्चरण माना जाता है।

यतिदण्डैश्वर्यविधानम्

सर्वाम्नायः
१४ पाशुपतंमनुप्राचार्यचिन्तयेत् परमैश्वर्य सदन जयप्राप्तिकरः
१३ निर्वाण विद्या गुर्वाम्नायः
१२
११ ऐश्वर्य युक्त ब्रह्मत्व प्रदाता
१० विद्याः उपाम्नाथसमष्टिः
९
८
७
६ भासात्मकोविन्दुः उर्ध्वाम्नायः
५ अनाख्यो विन्दुः उपाम्नायसमष्टिः
४ प्रथमोविन्दुः पंदश्यात्मकः उत्तराम्नायः
३ अष्टकोणं त्रिकोणम् पश्चिमाम्ना
२ मनुस्नं दशारयुगुलम् दक्षिणाम्नायः
१ भूपुरं शोडशारं नागदलम् पूर्वाम्नायः

सर्वाम्नाय
१४ पशुपति मन्त्र का उच्चारण कर चिन्तन करे, ये परमेश्वर्य सदन है जय प्राप्ति कराता है।
१३ निर्वाणविद्या गुर्वाम्नाय
१२
११ ऐश्वर्ययुक्त ब्रह्म प्रदायक
१० विद्या उपाम्नाय समष्टि
९
८
७
६ भासात्मक विन्दु उर्ध्वाम्नाय
५ अनाख्यो विन्दु उपाम्नाय
४ प्रथमविन्द पंचदश्यात्मक उत्तराम्नाय
३ अष्टकोणं त्रिकोण पश्चिमाम्ना
२ मानुस्त्र दशचक्र युगल दक्षिणाम्नात
१ भूपुर में सोलह चक्र वाल नागदल है यहाँ पूर्वाम्नाय है

रुद्राक्षधारणमन्त्रः—ॐ अघोर ॐ ह्रैं अघोरतर ऽ ह्रौं ह्रां नमस्तरुद्राय ह्रैं स्वाहा।

(निर्णयसिन्धौ)

रुद्राक्षधारण मन्त्र—ॐ अघोर ॐ ह्रैं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्राय ह्रैं स्वाहा। इस मन्त्र से रुद्राक्ष को पवित्र स्थान पर रखकर पूजन करें तथा शिवध्यान करते हुए धारण कर लें।

अन्तर्यागः

चित्तं बुद्धिरहंकारो, ऋत्विज सोममयं मनः।
इन्द्रियाणि दश प्राणान्, जुहोति ज्योतिमण्डले॥

तन्मूलब्धिन्दुपर्यन्तं, विभाति ज्योतिमण्डलम्।
योगिभिः सततं ध्येयं, अणिमाद्यष्टसिद्धिदम्॥

वेदशास्त्रपुराणादि, सामान्या गणिका इव।
एकैव शाम्भवीमुद्रा, गुप्ता कुलवधूरिव॥

अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता।
ऊर्ध्वदृष्टिरधोदृष्टिरुर्ध्ववधिस्त्वधोशिराः।
राधायन्त्रविधानेन, जीवन्मुक्तो भविष्यति॥

कुलाचाररताः सन्ति, गुरवो बहवो मुनेः।
कुलाचारविहीनस्तु गुरुरेको हि दुर्लभः॥

अमृत्तोद्दीपिनी विद्या, निरुपाया निरञ्जना।
अमनस्कैव सा काचित्, जयत्यानन्ददायिनी॥

प्रणष्टश्वासनिःश्वास प्रध्वस्तविषदग्रहः।
निश्चेष्टोः निर्गतारम्भो, ह्यानन्दं याति योगवित्॥

उच्छिन्नसर्वसंकल्पो, निःशेषाशेषचेष्टितः।
स्वरवगम्यलयः ध्यापि, जायते वागगोचरः॥

सुखस्थार्पित सर्वाङ्गः, सुस्थिरात्मा सुनिश्चलः।
शिथिलीकृतसर्वाङ्ग; आनखाग्रशिखाग्रतः॥

सबाह्याभ्यन्तरे सर्व-चेष्टा चिन्ताविवर्जितः।
यथा भवेदुदासीनः तथा तत्त्वं प्रकाशते॥

स्वयं प्रकाशिते तत्त्वे, स्वानन्दस्तत्क्षणद्भवेत्।
आनन्देन च सन्तुष्टः, सदाभासरतो भवेत्॥

सदाभ्यासे स्थिरीभूते, न विधिर्नैव च क्रमः।
न किंञ्चिन्तनादेव, स्वयं तत्त्वं प्रकाशते॥

वाङ्मनःकायसंक्षोभान्प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
दशा चान्तिमिवात्मानं सुस्थिरं धारयेत्सदा॥

यावत्संकल्पलेशो स्थितश्रेयस्त्वं मनसाऽप्राप्यम्।
प्रयत्नसंल्पकल्पना॥

सदा जाग्रदवस्थायां, सुप्तवद्यो वतिष्ठते।
श्वासोच्छ्वासविहीनस्तु, निश्चितं मुक्त एव सः॥

योमिनस्तत्त्वसंपन्ना, न जाग्रति न शेरेते।
स्वप्नो चिदंशशून्यत्वं, जागरो विषयग्रहः॥

यथा यथा समभ्यासान्मनसः स्थिरता भवेत्।
वायुवाक्कायदृष्टीनां, स्थिरता च तथा तथा॥

दुर्निवारं मनस्ताव त्तत्त्वं यावन्न न विन्दति।
विदिते नु परे तत्त्वे, मनो नौ स्तम्भकाकवत्॥

निष्पन्नाखिलभावशून्यनिभृतं स्वात्मस्थितिस्तत्क्षणात्। निश्चेष्टः शवपादपाणिकरणो, लीना विकास्थितिः।
निर्मूला प्रविनष्टमारुततया, निर्जीवकाष्ठोपमा, निर्वातस्थितदीपवत्सहजवान् पार्श्वस्थितैर्दृश्यते॥

निःक्षिप्ते कतके विहाय कलुषं, यद्वद्भवेन्निर्मलं,
निर्वातस्थितनिस्तरंगमुदकं स्वस्थस्वभावं परम्।

तद्वत्सर्वमिदं विहाय सकलं, देदीप्यते निष्कलम्,
तत्त्वं तत्सहजस्वभावममलं, ज्ञातेऽमनस्के ध्रुवम्।।

बन्धाय विषयासक्तं मोक्षे निर्विषयं मनः।
मनसोऽप्युन्मनीभावे, द्वैतभावं न विद्यते।।

जायमानेऽमनस्कस्य, ह्युदासीनस्य तिष्ठतः।
मृदुत्वं च परत्वं च, शरीरमनसो भवेत्।

नष्टान्तःकरणस्तन्मे, देहगेहं मूलथं भवेत्।
सहजेनामनस्केन, मनः शल्यं वियोजयेत्।।

अमनस्कखनित्रेण, समूलोन्मूलने कृते।
अन्तःकरणशल्ये तु, सुखी संजायते मुनिः।।

अन्तर्यागविधि : उनमनी दशा पाने की प्रक्रियायें

मन (सोमपायी) बुद्धिचित्त अहंकार ये ही ऋत्विक बनकर दशों इन्द्रियों एवं पञ्च प्राणों का ज्योतिमण्डल में होम करते हैं, मूलाधार से लेकर बिन्दु पर्यन्त ये ज्योतिमण्डल अणिमादि अष्ट सिद्धियों का प्रदायक हैं और योगियों द्वारा निरन्तर ध्यान करने योग्य है।

वेद शास्त्र पुराण आदि चतुर्दश विद्यायें सामान्य नगरवधू गणिका के समान हैं तथा सर्वसुलभ हैं, किन्तु अत्यन्त गोपनीय कुलवधू के समान आदरणीय शाम्भवी मुद्रा तो एक ही है।

उन्मनी मुद्रा अन्तर्लक्ष्य–उन्मेष निमेष रहित गुह्य दृष्टि, ऊर्ध्व दृष्टि–अर्ध दृष्टि ज्ञान ऊर्ध्व शिर अध्र इस प्रकार से राधा यन्त्र विधानों द्वारा जीवन्मुक्त होगा प्राणी। कुलाचार रहित तो कोई एक ही दुर्लभ गुरु होगा। अमृत तत्त्व का उद्दीपन करने वाली विद्या अमनस्कावस्था है, जो आनन्ददात्री व श्रेष्ठ है निरुपाया है निरञ्जना है। जिस योगी ने श्वासोच्छ्वास की साधारण प्रक्रिया को प्रनष्ट करके विषयवासना की भावना को भी ध्वस्त कर दिया है, जो सांसारिक आहारविहार की चेष्टाओं से गिरते हैं, लोकिकोद्योग से रहित है, वही योगवेत्ता योगी आनन्दावस्था में जा सकता है। (जीवात्मा परमात्मा की एकता का अनुभव. निःसंदिग्ध निर्णय ही योग का परं फल परमानन्द प्राप्ति है)।

सर्वविध संकल्पों को त्यागकर सम्पूर्ण चेष्टाओं को शान्त करके ऐसी दिव्य लीनता मस्ती को पा लेता है, योगी जो आत्मबोध्य है और वाणी का विषय नहीं है। (गूंगे के गुड़ स्वाद की तरह) स्वयं जिसे

अनुभव तो किया जा सकता है, किन्तु बताया नहीं जा सकता, जो जान लेता है, वह बताने लायक ही नहीं रह पाता (नमक का डेली सागर की गहराई पा ले तो क्या बताने आ पायेगी) वो तो स्वयं सागर ही हो जायेगी, वैसे ही उस तत्त्व को पाकर वही जो जाता है)।

सुखासन में सहज भाव से बैठकर सुस्थिर व सुनिश्चल हो जाये, नख से लेकर शिखा तक सब शरीर को शिथिल (ढीला) छोड़ दे–बिल्कुल सहज भार हीन हो जाये। अन्दर बाहर सर्वविध चिन्ताओं को त्याग दे, चेष्टाओं को भी त्याग दे, दृष्टि की चपलता को भी रोक दे, स्थिर दृष्टि हो चित्त को जैसे ही (उदासीन होगा) उस ब्रह्म में आसीन स्थिर कर लेगा योगी बैठते ही तत्त्व स्वतः प्रकाशित होने लगेगा। स्वयं प्रकाशित तत्व में आत्मानन्द तत्क्षण ही प्राप्त होने लगेगा, उससे सन्तुष्टि आयेगी, इसी अभ्यास में निरन्तर योगी को लगे रहना चाहिए। ये तत्त्व तो स्वतःप्रकाशित ही है।

इस प्रकार का अभ्यास दृढ़ हो जाने पर विधि व क्रम की बाध्यता भी नहीं रहती (विधि-विधान में पूर्वापर-क्रम में कोई उलट-पलट पूजा में फूल पहले कि फल पहले आरती पहले कि भोग पहले आदि का बन्धन नहीं रहता, जो हो रहा है वह परा व श्रेष्ठ पूजा है)। वाणी मन व देहकृत क्षोभों को प्रयत्नपूर्वक निरूद्ध कर स्वयं को अन्तिम दशा में मानकर स्वयं को स्थिर रखें। जब तक संकल्प का लेश भी है (प्रयासादि है) मन से भी श्रेष्ठ अप्राप्त ही है। जो जाग्रत अवस्था में भी सदा निद्रालु के समान रहता है (सुप्तवत्) निस्वास उच्छ्वासरहित महापुरुष निश्चित ही मुक्त है।

तत्त्व सम्पन्न योगी न जगते हैं, न सोते हैं, क्योंकि सोते ही चित् तत्त्व की शून्यता रहती है, जगते ही विषय विष की आग जलाती है। इसीलिए सांसारिक व्यवहार के प्रति वे विड़ा निमग्न से निश्चिन्त तथा आत्मचिन्तन के लिए जगे हुए जैसे निरन्तर निरत)। जैसे-जैसे उत्तम अभ्यास द्वारा मन स्थिर होता जाता है, वैसे-वैसे प्राण देह व दृष्टि भी अचंचल स्थिर होती जाती है।

ये मन तभी तक वश में आने में कठिनता देता है, जब तक तत्त्व बोध नहीं हो जाता। परमतत्त्व ज्ञान होते ही मन ठीक वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे अथाह अपार अनन्त सागर में नाव के खम्भे पर बैठा कौआ थककर उड़ना भूल जाता है कहाँ जाये। सम्पूर्ण भाव शून्य दशा में आत्मस्थिति पाते ही योगी निश्चेष्ट हो जाता है, उसके सारे विकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे मृतक के हाथ पैर आदि इन्द्रियाँ विक्रियाहीन हो जाती है। योगी अपने प्राणों पर नियंत्रण करने के कारण मृतकवत् निर्जीव काष्ठ जैसा हो जाता है और जैसे वायुरहित देश में जलता हुआ दीपक सहज होता है, वैसे ही सहजावस्था में (उन्मनी दशा में) समीपवर्ती दृश्यों को साक्षी भाव में देखता है।

कूड़ा करकटादि को त्यागकर समस्त कालुष्यरहित वायुहीन देश का लहर आदि शून्य जल जैसे निर्मल होकर स्वस्थ व स्वाभाविकता युक्त हो जाता है, वैसे ही इस सम्पूर्ण जागतिक प्रपंच को त्यागते ही उस दिव्य अमनस्कं दशा के जानते ही सहज अमलस्वभाव वाला निष्कल तत्त्व देदीप्यमान हो जाता है।

मन यदि विषयों के प्रति आसक्त हो रहा है, तो बन्धन की ओर जा रहा है, मन यदि निर्विषयता की ओर अग्रसर है, तो मुक्ति की ओर ले जा रहा है, मन भी उन्मनी भाव को प्राप्त कर ले, तो द्वैत मिट जाता है। अमनस्कावस्था सिद्ध हो जाये और उदासीनता में योगी जीने लगे, तो शरीर व मन दोनों ही मृदु (कोमल) एवं दिव्य अलौकिक होने लगते हैं।

अन्तःकरणरूपी स्तम्भ के नष्ट होते ही देह और गेह दोनों ही धराशायी हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान् योगी का कर्तव्य है कि वह इस दिव्य सहज अमनस्क योग द्वारा मन को शल्य से विमुक्त कर दें।

मुनि कब सुखी होगा

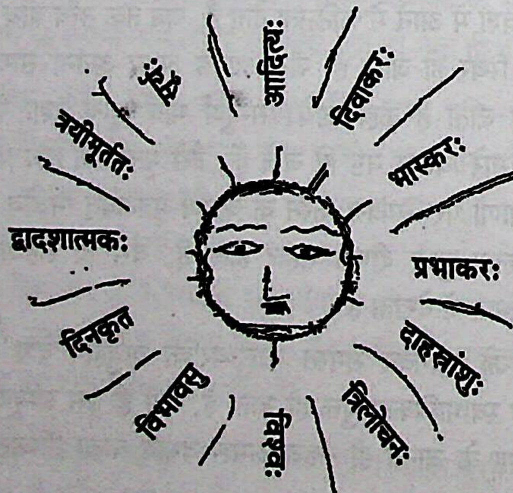
अमनस्क रूपी कुदाल (खनित्र) गेंती के द्वारा अन्तःकरण के शल्य का समूल उन्मूलन करने से ही मुनि सुखी हो सकता है।

• • ❁ • •

द्वादशाक्षरमन्त्रः

प्रजापति ऋषिः। गायत्री छन्दः। विष्णुर्देवता। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। (प्रपञ्चसारे)

आदित्यः दिवाकरः भास्करः प्रभाकरः सहस्रांशुः त्रिलोचनः विश्वः विभावसु दिनकृत् द्वादशात्मकः त्रयीमूर्तिः सूर्यः ।



द्वादक्षर मन्त्र

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इसके प्रजापति ऋषि है, गायत्री छन्द है, विष्णु देवता हैं, भगवत्प्राप्ति में विनियोग है। इस मन्त्र के जप से सात रात्रि में गगनचारी सिद्धों के दर्शन होते हैं।



सार्धश्लोकी दुर्गा

मधुकैटभनाशं च, महिषासुरघातनम्।
शक्रादिस्तुतिश्चैव, दूतसंवाद एव च॥

शुम्भराजवधश्चैव, नारायणकृतस्तुतिः।
सार्धपाठमिदं प्रोक्तं, नवपाठफलप्रदम्॥

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। ॐ ग्लौं हुं जुं सः विलय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा॥

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै, नमस्ते मधुमर्दिनि।
नमः कैटभहारिण्यै, नमस्ते महिषार्दिनि॥

जाग्रतं हि महादेवि, जपं सिद्धं कुरुष्व मे।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै, ह्रींकारी प्रतिपालिका॥

क्लींकारी कामरूपिण्यै, बीजरूपे नमोऽस्तु ते।
चामुण्डा चण्डघाती च, यंकारी वरदायिनी॥

विच्चे चाभयदा नित्यं, नमस्ते मन्त्ररूपिणि।
धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नीं, वां वीं वूं कामधीश्वरी॥

क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि, शां शीं शुभे शुभं कुरु।
हुं हुं हुंकाररूपिण्यै, जं जं जुं जमनादिनी॥

भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवि भद्रे, भवान्यै ते नमो नमः।
अं कं चं टं तं यं शं, वें दुं ऐं रीं हं क्षं धिजाग्रं

घिजाग्रं त्राटेय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा।
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा, खां खीं खूं खेचरी तथा॥

सां सीं सूं सप्तसती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे।
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं, मन्त्रजार्गतिहेतवे॥

डेढ़ श्लोक में दुर्गासप्तशती

मधुकैटभनाश, महिषासुर का वध, इन्द्रादि देवताओं द्वारा कृत मातृस्तुति, शुम्भादि द्वारा दूत प्रेक्षण, शुम्भ निशुम्भ का सपरिकर वध तदनन्तर नारायणकृत स्तुति इस प्रकार इस सार्ध (एक+आधा = डेढ़) श्लोक के पाठ से नव दुर्गापाठ का फल प्राप्त होता है।

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

इसकी हिन्दी का तो कोई प्रयोजन नहीं, पर फल श्रुति जान लें, पाठ तो मूल का ही करें–

ये मन्त्र जागृति का श्रेष्ठ उपाय है, कुञ्जिका स्तोत्र स्वतःसिद्ध है, इसके ही पाठ मात्र से दुर्गापाठ का फल प्राप्त होता है। 'कुञ्जिकापाठ मात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत्' इसके पाठ से दुर्गा पाठ शुभ होता है। येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीपाठः शुभो भवेत्। ये अत्यन्त गोपनीय है देवों तक को दुर्लभ है। इसके पाठमात्र से मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन, उच्चाटनादि, षट्कर्म सिद्ध होते हैं। जो कुञ्जिकास्तोत्र पाठ के बिना दुर्गापाठ करता है, उसे सफलता प्राप्त नहीं होती। 'न तस्य जायते सिद्धिः अरण्ये रोदनं यथा।'

ये कुञ्जिका सभी सिद्धियों की चाभी है, ये संक्षेप में जानने योग्य विषय है। इसके पाठ के लिए न विनियोग न न्यास न ध्यान कुछ भी आवश्यक नहीं है।



।।श्रीम्। ह्रीम्।।

सर्वस्याद्या महालक्ष्मी कमला कमलालया।

'श्रीम् ह्रीम्' ये दोनों बीजमन्त्र कमलवासिनी सर्वादिभूता महाशक्ति महालक्ष्मी माँ कमला की प्रसन्नता के हेतु हों।



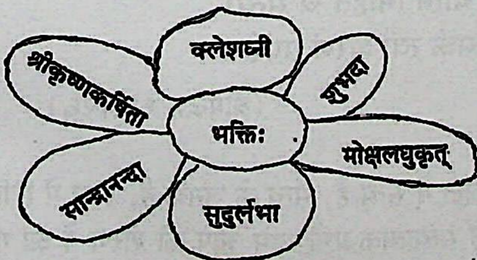
तुलसीनामाष्टकस्तोत्रम् (देवीभाग ९/१५)

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च, तुलसी कृष्णजीवनी।।
एतन्नामाष्टकं चैव, स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य, सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।

तुलसी के पाठ नाम

वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता,विश्वपावनी,पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी, कृष्णजीवनी, अर्थानुसंधान पूर्वक सश्रद्ध इस स्तोत्र का पाठ करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है (कोई शंका करे कि भला इतने से पाठ से अश्वमेध यज्ञ का फल कैसे या कि अश्वमेध यज्ञ का फल इतना सा तो समझ लो शास्त्र शंका तर्क का विषय नहीं है, फिर जिन शास्त्रों में विधान मिला है, वही शास्त्र पुण्य पाप का फलश्रुति बताते हैं। अतः विश्वासः फलदायकः)।

(भक्तिरसार्णवः)



प्रेमसंगताऽनन्यममता।

यथा परिमृज्यतेऽसौ,
मृत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति तत्त्वसूक्ष्मं,
चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम्।।
(श्रीमम्दाग.)

भक्ति-क्लेशनाशिनी है, शुभप्रदा है, मोक्ष प्राप्ति की कामना को भी तिरस्कृत कर तुच्छ बनाती है अत्यन्त दुर्लभ है गहनतमा नन्दरूपा है, श्रीकृष्ण को खीचकर भक्त तक लाती है। प्रेमैकरूपा होने से अनन्यता आत्मीयता की परिवर्धिका होती है। जैसे-जैसे ये अन्तःकरणावच्छिन्न आत्मा मेरी पुण्यमयी पवित्र कथाओं के श्रवण से स्व उत्तमोत्तम नामों के संकीर्तन से पवित्र होता जाता है, वैसे ही वैसे सूक्ष्म तक तत्त्वों को साक्षात् देखने लगता है जैसे नेत्रों में अंजन (करताल) लगने से नेत्र विशुद्ध दृष्टिसम्पन्न होते हैं, वैसे भगवत्कथांनुराग पराग द्वारा चित्त निर्मल होता जाता है।

सत्यं मानविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणम्,
व्याप्तं स्थावरजंगमं मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः
अर्काग्नीन्दुमयं शताक्षरवपुः तारात्मकं सन्ततम्,
नित्यानन्दगुणालयं गुणपरं वन्दामहे तन्महः॥

(शारदाति. २३.३७)

हम उस दिव्य तेज की वन्दना करते हैं, जो नित्यानन्द स्वरूप है, त्रिगुणों का आश्रय होने पर भी गुणों से परे है, सत्य रूप है, मानवर्जित है (प्रमाणादि का प्रमेय नहीं, उसकी सत्ता में प्रमाण प्रवेश नहीं कर सकते) जो वेद वाणी में प्रथम प्रणवरूप है, जो जगत्कारण है, जो स्थावर जंगम जगत् में व्याप्त है, जो महामनीषियों मुनियों द्वारा इन्द्रियों को वश में करके ध्यात है, जो सूर्य चन्द्र अग्निरूपात्मक है शताक्षर देह वाला है, निरन्तर जोताररूप प्रणवरूप है, वह प्रणम्य है।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भा. १।२।२६)

हे प्रभो! आप सत्यव्रत है, सत्यपरायण हैं, त्रिकाल में सत्य है, सत्य के जनक हैं, सत्य में निहित है, हे सत्यनेत्र! सत्य में जो प्रियता है, वह आप ही हैं, हे सत्यात्मक प्रभो! हम आप की शरण में आ गये हैं।

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसंभवान्।
सर्वान् हरति चित्तस्थो, भगवान् पुरुषोत्तमः॥

प्राणियों के चित्त में विराजमान पुरुषोत्तम भगवान् द्रव्य देश व आत्मा से संभव प्राणियों के कलिकृत सब दोषों को हर लेते हैं।

॥ स्कन्दोपनिषद् ॥

यत्रासंभिन्नतां याति, स्वातिरिक्तभिदाततिः।
संविन्मात्रं परं ब्रह्म, तत्स्वमात्रं विजृम्भते॥

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥
ॐ अच्युतोऽस्मि महादेव, तव कारुण्यलेशतः।
विज्ञानघन एवास्मि, शिवो स्मि किमतः परम्॥१॥

न निजं निजबद्धात्यन्तःकरणाजृम्भणात्।
अन्तःकरणनाशेन, संविन्मात्रास्थितो हरिः॥२॥

व्यतिरिक्तं जडं सर्वं, स्वप्नवच्च विनश्यति।
चिज्जडान्यं यो द्रष्टा, सोऽच्युतो ज्ञानविग्रहः॥३॥

स एव हि महादेवः, स एव हि महाहरिः।
स एव हि ज्योतिषां ज्योतिः, स एव हि परमेश्वरः॥४॥

स एव हि परं ब्रह्म।
षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादशदशानले।
सा पञ्चाक्षरकला षोढा, मातृकाचक्ररूपिणी॥

स्वातिरिक्त (आत्मातिरिक्त) जो भेद विस्तार है,वह जहाँ असंभिन्नता को प्राप्त हो जाये, वहाँ सवित् मात्र पर ब्रह्म ज्ञानब्रह्म भी स्वभाव ही (आत्मतया) व्यक्त हो जाता है (वहाँ भेदाभेद मिट जाता है) हे प्रभो! हम दोनों गुरु शिष्य की साथ ही रक्षा करो-पालन करो-साथ ही शक्तिशाली हो हमारी अधीत विद्या तेजस्वी हो। हम परस्पर विद्वेष न करें।

हे महादेव आप की करुणा के लेश से मैं अच्युत हूँ, विज्ञानघन हूँ, शिव हूँ, इससे पर अब क्या है, निज भी निजव्रत नहीं प्रतीत होता, अन्तःकरणशमन के कारण अन्तःकरण के नाम से अब सवित् मात्र शेष है (ज्ञान मात्र ही हरि है)।।१-२।।

इसके अतिरिक्त (संविन्नतिरिक्त) सब कुछ जड़ है,स्वप्नगत जगत् स्थायी नहीं, वैसे ही ये जड जगत् भी स्थायी नहीं है, वही ज्योतियों का ज्योति परमेश्वर है, पर ब्रह्म है, वही पर ब्रह्म में हूँ ,इसमें संशय नहीं है।।३-४।।



आत्ममन्त्रः (सूतसंहिता यज्ञवै. ख.-७)

ऋ.-ब्रह्मा, गायत्रं छ., आत्मा-देवता, सः-शक्तिः, हं-बीजम्।
हकारः पुरुषः प्रोक्तः, स इति प्रकृतिर्मता।
पुंस्प्रकृत्यात्मको हंसः, तदात्मकमिदं जगत्।। (प्रपञ्चसारः)

आत्ममन्त्र-हंसः सोऽहम्

इस मन्त्र के ऋषि–ब्रह्मा, छन्द–गायत्री, देवता–आत्मा, सः–शक्ति, हं–बीज है।

हंसः मन्त्र में–हकार पुरुष है, स प्रकृति है, प्रकृति पुरुषात्मक–ये मन्त्र हैं हंसः–इस मन्त्रात्मक यह जगत् है।



'अहं सः सोऽहमेवेति'। आत्ममन्त्रः, हंसविद्या। अस्याश्च जपमात्रेण, दीर्घायुष्यरोगताम्।

(सूतसंहिता यज्ञवै.-७)

हंसाण्डाकारमेनं स्तुनतपरमसुधं मूर्धचन्द्राङ्गलन्तम्
नीत्वा सौमुम्नमार्गं निशितमतिरथ व्याप्तदेहोपगात्रम्।
स्मृत्वा संजप्य ग्रन्थं पलितविषशिरोरुग्ज्वरोन्मादभूता
पस्मारादींश्च मन्त्री हरति दुरितदौर्भाग्यदारिद्र्यदोत्रार।। (प्रपञ्चसारः)

अहं (मैं) वह हूँ, वह मैं हूँ ये सोऽहं आत्ममन्त्र है (हंसविद्या है) इसके जपमात्र से दीर्घायु एवं निरोगता प्राप्त होती है। मूर्धा स्थित हंस के अण्डा के आकार वाले इस सुधास्रावी चन्द्र से निर्गलित परमामृत तत्त्व को सुषुम्ना मार्ग से ले जाकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त कर लेने पर स्मरणपूर्वक मन्त्र जप से पलित (बालों का पकने) विष का दुष्प्रभाव-शिर पीड़ा-ज्वर-उन्मादि-अपस्मार आदि सभी रोगों के साथ दुरित (पाप) दुर्भाज्य-दारिद्र्य दोषों को भी मन्त्रजापक नष्ट कर देता है।



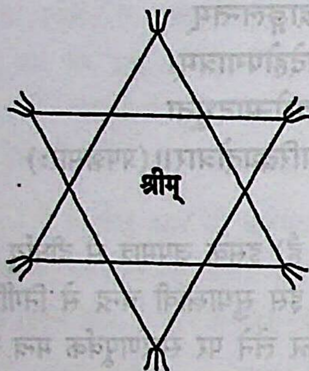
जगन्नाथः

सकृद् दृष्ट्वा जगन्नाथं, मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः।
रोहिण्यामुदधौ स्नात्वा, इन्द्रद्युम्नह्रदे तथा।।
भुक्त्वा निवेदितं विष्णोः, वैकुण्ठे वसतिं लभेत्।
दशयोजनविस्तीर्णं, क्षेत्रं शङ्खोपरि स्थितम्।।
चतुर्भुजत्वमायान्ति, कीटा अपि न संशयः।। (स्कन्दपु. वै.के.-१)

जगन्नाथ

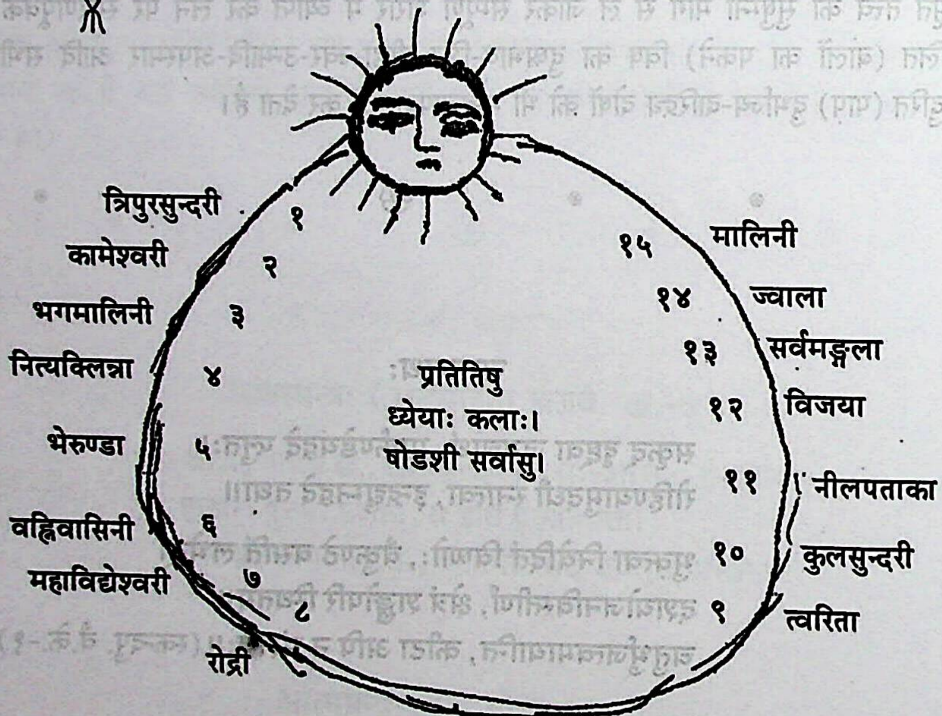
भगवान् का एकबार दर्शन करके मार्कण्डेय सरोवर में स्नान करें, रोहिणी नक्षत्र में सागर स्नान करके इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान करें। जगन्नाथ भगवान् का नैवेद्य प्रसाद पाकर प्राणी वैकुण्ठ प्राप्त करता है। ये दश योजन विस्तार वाला जगन्नाथ पुरी पुरुषोत्तम क्षेत्र शंख पर स्थित है, यहाँ पर वास करते हुए कीट तक भी चतुर्भुजत्व (विष्णुसारूप्य) प्राप्त करते हैं।





अविघ्ननामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी,
जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्त्रुतिकरी।
दरिद्राणां चिन्तामणि गुणानिकाजन्मजलधौ,
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती॥

(सौन्दर्य ल.-३)



हे मां! आपके चरणकमल पवित्र का रज अविद्याग्रस्त अज्ञानी प्राणियों के हृदय में विराजित अज्ञानान्धकार के नाशार्थ सूर्योदयद्वीप है (तुम्हारे पादारविन्द मकरन्द मिहिर का घर होने से साधक के उः में अंधेरा कहाँ रहेगा) जड़ प्राणियों के लिए चैतन्य कल्पवृक्ष के पुष्प गुच्छे रस की निर्झरिणी है, आपकी चरणकमल रेणु। दरिद्रों के लिए चिन्तामणि कामप्रदरत्नविशेष का समूह है, आपका चरणारविन्द रज संसारसागर में डूबते हुए अत्यन्त त्रस्त प्राणियों के लिए उद्धार के लिए आपका चरणसरोजरज मुरहन्ता राह भगवान् की सुदृढ़ दाढ के समान है। (लक्ष्मीप्राप्ति का अमोघ प्रयोग है)

लक्ष्मीभर्तुर्भुजाग्रे कृतवसतिसितं यस्य रूपं विशालम्,
नीलाद्रेस्तुङ्गस्थितमिव रजनीनाथबिम्बं बिभर्ति।
पायान्नः पाञ्चजन्यः सदितिसुतकुलत्रासनैः पूरयन्खैः,
निध्वानैर्नीरदौघध्वनिपरिभवदैरम्बरं कम्बुराजः॥

(विष्णुपादादिकेशान्तस्तो.)

भगवती लक्ष्मी स्वामी के नारायण के हस्ताग्र में स्थित श्वेत वर्ण वाले विशाल शंख की छवि कैसी है, मानो जैसे नीलगिरि के उच्च शिखर पर चन्द्रबिम्ब उदित हो रहा हो (भगवान् का हाथ सांवला होने से नीलगिरि शंख श्वेत होने से चन्द्र) यह शंखरज अपनी गंभीर ध्वनि से मेघों की ध्वनि (गर्जना) को अभिभूत कर देने वाला तथा दितिपुत्रों (दैत्यों) के कुलों को त्रास पहुँचाने वाला है, यह पाञ्चजन्य हमारी रक्षा करे।

श्रीबालापञ्चरत्नस्तोत्रम्

याई आनन्दवल्ली अमृतकरतले आदिशक्तिः पराई,
सापूर्मायात्मरूपी स्फटिकमणिमयी मामतङ्गी षडङ्गी।
ज्ञानी ज्ञानात्मरूपी दलितपरिमले नाद ओंकारमूर्तिः,
भोगी योगासनस्था भुवनवशकरी सुन्दरी ऐं नमस्ते॥1॥

मालामन्त्रो कटाक्षी मम हृदयसुखी मृत्युभावप्रचण्डी।
व्यालायज्ञोपवीता विकटकटितटावीरशक्तिः प्रसन्ना।
बाला बालेन्दुमौलिर्मदगजगमना साक्षिका स्वस्ति मन्त्री।
काली कङ्कालरूपी कटि कटि कटि ह्रींकारिणी क्लीं नमस्ते॥२॥

मूलाधारा महात्मा हुतवहसलिला मूलमन्त्रा त्रिनेत्रा।
हारा केयूरवल्ली अखिलत्रिपदका अम्बिकायै प्रियायै।
वेदवेदाङ्गनादा विनतघनमुखी वीरतन्त्री प्रचारो,
सारी संसारवासी सकलदुरितहा सर्वतो ह्रीं नमस्ते॥३॥

ऐं क्लीं ह्रीं मन्त्ररूपा सकलशशिधरा सम्प्रदायप्रधाना।
क्लीं ह्रीं श्रीं बीजमुख्यैः हिकृद्दिनकृज्ज्योतिरूपासरूपा।
सों ऐ क्लीं शक्तिरूपा प्रणवहरिशते बिन्दुनादात्मकोटिः,
क्षांक्षीं क्षूं कारनादे सकलगुणमयी सुन्दरी ऐं नमस्ते॥४॥

अध्यानाध्यानरूपा असुरभयकरी आत्मशक्तिप्ररूपा,
प्रत्यक्षा पीठरूपी प्रलययुगधरा ब्रह्मविष्णु त्रिरूपी।
शुद्धात्मा सिद्धरूपा हिमकिरणनिभा स्तोत्रसंक्षोभशक्तिः।
सृष्टिस्थितित्रिमूर्ति त्रिपुरहरजयी सुन्दरी ऐं नमस्ते।।5।। ।त्राम्।। (दशमहाविद्याशास्त्रे)

श्रीबाला सूक्तम्

ॐ नमः श्रीबालायै। रुद्रोऽहं विष्णुरहं ब्राह्माहं अहंकारश्च दिगीशोऽहं पर्वतोऽहं समुद्रोऽहं च भूताहं भविष्योऽहं वर्तमानोऽहं च प्रातर्मध्याह्नसायं कालोऽहं प्रहरोऽहं च स्वर्ग मर्त्य पाताल चतुर्दश भुवनोऽहं ब्रह्म उश्च सोमसूर्याग्नि पृथिवी-आपवायुराकाशोऽहं, वैकारिकोऽहं तैजसाहंकार च भूताहं कारोऽहं महारण्यश्च कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियोऽहं दोषदूष्यज्ञानेन्द्रियार्थे कर्मेन्द्रियार्थे विकृत्योऽहं प्रकृत्योऽहं विकारश्च अन्तःकरणोऽहं हंसश्च। सुन्दरी त्रिपुराबालाहं दशमहाविद्याश्च गायत्री सावित्री सरस्वती त्रिसन्ध्याहं पद्माश्च द्वादश चतुर्दशं त्रयस्त्रिशत् शत सहस्रायुत लक्षकोटि चाम्नायोऽहं षडाम्नायश्च एकाक्षरादि अयुताक्षरमन्त्रोऽहं जगद्योनिश्च सृष्टिस्थितिप्रलयोऽहं सर्वभूतानि च चार्वाकसिद्धान्त-तन्त्रमेलकार्हन्ता नेत्रकसर्वाकाश्चाहं अजिनोऽहं व्योमोऽहं कौलोऽहं शैवश्च।

सौरगाणपत्य वैष्णवशाक्तोऽहं नास्तिकश्च तयोऽहं योगोऽहं लयविद्याश्च ब्राह्मणः पदक्रम-जटाचतुर्दशविद्याहं गंगादिनद्योऽहं सागराश्च अनुष्टुभादिछन्दोऽहं षट्शास्त्रं चाहं ऋषयः। त्रयस्त्रिशत् कोटिदेवताश्च। अहं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं जगत् भोगेति ऐं नमो बालायै। एवं ध्यायितव्यं सत्यं महं सत्यं सत्यमोम्।। (दशमहाविद्यातन्त्र शास्त्रे)

माया शक्ति युक्त ईं बीजानन्दलता जिसके हाथ में अमृत है वैसी आदि शक्ति परा ईकार रूपा, मायात्मरूपी स्फटिकमणि सदृश मातङ्गी व षडंगयुक्त देवी, जो ज्ञानियों ज्ञानात्मरूपा, दिव्यादिव्यनिर्गलित मकरन्दवर्षक नाद व ॐ मूर्ति, योगासनस्थ हो भोगरता विश्व की प्रशासिका ऐं मयी सुन्दरी को नमन है।।१।।

मालाधारिणी मन्त्र जपते भक्तों पर कृपाकटाक्ष करने वाली मेरे हृदय को सुख देने वाली मृत्यु भाव में प्रचण्ड रूपा, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाली विकट कटि भाग वाली, वीरों की प्रसन्नता मयी शक्ति बालचन्द्र को भाल पर धारण करने वाली, मदमत्त मतंगवत् गमनशाली भी बाला जो सकल प्रपञ्च साक्षिभूताङ्ग स्वस्ति मन्त्रदात्री है वह कराली कंकालरूपिणी काली कटि कटि ह्रींकार जैसे असुरों को भय प्रदान करने वाले भक्तों को अभय देने वाले शब्दों का उच्चारण करने वाली क्लीं का नमन है।।२।।

मूलाधारा अग्नि जलरूपा मूलमन्त्रमयी त्रिनेत्रा, हार केयूर वल्ली शोभिता, प्रियाम्बा सांगवेद नादरूपा विनत हो गये हैं बादल जिनके सामने, वीर तन्त्र का प्रचार करने वाली, सारुपा संसारवासिनी

सकल दुरितों का हनन करने वाली ह्रीं रूपा देवी को सब प्रकार से नमन है।।३।।

ऐं क्लीं ह्रीं रूपा चन्द्रखण्डधारिणी, सम्प्रदायेश्वरी, क्लीं ह्रीं, श्रीं इत्यादि बीजों द्वारा मुख्यतया प्रतिपादिता चन्द्रार्काग्निस्वरूपा, सों ऐं क्लीं शक्ति वाली प्रणव बिन्दु नादात्म कोटि, क्षां क्षी क्षूं इत्यादि नाद करने वाली सकलगुणमयी सुन्दरीह ऐं देवि को नमन है।।४।।

ध्यान से अप्राप्त किन्तु ध्यानरूपा, असुरों में भयोत्पादिनी आत्मशक्तिरूपा, प्रत्यक्ष पीठरूपा प्रलय काल में ब्रह्म, विष्णु आदि रूपधारिणी शुद्धता सिद्धरूपा, चन्द्रकला सदृश-स्तोत्रों में स्पन्दनी शक्ति, सृष्टिस्थ त्रिमूर्ति त्रिपुरासुर को मारने वाले शिव को जीतने वाली ऐं रूपा सुन्दरी को नमन है।।५।।

श्री बाला को नमन-मैं रुद्र हूँ-विष्णु-ब्रह्मा-अहंकार-दिशाओं के स्वामी, पर्वत-सागर-भूत-भविष्य-वर्तमान, प्रातः मध्याह्न सायंकाल, प्रहर-स्वर्ग मर्त्य-पाताल-चतुर्दश भुवन ब्रह्मा-सोमसूर्य अग्निपृथिवी जल वायु आकाश भी मैं ही हूँ। वैकारिक अहं, तैजस अहं, भूताहंकार मैं ही हूँ, ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय-प्रकृति विकृति-विकार अन्तःकरण में हंस-मैं ही हूँ, बाला त्रिपुरसुन्दरी-दशमहाविद्या-गायत्री-सावित्री-सरस्वती-त्रिसंध्या, द्वादश पद्म चतुर्दश पद्म-तैतीस-सौ-दस हजार-लक्ष-कोटि-(करोड़) और आम्नाय मैं ही हूँ षडाम्नाय, एकाक्षर-अयुत-अक्षर-मन्त्र जगत् योनि-सृष्टिस्थितिप्रलय-सर्वभूत, चार्वाकसिद्धान्त-तन्त्र मेलक-जैन (अर्हन) नेत्रक-अजिन-व्योम-कौल शैव मैं ही हूँ।

सूर्योपासक-गणपत्युपासक वैष्णव शक्ति-नास्तिक-तप योग-लयविद्या, ब्राह्मन पदपाठ क्रमपाठ जटापाठ-चतुर्दशविद्या-गंगादि नदियाँ सागर अनुष्टुप् आदि छन्द षट्शास्त्र नारदादि ऋषि मैं ही हूँ, ३३ कोटि देवता मैं ही हूँ। जो भूत भविष्यत् है, सब कुछ मैं ही हूँ जगद्भोक्ता मैं ही हूँ ,ऐं बाला को नमन! इस प्रकार ध्यान करना चाहिएं, मैं सत्य हूँ, सत्य सत्य हूँ।

श्रीबालोपनिषद्

ऐं नमः श्रीबालायै। श्री वालोपनिषदं व्याख्यास्यामः। शृणु प्रिये। चक्रचक्रस्या, महात्मा, गुह्यतरा, श्रेष्ठातिश्रेष्ठा, भव्या, भव्यतरा, त्रिगुणगा, गुणातीता, गुणस्वरूपा गुंकारमध्यस्था, रेचक-पूरककुम्भस्वरूपा, अष्टांगरूपा, चतुर्दशभुवनमालिनी, चतुर्दशभुवनेश्वरी, चत्वारिवेदवेदांगपारगा, सांख्यासांख्यस्वरूपा, शान्ता, शाक्तप्रिया, शाक्तधर्मपरायणा, सर्वभद्रा विभद्रा, सुभद्रा भद्र-भद्रान्तरगता, वीरभद्रावतारिणी, शून्या शून्यतरा, शून्यप्रभवा, शून्यलया, शून्यज्ञानप्रदा, शून्यातीता, शूलहस्ता, महासुन्दरी, सुरासुरारविध्वंसिनी, सूकराननना, सुभगा, शुभदा, सुशुभा, शास्त्रास्त्रधारिणी, परप्रासादवामांगा, परमेश्वरी, परापरा, परमात्मा, पापघ्ना, पञ्चेन्द्रियालया, परब्रह्मावतारा, पद्महस्ता,

पाञ्चजन्या, पुण्डरीकाक्षा, पशुपाराहारिणी, पशूयज्ञपूज्या, पाखण्डध्वंसिनी, पवनेशी, पवनस्वरूपा, पद्मापद्ममयी, पद्मज्ञानप्रपात्री, पुस्तकहस्ता, पक्वबिम्बफलप्रभा, प्रेतासना, प्रजापाली, प्रपञ्चहारिणी, पृथिवीरूपा, पीताम्बरा, पिशाचगणसेविता, पितृवनस्था, हंसस्वरूपा, परमहंसी, ऐंकारबीजा, वाग्भवस्था, वाग्भवबीजा, आद्ययोनिनी, वाग्भवेणी, वाग्भवबीजमालिनी, य एवं वेद स वेदवित्। बालोपनिषदं यो पठति यःश्रृणोति, तस्याघं सर्वं नश्यति, चतुर्वर्गफलं प्राप्नोति, लयज्ञानं भवति, ज्योतिर्मये प्रलीयति, निर्वापदं गच्छति ॐकारे प्रमीलति। ॐ श्रीबलायै नमः ॐ।

ऐं वाग्बीजसहित बालात्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार नमः का अर्थ है–आशीर्वादवाचनानुकूलः कर शिरसंयोगादिविशेषरूपोऽर्थः आशीर्वाद पाने की इच्छा से (आशीर्वचन की जनकता कारणता उत्पादकता जिसमें है) हाथ व शिर का संयोग या पादसंस्पर्शादि रूप या वपुषा मनसा वचसा किया गया प्रणाम-सूतसंहिता में तो नमः का अर्थ किया न मम इति नमः मेरा कुछ नहीं आपका ही है ये भाव होवे। श्री बालोपनिषत् की व्याख्या करने जा रहे है। (वर्तमानसमीपे वर्तमान बड़ा) हे प्रिये सुनो चक्रमध्यवर्तिनी महात्मा गुह्यवरा श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ भव्यों से भी भव्य त्रिगुणा गुणातीता गुणस्वरूपा गुंकार के मध्य रहने वाली है (अनुस्वारवर्ती) रेचक कुम्भक पूरक प्राणायामत्रयरूपा-अष्टांगयोगरूपा (अष्टप्रकृतिरूपा) चौदह भुवनसंरक्षिका चतुर्दशभुवनेश्वरी अंगोसंहित चारों वेदों से परे, सांख्य आसांख्य रूपा, शक्ति उपासकों को प्रिय, शाक्तधर्मपरायणा सर्वभद्राविभद्र सुभद्रा भद्रभव्यान्तरगता वीरभद्रावताररूपा शून्य-शून्यतरा शून्य, समुत्पन्ना, शून्यालया शून्य का ज्ञान देने वाली, शून्य से परे, शूलधारिणी महासुन्दरी सुरासुर शत्रुओं का विध्वंस करने वाली वराहमुखी-उत्तम ऐश्वर्य वाली शुभप्रदात्री सुभगा, शस्त्रास्त्रधारिणी-शिव वामाङ्गवासिनी-परमेश्वरी परापरा परमात्मा, पापनाशिनी, पञ्च इन्द्रियों में रहने वाली, या पांचों इन्द्रियों की भूता पर ब्रह्मावतारा, पद्महस्ता, पाञ्चजन्या, कमल जैसे नेत्र वाली, पशु=जीव के पाशों का हरण करने वाली, पशुपति द्वारा पूजित, पाखण्डनाशिनी, प्राणेश्वरी प्राणस्वरूपा, गद्यपद्यमयी, पद्यज्ञान देने वाली पुस्तकहस्ता पक्वबिम्बफल जैसी कान्ति वाली सदाशिवादि पञ्च प्रेतों के आसन पर रहने वाली प्रजापालिनी, प्रपञ्चहरणकर्त्री, पृथ्वीरूपा पीतवस्त्रधारिणी-पिशाचगणों से सेवित, पितृवनस्थिता, हंसस्वरूपा, परमहंसी ऐं बीजस्वरूपा, वाग्भवकूटस्था, वाग्भव बीजरूपा, आद्या, योगिनी, वाग्भव ईश्वरी वाग्भवबीजों की माला स्वरूपा जो इस प्रकार बाला त्रिपुरसुन्दरी को जानता है वह वेदवित् है, इस बालोपनिषत् को जो पढ़ता है, जो श्रवण करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है, लय (मोक्ष) का ज्ञान होता है, ज्योतिर्मय तत्त्व में लीन हो जाता है, निर्माण पद को पाता है, ॐकार में लीन हो जाता है, श्रीबाला देवी को नमस्कार है।

• • ✿ • •

कलिवर्ज्यानि (वृ.नारदीय पु. २२)

समुद्रयात्रास्वीकारः, कमण्डलुविधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु, कन्यासूपयमस्तथा॥
देवरेण सुतोत्पत्तिः, मधुपर्के पशोर्बधः।
मांसदानं तथा श्राद्धे, वानप्रस्थाश्रमस्तथा॥
दत्ता क्षतायाः कन्यायाः, पुनर्दानं परस्य च।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं, नरमेधाश्वमेधकौ॥

कलिवर्ज्य

समुद्रयात्रा (आचार रक्षा के अभाव में) ब्राह्मण का अन्यवर्णीय कन्या से विवाह, नियोगविषयक देवर से पुत्रोत्पत्ति, मधुपर्कार्थ पशुवध, श्राद्ध में मांसादि प्रयोग, वानप्रस्थाश्रम ग्रहण (वानप्रस्थ के कठिन तितिक्षादि नियमों का पालन असम्भव है, फिर वन हैं कहाँ, ऋषियों की त्रिकालजयी दृष्टि से क्या छिपा था) कन्यादान करके (एक बार कन्या का विवाह करने के बाद किसी भी कारण से पुनः विवाहार्थ प्रयास) फिर दान करना, दीघकालीन ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों की जटिलता तथा कलियुगी जीव का विषयानन्द निमनन स्वभाव परिणामतः कलियुग में गृहस्थाश्रम का ही विधान शास्त्रों द्वारा किया गया हैं। इतने पर भी कोई रह सकता है, तो रहे, पर कितना कठिन है निर्वाह, ये तो वही समझ सकते हैं; जो पवित्रता से जीना चाहते हैं। स्वेच्छाचारी के लिए क्या कठिनाई) नरमेध तथा अश्वमेध यज्ञ भी कलियुग में नहीं करना है।

⊛ ⊛ ✿ ⊛ ⊛

सकामैः सम्पुटो जाप्यो, निष्कामैः सम्पुटं विना॥

त्रैलोक्यडामरो मन्त्रः

१. 

इन्दुसमानदीप्तिः (बृहज्ज्योतिषार्णवे. दुर्गोपा.क.द्रु.।

२. 

सूर्यतेजोद्युतिः।

३. 

वैश्वानरतुल्यम् -अनन्तसुखाय।

४. चा शुद्धजाम्बूनदकान्तिः।

५. मुं. रक्ततरम्।

६. डा सुनीलम्, उग्रार्तिहरम्।

७. यै कृष्णतरम्-रिपुघ्नम्।

८. विच् पाण्डुरम्।

९. चे धूम्रवर्णम्।

दुर्गापाठस्य नवनामानि

[1]महाविद्या, [2]महातन्त्री, [3]चण्डी, [4]सप्तशती, [5]मृतसंजीविनी, [6]महाचण्डी, [7]रूपदीपिका, [8]चतुःषष्ठियोगिनि, [9]परा।

१. आद्यद्वितीयतृतीयचरितानुक्रमेण-महाविद्यासप्तशती। २. आद्यन्तमध्यचरितं, महातन्त्रम्। ३. आद्यमध्यान्तचारित्रक्रमाच्चण्डी। ४. मध्यमाद्यन्तचरितं-सप्तशती। ५. अन्त्यादिमध्यचारित्रं मृ.सं.। 6. अन्त्यमध्यादिचारित्रान्महाच च.। ७. रूपं देहीति संयोज्य नवार्णमनुना सह। सम्पुटत्वेन संयोज्य जपे रूपचण्डी। सर्वाभीष्टफलप्रदा। ८. योगिनीनां चतुःषष्ठियोगात् सप्तशतीमनोः। चतुषष्ठीति सा प्रोक्ता, योगसिद्धिप्रदायिनी। ९. परावीज मानायोगात्। परा चण्डीति कथ्यते। (बृहज्ज्योतिषार्णवे दुर्गोपासनाकल्पद्रु.)

सकाम (कामनायुक्त) हो तो सम्पुटसहित पाठ करे, निष्काम हो तो सम्पुट बिना ही करे।
ऐं–चन्द्रवत् दीप्तिमान। ह्रीं–सूर्यवद्रदीप्तिमान। क्लीं–वैश्वानर तुल्य अनन्तसुखार्थ।

१. महाविद्या–दुर्गासप्तशती के पाठ को यथाविधि करने पर प्रथम मध्यमोत्तमचरित्र। २. महामन्त्री–प्रथमचरित्र उत्तम व मध्यम चरित्र पाठ ये महामन्त्र है। ३. चण्डी–प्रथममध्यमोत्तम चरित्र पाठ चण्डी। ४. सप्तशती–मध्यम आदि अन्त चरित्र। ५. मृत् संजीवनि– अन्तिम आदि मध्यम ६. महाचण्डी–अन्त्य मध्य आदि चरित्रों को करने पर। ७. रूपदीपिका–रूपं देहि इस मन्त्र से संयुक्त करके नवार्ण मन्त्र से संम्पुटित करे। इस प्रकार रूपचण्डी होती है, ये सर्वाभीष्ट फलप्रद है। ८. चतुःषष्टि योगिनी–६४ योगिनियों के योग से सप्तशती के मन्त्र का पाठ योगसिद्धिप्रद है। ९. परा–पराबीज के समायोग से पराचण्डी कहलाती है।

शब्दजातमशेषं च, धत्ते देवी सरस्वती।
अर्थरूपं यदखिलं, धत्ते देवो विनायकः॥ (वायुसंहिता)

सम्पूर्ण शब्दसमूह को धारण करने वाली ज्ञानाधारा सरस्वती है। सम्पूर्ण अर्थ समूह की धारा को धारण करने वाले हैं गणेश जी महाराज।



आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। (छा.उ. ७/२६/२)

आहारः—शब्दादिविषयविज्ञानम्।
शुद्धि—रागद्वेषमोहदोषै रसं स्पर्शः। (शंकरभा.)

आहार शुद्ध होने पर अन्तःकरण शुद्ध होता है, अन्तःकरण शुद्ध होने पर स्मृति (विषयोपलब्धि रूप विज्ञान की शुद्धि) निश्चल हो जाती है। स्मृति प्राप्त्यनन्तर ही सर्वविध ग्रन्थियों की निवृत्ति हो जाती है। विशेष ध्येय है विचारणीय है अनमोल है।

आहार का तात्पर्य है–शब्द रूप रस गन्ध स्पर्शादि विषयों का विज्ञान। इन्द्रियाँ इनका भोग करती है, अतः ये पवित्र हो तब काम बने भोजन भी अर्थ करना बुरा नहीं है, पर वास्तविकार्थ है)।

शुद्धि = रागद्वेष मोहादिदोषों से मुक्त होना ये कामक्रोध रागद्वेष छू भी न सकें।



जहाँ के जर्रे में तेरा जलवा समाया है।
यह मैंने अजमाया है।
पुकारा जब भी भक्तों ने तभी साकार पाया है॥
मुरादें मन की मिलती हैं, तेरे ही आसियाने से।
जिसे मिल जाय तू माता है क्या लेवे जमाने से।
उसे क्या चाहिये जिसने तेरा दीदार पाया है॥१॥
तेरे दरबार में माथा, झुके सरताज दारों का।
जहाँ में एक तूही है सहारा बेसहारों का॥
खुशी है वो बसर जिस पर तेरी रहमत का साया है॥२॥

कहीं गौरी कहीं सीता, कहीं दुर्गे भवानी तू।
मुसीबत देश पर आई बनी झाँसी की रानी तू।
बना कर भेष चण्डी का ये महिषासुर गिराया है॥३॥

असम कश्मीर की घाटी, तेरे कानों के कुण्डल हैं।
जो फैला दूर उत्तर में, हिमाचल तेरा आंचल है॥
कतर दो हाँथ दुश्मन का जो इस आँच में आया है।
जहाँ के जर्रे में तेरा जलवा समाया है॥४॥

* * *

तन तम्बूरा तार मन, अद्भुत यह है साज।
हरि के कर से बाजता, हरि की है आवाज॥

तन के तँबूरे में साँसों के तार बो लें।
जय सियाराम राम, जय राधेश्याम श्याम॥

अब तो इस तन के मंदिर में, प्रभु का हुआ बसेरा।
मगन हुआ तन मेरा छूटा, जनम जनम का फेरा॥

मन की मुरलिया में, सुर का संसार बोले॥ जय सि.॥
लगन लगी थी राधा जी से, जगी थी जगमग ज्योति।
राम नाम का हीरा पाया, कृष्ण नाम की मोती।
प्यासी दो अखियों में आँसुवों की धार बोले॥ जय सि.॥

योगी हुआ अब तेरे रंग का छूटा जग की फाँसा।
बाहर से अन्दर मन आया, देखा राम तमासा।

हिय की कुठरिया में अनहद नाद बोले–
जयसिया राम जय राधेश्याम॥

* * *

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी दिन दिन अधिक चली॥

जहँ जहँ डोलूँ सो परिकरमा जो कछु करूँ सो सेवा।
कहौं सो नाम सुनो सो सरवन खाउँ पियउँ सो पूजा॥

गिरह उजाड़ एक सम लेखों भाव मिटाऊँ दूजा॥
खुले नैन पहिचानों हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारौं॥

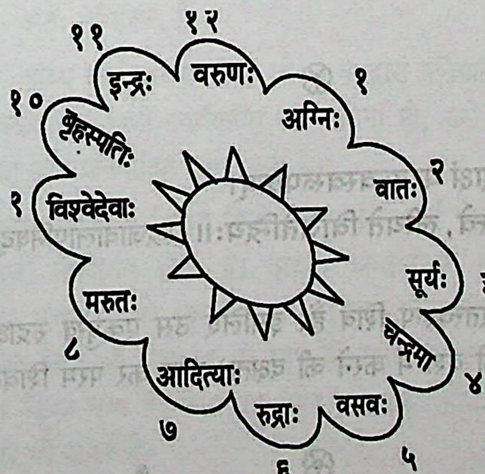
सबदं निरन्तर से मन लागा मलिन वासना त्यांगी।
उठत बैठत कबहु न छूटै ऐसी तारी लागी।
यह कबीर यह उलटी वाणी सो परगट करि गाई।
सुख दुःख से कोई परे परम पद तेहि पद रहा समाई।।

* * *

श्री हरिः

हमारे राम नाम धन खेती.
एक साल मैं ने खेती बोयी गंगा यमुना रेती।
राम नाम का बीज पड़ो है उपजे हीरा मोती।।
काम क्रोध को जीतो रे मैया गमता कर लो थोती-
उड़ियान में जाकर नागिन को जगाती, अमृतधार नि चोती।।
प्राण अपान मिलाकर प्यारे नेती करलो धोती।। हमारे।
गगन मण्डल में जाकर देखो चमक रही एक ज्योती।
सुरत निरत के बैल बनाओं जब चाहे जब जोती।।
यह कबीर सुनो भाई साधो विरला जाने यह रीती।।

अघोरेभ्योऽथ घारेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।



घोर भयङ्कर-अनिष्टकारक को कहते हैं। ऊपर अथ से प्रारम्भ कर तीन पद बनते हैं। घोरेभ्यः=भयङ्कर कालरूप होने के कारण जीवों के लिए भयंकर हैं। घोरघोरतरेभ्यः = भयङ्कर से भी भयंकर (काल के भी काल) हैं। इससे भिन्न अघोरेभ्यः = सौम्यस्वरूप वाले (शिवरूप) उन तीनों के साथ तीन सर्वेभ्यः सर्वनाम दिया गया। ऐसे जो भगवान् रुद्र हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं। अर्थात्-(क) सभी घोरों (ख) सभी घोरों के भी घोर (उ) सभी अघोरों को जिसमें भगवान् रुद्र विराजमान हैं। उन्हें प्रणाम करता हूँ। यह श्रुति मन्त्र है।



ॐ अनन्तशक्तिसन्दोहपूर्णस्य परमात्मनः।
विघ्नविध्वशिनीं शक्तिं गणराजमुपास्महे॥
अयं परमहंसमार्गो दुर्लभतरः नित्यपूतस्थः।
स एव वेदपुरुषो यच्चित्तं सर्वदा।
मय्येवावतिष्ठते अहं च तस्मिन्नेवावस्थीयते॥ (परमहंसोपनिषद्)

अनन्तशक्ति से संगर्भित पूर्णपरमा के विघ्नविध्वंशिनी शक्ति जो गणपति जी में विराजमान है उस शक्ति की भी मैं उपासना करता हूँ। शरणापन्न होता हूँ। यह परमहंस मार्ग अन्य दूसरे मार्गों के सापेक्ष दुर्लभ है, जो नित्य (निरन्तर) मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्रता की अवस्था में रहता, ऐसे वेदपुरुष (वेदज्ञपुरुष) और महापुरुष (आत्मभावमात्रस्थित) मेरे में ही (ईश्वर में ही) अवस्थित हैं और मैं उन पुरुषों में ही अवस्थित हूँ। अथवा जो महापुरुष अपने को मुझ (अविनाशी) में और मुझे अपने में देखता है, वह पुरुष परमार्थतः ज्ञानवाला है।



एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम्।
तद्धारणात्परे तत्त्वे, लीयते विजितेन्द्रियः॥ (रुद्रजावालोपनिषद्)

एकमुख रुद्राक्ष साक्षात् परतत्त्वरूप शिव हैं। इसलिए उस एकमुख रुद्राक्ष के धारण करने से प्राणी इन्द्रियों पर विजय (इन्द्रियों को वश में करने की दक्षता) प्राप्त कर परम शिवतत्त्व में लीन हो जाता है।

स्ववदन्यदेहेऽपि संवित्तिमनुभावयेत्।
अपेक्षां स्वशरीरस्य त्यक्त्वा व्यापी दिनैर्भवेत्।। (विज्ञा.भै.तं. १०५)

साधक जिस तरह अपने देह में आत्मभाव का अनुभव करे, उसी प्रकार उसी ज्ञान-बुद्धि से अपने से इतर देह में भी आत्मभावना का विनिश्चय सुदृढ़ करे। इस तरह देहानपेक्ष व्यवहार द्वारा आत्मना सर्वत्र व्यापी भावना का स्थापन सुनिश्चित करे।

विहितं कर्म चतुर्धा

१. नित्यं-संध्यादिः, २. नैमित्तिकम्-ग्रहणे स्नानादिः, ३. काम्यम्-पुत्रेष्ट्यादि, ४. प्रायश्चित्तम्-चान्द्रायणादिः।

विहित का अर्थ शास्त्रप्रतिपादित होता है। वह शास्त्रप्रतिपादित कर्म चार प्रकार के होते हैं–

१. **नित्यम्**–जो कर्म शास्त्र द्वारा नित्य (प्रतिदिन) करने के लिए प्रतिपादित किया गया हो, उसे नित्यकर्म कहते हैं। यथा–'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' प्रतिदिन संन्ध्यावन्दन करनी चाहिए ,यह शास्त्र द्वारा सुनिश्चित (विहित) किया गया है। अतः नित्यकर्म है।

२. **नैमित्तिकम्**–शास्त्र द्वारा किसी निमित्त को उद्देश्य कर विहित किये गये कर्म को नैमितिक कर्म कहते हैं। यथा–सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण में स्नान करने का विधान किया गया है। यहाँ ग्रहण को उद्देश्य कर स्नान की विधि है। अतः नैमित्तिक है।

३. **काम्यम्**–काम्य कर्म उसे कहते हैं,जो शास्त्र द्वारा प्रतिपादित हो और कामनापरक हो। यथा–'ज्योतिष्टोमेन यजेत् स्वर्गकामः' जिसे स्वर्गप्राप्ति की कामना हो, उसे ज्योतिष्टोम यज्ञ करना चाहिए, यह विधिवाक्य है। अतः यह शास्त्रप्रतिपादित काम्य कर्म है।

४. **प्रायश्चित्तम्**–शास्त्र में विहित किये गये कर्त्तव्य कर्म से भिन्न अथवा शास्त्रविहित विधि भिन्न कर्म से प्रायश्चित्त (पाप) उपस्थित होता है। अर्थात् अन्तःकरण में अथवा कर्तृत्वावच्छिन्न चैतन्य में संस्काररूप से पाप का संचयन होते रहता है और उसका फल भी दुःखदायी ही होता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कर्तृत्व के साथ भोक्तृत्व भी साथ ही रहता है। उक्त प्रायश्चित्त निवारण के लिए शास्त्र में चान्द्रायणव्रत विहित किया गया है। उक्त व्रत बहुत कष्टसाध्य होता है। प्रायश्चित्त विधि के जानकार ने उसका लक्षण इस प्रकार भी कहते हैं–

प्रायोनाम तपः प्रोक्तं, चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चययुक्ताभ्यां, प्रायश्चित्तं प्रचक्षते॥

प्रायः तप को और चित्त निश्चय को कहते हैं तथा तप का निश्चयरूप से कर्त्तव्यता को प्रायश्चित्त कहा गया है।

ॐ देवीं ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगद्दण्डमसृत्। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते। सैषा पराशक्तिः। सैषा शाम्भवीविद्या। कादिविद्या, हादिविद्या, सादिविद्येति वा। ओमों वाचिप्रतिष्ठा। पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देश-कालवस्त्वन्तरसङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी स्वयमेकैव विभाति। यदस्ति सन्मात्रं। यद्विभाति चिन्मात्रं, यत्प्रियमानन्दम्। तदेतत्सर्वकारामहासुन्दरी। त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता इतरत्सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललितास्वं वस्तु । तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म। पञ्चरूपपरित्यागादशरूपप्रहाणतः। अधिष्ठानं परं तत्त्वं, एकं संच्छिष्यते महत्। (बह्वृचोपनिषद्)

सर्वप्रथम देवी ही जगत् का मूलाधार थी। देवी इसलिए कहा कि वह 'दीव्यतीति देवी', द्योतनशीला या द्योतते ज्ञायतेऽनेन इति वा देवी' जो दिव्य प्रकाशमयी हो अथवा प्रकाशिका हो, अथवा जिसके द्योतनरूप (प्रकाशनरूप) ज्ञान से यत् किञ्चित् का अर्थ ग्रहण हो, वही देवी सृष्टि की आदि में एक मात्र थी। उसी ने जगत् के आधार दण्ड का स्थापन किया। वही कामकलारूप से, शृङ्गारकलारूप से, पराशक्तिरूप से, शाम्भवी विद्या रूप से, कादिविद्या रूप से, हादि विद्यारूप से, सादि विद्यारूप से जानी जाती हैं तथा 'ओम्' शब्द में प्रतिष्ठित हैं। तीनों पुरों (भूर्लोक-भुवर्लोक और स्वर्लोक) में, तीनों शरीरों (स्थूल शरीर सूक्ष्मशरीर तथा कारणशरीरों) में व्याप्त होकर अन्दर-बाहर सर्वत्र भासमाना (देदीप्यमाना) होकर देश-काल के वस्तुओं में अन्तर (भेद) के साथ स्वयं अपने स्वरूप से भासती है–प्रतीति का विषय होती है। यह संसार जिस रूप में है, वह सन्मात्र है अर्थात् सद्रूप है, चिन्मात्ररूप है और जहाँ भी प्रियता है वहाँ आनन्दरूप से प्रतिष्ठिता हैं। यह जो जगदाधाररूपता है, वह महासुन्दरी त्रिपुरसुन्दरी ही हैं, 'त्वं' पदवाच्य बाह्य जगत् और अहं पद वाच्य आभ्यन्तर जगत् बाहर-भीतर जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके सहित सभी देवता भी महात्रिपुरसुन्दरी ही हैं। यह जगत् रूप विभिन्नगोचरता में परमार्थरूप से अर्थात् उपादान (कारण) रूप से वही ललिता त्रिपुरसुन्दरी ही हैं। वह अद्वितीय-अखण्डपरा ब्रह्मरूपा हैं पाँचरूप (पञ्चतत्त्व-पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकश) दसरूप (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय-पञ्चकर्मेन्द्रिय) रूप जो उपाधि है, उसको त्याग देने पर (कल्पितरूप नष्ट हो जाने पर) एक ही तत्त्व ब्रह्मरूप से शेष बच जाता है, वही त्रिपुरसुन्दरी महत् तत्त्व है। वही वह देवी है।

प्रवालमौक्तिकस्फटिकशंखरजताष्टापदचन्दनपुत्रजीविकाब्जा रुद्राक्षाः। आदिक्षान्तमूर्तिः सावधानभावाः। सौवर्णं राजतं ताम्रञ्चेति सूत्रत्रयम्। तद्विवरे सौवर्णं, तद्दक्षपार्श्वे राजतं तद्वामे ताम्रम्। मुखे मुखं, पुच्छे पुच्छम्। अन्तरं सूत्रं ब्रह्म। दक्षपार्श्वे शैवं, वामे वैष्णवम्। मुखं सरस्वती। पुच्छं सावित्री सुषिरं सा विद्या। ग्रन्थिः प्रकृतिः। (अक्षमालोपनिषद्)

रुद्राक्ष आठ प्रकार के बताये गये हैं,जो इस प्रकार हैं–१. प्रवाल, २. मुक्ता, ३. स्फटिक, ४. शंख, ५. रजत, ६. चन्दन, ७. पुत्रजीविका और ८. कमल। माला के आदि से अन्त तक का जो शान्त भाव है, वही उसकी मूर्ति (स्वरूप) है। उपर्युक्त पदार्थों से प्रत्येक के अलग-अलग अथवा मिश्रित गुम्फन कर जो माला बनायी जाती है, उसके आदि से अन्त तक की जो मनियाँ होती हैं, उसे विशिष्ट तन्तुओं (धागों) में पिरो कर ब्रह्मग्रन्थिविषेष द्वारा इस प्रकार गुम्फित किया जाता है कि वह अपनी जगह पर स्थिर भाव से रह सकें। स्थानचञ्चल माला उपयुक्त नहीं होती है। इसीलिए 'सावधानभावा मूर्तिः' कहा गया। मालागुम्फन में उत्तम सूत्र वर्ण तीन हैं–सौवर्ण,रजत और ताम्र। अर्थात् पीत-धवल और रक्त वर्ण। मनिका के विवर (छेद के) मध्यभाग में सौवर्ण उसके दाहिने भाग में राजत और वाम भाग में ताम्र वर्ण का गुम्फन विहित किया गया है। त्रिगुणसूत्र से गुम्फित माला में सूत्रों के मुख में मुख, पुच्छ में पुच्छ को मिलाकर एकसूत्री गुम्फन किया जाता है। माला के मध्य में जो एक सूत्रीकरण कर गुम्फन किया जाता है। माला के मध्य जो एक सूत्रीकृत तन्तु है और जो माला के अन्तःप्रविष्ट है, उसमें ब्रह्म की भावना करनी चाहिए। दाहिने सूत्र में शिव, वामसूत्र में विष्णुसम्बन्धी भाव तथा मुख में सरस्वती तथा पुच्छ में सावित्री का भाव तथा सुषिरभाग में विद्या (पराशक्ति) का तथा ग्रन्थि में प्रकृति का भाव करना चाहिए।



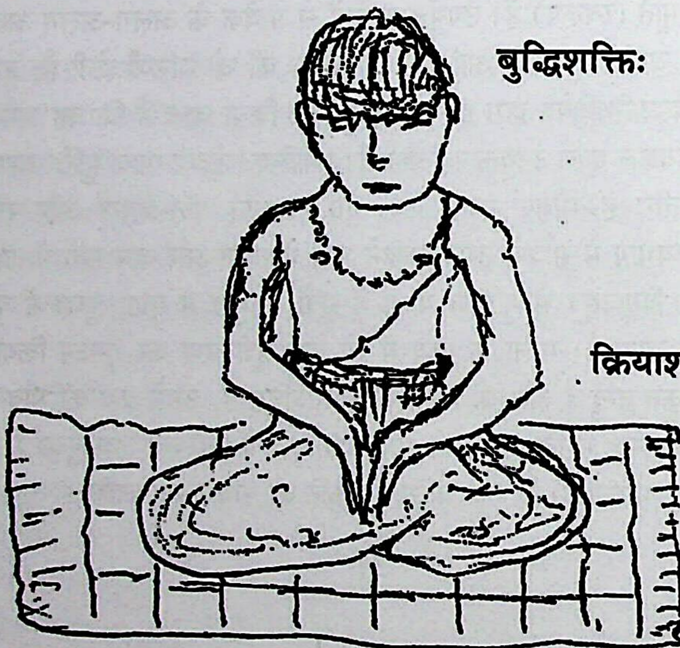
श्रद्धा ध्यानं तपः शौचं यस्य वित्तं चतुष्टयम्।
स्मरणं चाद्वितीयस्य स कैवल्याश्रमे वसेत्।। (बृहस्पतिः यतिधर्मः)
अनन्ते चिद्घनानन्दे, निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थिते द्वितीयस्याभावात्, को बद्धः कश्च मुच्यते।।

जिसके (जिस मानव के) पास श्रद्धा, ध्यानधर्म, तप और शौच (सभी प्रकार की शुचिता) ये चारों सम्पत्ति विद्यमान हो और अद्वितीय परब्रह्म का स्मरण भी हो, तो वह कैवल्य (मोक्ष) रूपी आश्रम में ही वास करता है।

अन्तन्तस्वरूप-चिद्घनस्वरूप-आनन्दस्वरूप ब्रह्म में निर्विकल्पक ऐक्य ज्ञानरूप से जो प्रतिष्ठ हो गया है, उसके लिए बन्ध और मोक्ष व्यवहार भी समाप्त हो जाता है; क्योंकि बन्ध दो में होता है, बन्ध्य (जिसे बाँधा जाय) बौर कन्धक (बाँधने वाला) भाव है। जब द्वितीय का अभाव हो जाता है और अद्वितीय

बोध जो परमार्थ है, प्राप्त हो जाता है, तो उसके लिए बन्ध और मोक्ष का व्यवहार भी खत्म हो जाता है।

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नमः।



कर्म द्विविध होता है– ज्ञानद्वारा और क्रियाद्वारा। तापत्रय–आधिदैविक-आधिभौतिक और आध्यात्मिक इन तीनों के विनाशक रूप श्रीकृष्ण (कर्षणात् कृष्णः) सभी दुःखों के कर्षण (हरण) करने वाले होने के कारण परमात्मा का नाम कृष्ण है। इस प्रकार से ज्ञानक्रिया द्वारा लक्ष्य श्रीकृष्ण का तापत्रय विनाशकरूप से बोध करना ज्ञानव्यापारात्मक क्रियारूप कर्म है।

दूसरा स्थूलक्रिया 'करशिरःसंयोगानुकूलव्यापारः नमस्कारः' है। इसमें सम्पुटित कर को मस्तक के ऊपर लगाकर जो क्रिया व्यापारविशेष है, उसका सम्पादन है और यही स्थूलक्रिया है। स्थूलक्रिया में श्रद्धा आदि करण (साधन) संयुक्त होने पर ज्ञानक्रिया सम्पन्न होने पर तापत्रयविनाशक श्रीकृष्णरूप फल की प्राप्ति संभव होता है।

नारसिंहेन वानुष्टुब्मन्त्रराजेन तुरीयं विधात्।



१. सर्वसंहारसमर्थः—उग्रः।

२. परिभावसहः—वीरः।

३. प्रभुः—महा।

४. व्याप्तः—विष्णुः।

५. सदोज्ज्वलः—ज्वलन्तम्।

६. अविद्याकार्यहीनः—सर्वतोमुखः।

७. स्वात्मबन्धहरः—नृसिंहः।

८. सर्वदाद्वैतरहितः—भीषणः।

९. आनन्दरूपः—भद्रः।

१०. सर्वाधिष्ठानसन्मात्रः—मृत्युमृत्युः।

११ः निरस्ताविद्यातमोमोहः—नमामि।

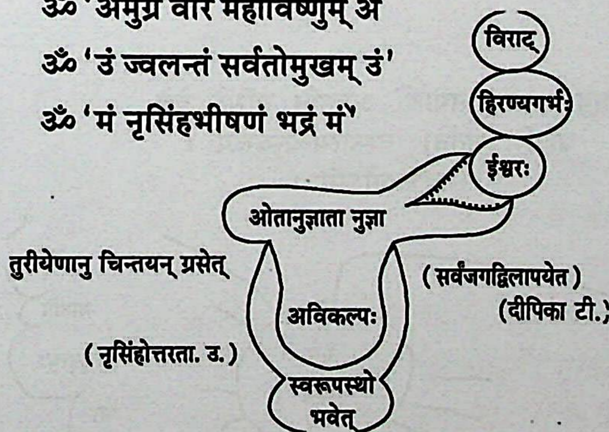
१२. अहमेव—अहम्। (नृसिंहोत्तर ता.उ. दीपिका टीका)

नृसिंहमन्त्र—ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं, सर्वतोमुखं नृसिंहभीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।

ॐ 'अमुग्रं वीरं महाविष्णुम् अं

ॐ 'उं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् उं'

ॐ 'मं नृसिंहभीषणं भद्रं मं'



नरसिंहसम्बन्धी अनुष्टुप् छन्दमय श्रेष्ठमन्त्र द्वारा तुरीय ब्रह्म को जानना चाहिये। उपर्युक्त नृसिंह मन्त्र को सुलभतापूर्वक साधक को समझाने के लिए प्रत्येक पदरूप (संज्ञा) की शक्ति और उसके स्वरूप को कहा गया है और चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

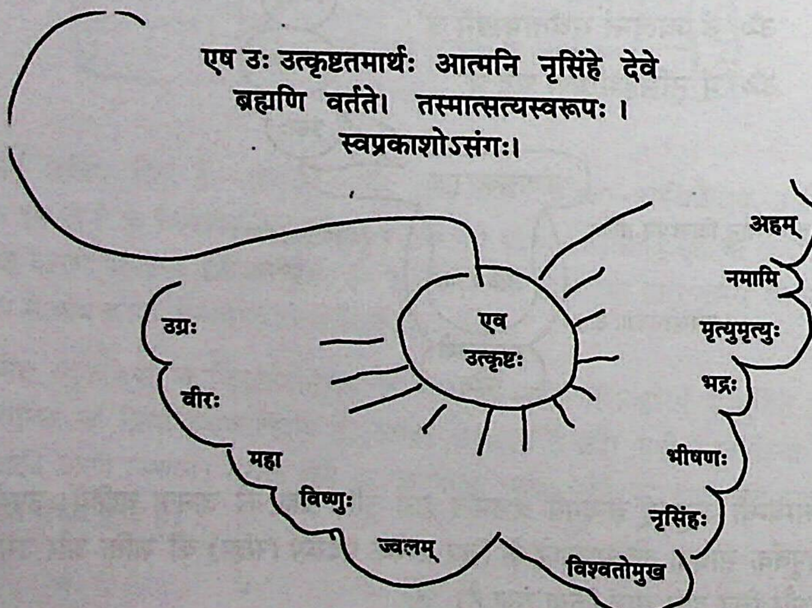
ॐ 'अं उग्रं वीरं महाविष्णुम् अं' यह भगवान् नृसिंह (कार्यब्रह्म के विराट्रूप हैं। ॐ उं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् उं = यह भगवान् नृसिंह (कार्यब्रह्म) के हिरण्यगर्भ स्वरूप है। ॐ मं नृसिंहभीषणं भद्रं मं = यह भगवान् नृसिंह के ईश्वररूप है। ये उपासना में लगे साधकों के लिये तटस्थलक्षणरूप भगवान् नृसिंह के कहे गये। अब योगियों के लिये अपर साधनामार्ग का दिग्दर्शन कराया जा रहा है–साधक ओतानुज्ञातानुज्ञारूप ब्रह्म मुख की उत्तरोत्तर स्थूल सूक्ष्म-सूक्ष्मतर चिन्तन द्वारा (पूर्व-पूर्व स्थूल चिन्तन को त्याग कर। देह और देहान्तर इन्द्रियों की शुद्धिपूर्वक सम्प्रज्ञातरूप ब्रह्म का साक्षात् कर उसके बाद असम्प्रज्ञात-अविकल्प स्वरूप में स्थित हो जाता है, इस तरह अविकल्प समाधि के द्वारा ओतानुज्ञातानुज्ञा रूप समस्त विकल्प का ग्रास (विलय) हो जाता है और अहं पदवाच्य आत्म (ब्रह्म) मात्र रूप से स्थित हो जाता है। इस तरह परमात्मा (नृसिंह) को आत्मरूप से उपासना करनी चाहिए।



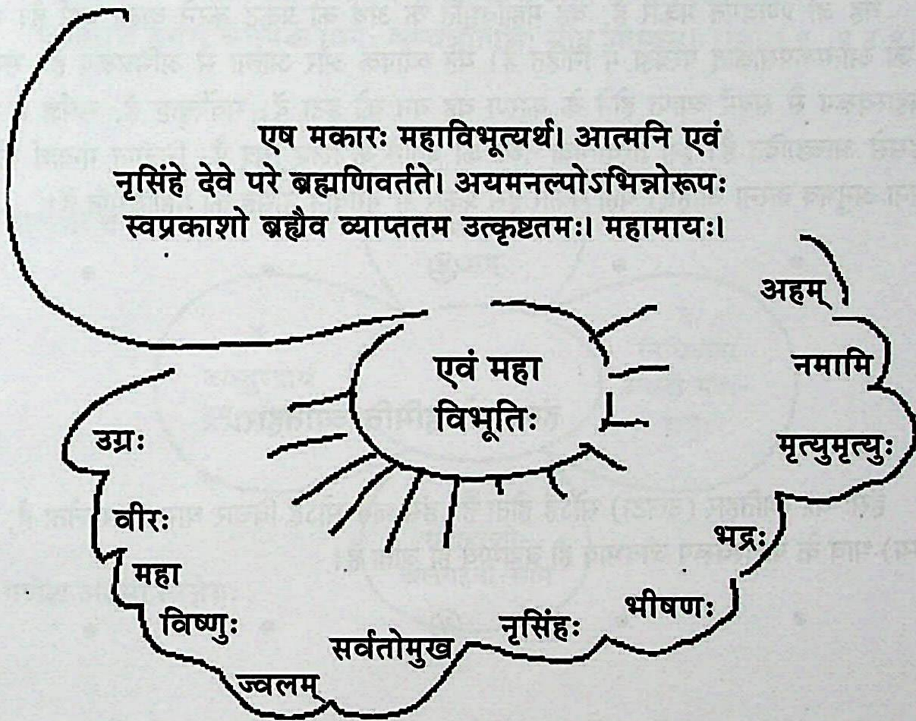
अकारः–आप्ततमार्थः-आत्मनि-नृसिंहे–ब्रह्मणि वर्तते।

एव हि साक्षी, एष ईश्वरः, सर्वगतः, व्याप्ततमः।

उग्रः वीरः महाविष्णु ज्वलन्त सर्वतोमुखः नृसिंहः भीषणः भद्रः मृत्यु मृत्यु नमामि अहम्। य एवं वेद एष व्याप्ततमः आत्मैव नृसिंहो ब्रह्म भवति।



आत्मानमेवैवं जानीयात्, आत्मैव नृसिंहो देवो भवति य एवं वेद। (श्रुति)



अकार का विश्वसनीय प्रामाणिक अर्थ नृसिंहरूप आत्मब्रह्म है।

सन्निकृष्ट नृसिंह रूप आत्मा ही सर्वसाक्षी सभी में व्याप्त सर्वगत ईश्वर (सभी का नियामक है।)

उग्र-वीर-महाविष्णु-ज्वलन्-सर्वतोमुख नृसिंह-भीषण-भद्र-मृत्युमृत्यु नमामि अहम्। जो इस व्याप्ततम नृसिंह रूप को आत्मरूप से जानता है। वह ब्रह्मस्वरूप में स्वयं स्थित हो जाने के कारण स्वयं ब्रह्म हो जाता है। (श्रुति)

यह 'उः' वर्ण का अर्थ उत्कृष्टतम है और प्रसिद्ध उत्कृष्ट वस्तु को कहने में प्रयुक्त है। व्यवहार में भी वाक्यारम्भ काल में उ का प्रयोग प्रसिद्ध है। अतः 'उ' उत्कृष्टतम नृसिंह स्वरूप आत्मा के लिए प्रयुक्त है और वह आत्मरूप नृसिंह है, इसलिए सत्यस्वरूप है और स्वयंप्रकाश स्वरूप और सर्वसंगविवर्जित हैं। इसी तत्त्वभाव को चित्र में व्यापक तात्त्विक ढंग से कहा गया है, चित्र में मन्त्ररूप पद के अर्थ को जो आत्मरूप से जानता है, वह ब्रह्म हो जाता है, यह सर्वतात्पर्यार्थ है। यही उः सभी मन्त्रों में उत्कृष्टतम है।

आत्मा को इस रूप में जानना चाहिए। किस रूप में? आत्मा ही नृसिंह देवता है। इस रूप से जो जानता है। वह सकल क्लेश विनिर्मुक्त नृसिंहरूप हो जाता है। 'तरति शोकमात्मवित्' वह सभी शोक-

मोह आदि क्लेश को पार कर जाता है, जो आत्मा (ब्रह्म) को जानता है। यह श्रुति है।

यह जो प्रणवगत मकार है, वह महाविभूति के अर्थ को प्रकट करने वाला वर्ण है। यह नृसिंह देवता जो आत्मरूपसाक्षात् परब्रह्म में निहित है। यह व्यापक और आत्मा से अभिन्नरूप है। सर्वप्रकाशक और ब्रह्मस्वरूप से सबमें व्याप्त होने के कारण वह वन को हटा दें। सर्वोत्कृष्ट है, सर्वज्ञ है और सभी वस्तु इससे आच्छादित है। इस तत्त्वात्मक तथ्य को बताने के लिए चित्र है। चित्रगत मन्त्रार्थ को उक्तरूप में जानना अनुभव करना चाहिए। यही मकार इस प्रकार से भगवान् नृसिंह की महाविभूति हैं।



हंसः सोऽहमिति व्यतिहारः

हंसः का व्यतिहार (उलटा) सोऽहं होता है। हंस जब सोऽहं विचार धारण कर लेता है, तो अभेद (तादात्म्य) भाव के फलस्वरूप जीवभाव ही ब्रह्मभाव हो जाता है।



(ॐ ह्रीम्) या वेदान्तार्थतत्त्वैकः स्वरूपापरमार्थतः। नामरूपात्मनाव्यक्ता, सा मां पातु हसरस्वती। ॐ प्रणोदेवी सरस्वती। वाजेमिर्वाजनीवती। धीनामवित्र्यवतु॥1॥ (सरस्वतीरहस्योपमः)

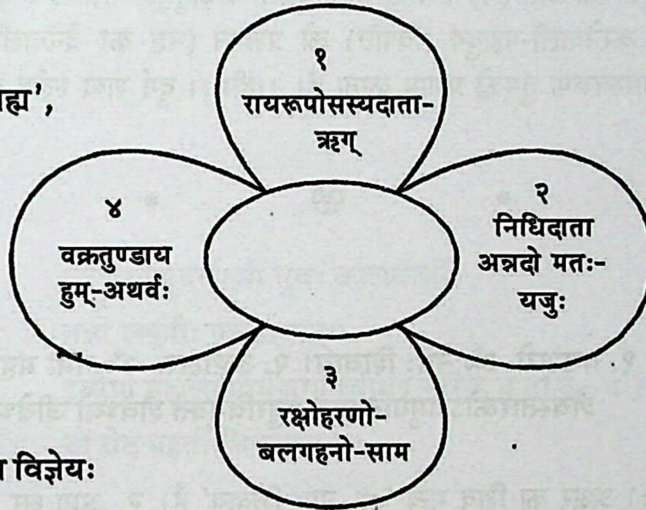
जो वेदान्त (उपनिषद्) शास्त्र के पारमार्थिक तत्त्व जीवात्म्यैक्य (अभेदज्ञान) रूपा हैं और नाम तथा रूप के द्वारा निखिल जगत् में व्यक्त (प्रत्यक्ष) हो रही है, ऐसी लज्जाबीज शक्तिस्वरूपा भगवती सरस्वती हमारी रक्षा करे। ॐ प्रणो देवी ही सरस्वती है; क्योंकि प्रणो प्रकृष्टरूप से नाम-रूपात्मना विराट् जगत् में व्यक्तरूप से प्रकट हो रही है। अथवा प्रकृतिजन्य यह संसाररूपी सागर से तरण करने हेतु जो नौ (नाव) के समान है, उसे प्रणव कहते हैं और उसी को प्रणो कहा गया है।



सिद्धिबुद्ध्यभयाश्लिष्टं शिवोमातनयं विभुम्।
गणेशं प्रमथाधीशं निर्गुणं सगुणं भजे॥

गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनां मतिमेधविग्रहम्।
ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं सानः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद शास्वत्।। (गणेश पू. ता.उ. १।५)

'गणेशो वै ब्रह्म',



गणेश आत्मा विज्ञेयः

सिद्धि बुद्धि दो पत्नियाँ (शक्तियों से युक्त) हैं जिनकी, ऐसे जो उमा (पार्वती) और शंकर के प्रिय पुत्र हैं और सबमें व्याप्त हैं, ऐसे (प्रथम और मुख्यगण) के अधीश (राजा) हैं तथा निर्गुण और सगुण दोनों रूप में विराजमान हैं ऐसे गणेश जी की मैं वन्दना करता हूँ।

जो स्वयं कवि हैं (कवयः क्रान्तद्रष्टारः) और कवियों के मेधा (प्रामाणिक-यथार्थज्ञान) रूप ही विग्रह (शरीर) है, जिसका प्रथमपूज्य धर्मरूपवृषभ है केतु (पताका) जिसके, ऐसे विशाल शरीर वाले देवताओं में श्रेष्ठ गणपति हमारे विघ्न को निरन्तर शान्त करें।

गणेश ही ब्रह्म हैं और वह आत्मरूप से सभी चराचर में व्याप्त हैं। अतः गणेश को सबके आत्मारूप ब्रह्म जानो। उन गणेश के विज्ञानस्वरूप का दिग्दर्शन चित्र द्वारा कराया गया है। (१) गणेश जी रायरूप से सस्य के दाता है, ऋग्वेद हैं। (२) गणेश जी नवनिधियों के दाता और अन्नदाता-यजुर्वेद हैं। (३) गणेश जी सकल विघ्न के हर्ता हैं–सामवेद हैं। (४) गणेश जी सकल व्याधि को दूर करनेवाले हैं–अथर्ववेद हैं। चारों वेदों में निहित ज्ञान-विज्ञानमय गणेश जी निखिल संसार के भर्त्ता, हर्त्ता और रक्षयिता हैं।

मन्त्राणां मातृकादेवी, शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता, शून्यानां शून्यसाक्षिणी। (देव्युपनिषद्-१७)
ह्रीं नमामि त्वामहं देवीं, महाभयविनाशिनीम्।

महादुर्ग=प्रशमनीं, महाकारुण्यरूपिणीम् ह्रीम्।। (देव्युपनिषद्-१६)

वह सारी प्रकृति पराम्बा मन्त्रों की प्रश्रवयितामातृका नाम से प्रसिद्ध देवी है। शब्दों में निहित ज्ञानरूपा हैं। ज्ञान में चिन्मय अतीता हैं और शून्यों के साक्षी रूपिणी हैं। पराशक्तिस्वरूपा 'ह्रीं' (लज्जाबीज) बीज समन्विता अहं (मैं) रूप से अन्तःकरण में अनुभूता-संसाररूप महाभय को नाश कर भक्तजीवों का उद्धार करनेवाली-महादुर्ग (विपत्ति) को प्रशमन (नष्ट कर देनेवाली) करनेवाली अपार करुणा (दया) के सागरस्वरूपा तुमको प्रणाम करता हूँ। ।।ह्रीम्।। दुर्ग शब्द श्लेष है। दुर्ग नामक असुर वा विपत्ति अर्थ है।

● ● ❀ ● ●

१. षडक्षरो-ॐ नमः शिवाय। २. अष्टाक्षरः-ॐ नमो महादेवाय।
शैवस्तारकोऽयमुपदिश्यते मनुरविमुक्ते शैवेभ्यो जीवेभ्यः।

१. षट् (छः) अक्षर का शिव मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' है। २. अष्टा क्षर (आठ) का शिवमन्त्र 'ॐ नमो महादेवाय' है। भगवान् शिव उपर्युक्त षडक्षर अथवा अष्टाक्षर मन्त्रों का कान में उपदेश देकर अपने शरणागत आये हुए भक्त को तारते हैं–मोक्ष प्रदान करते हैं। इसलिए उपुर्यक्त मन्त्रों को तारक मन्त्र कहा जाता है। भगवान् शिव काशी में इसी मन्त्र का उपदेश अपने शरणागत काशी में आये हुए भक्त को देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। इसीलिए काशी का नाम मोक्षनगरी है।

● ● ❀ ● ●

यो विष्णुः स स्वयं ब्रह्मा, यो ब्रह्मा
स महेश्वरः।(वराहपुराण-६।२६)

भगवान् विष्णु ही स्वयं ब्रह्मा और महेश्वर हैं। जो ब्रह्मा हैं, वही स्वयं महेश्वर (शिव) हैं।

● ● ❀ ● ●

श्रीं महालक्ष्मीश्च विद्महे, सर्वसिद्धिंश्च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।।श्रीम्।। (देव्युपनिषद्-७)

मैं महालक्ष्मी को आत्मरूप से जानता हूँ। ऐसी अणिमा आदि आठों सिद्धियों को प्रदान करनेवाली देवी का मैं ध्यान करता हूँ। अथवा सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न वह महालक्ष्मी देवी जो अस्मिता रूप से सभी के अन्तःकरण में स्थित हैं और हम उसे जानते हैं उस देवी का मैं ध्यान साधना द्वारा आराधना करता हूँ। अतः वह देवी मुझे सद्-असद् मिथुनीभाव संसार के बोध का पारमार्थिक ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित करें।



भूर्लक्ष्मीभुवर्लक्ष्मी सुवः कालकर्णी।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥
इत्येषा महालक्ष्मीर्यजुर्गायत्री॥ (नृसिंह पू.ता.उ.- ४)
यो वेद महतीं श्रियमश्नुते॥

भूलोक में स्थिता लक्ष्मी का नाम भूर्लक्ष्मी है। भुवर्लोक (अन्तरिक्षलोक) में रहनेवाली लक्ष्मी का नाम भुवर्लक्ष्मी है और स्वर्लोक (देवलोक-स्वर्ग) में रहने वाली लक्ष्मी कालकर्णी है। तीनों लोकों में निवास करनेवाली जो वह लक्ष्मी वह श्रेय मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए मुझे प्रेरित करे। लक्ष्मी रजोगुणप्रधान देवी हैं। परन्तु वही लक्ष्मी जब तमोगुण रजोगुण को अभिभूत कर सतोगुणप्रधाना विद्या-स्वरूपा सरस्वती उपाधियुता रूपा होती है, तो साधक को श्रेयमार्ग (मुक्तिप्राप्ति के लिए साधनस्वरूपा ब्रह्मविद्यारूपा) हेतु कृपा प्रदान करती है और साधक को उस श्रेयमार्गाभिमुखीकरण हेतु प्रेरित करती हैं भूर्लोक रजोगुण प्रधानालक्ष्मी भुवर्लोक तमोगुण प्रधानालक्ष्मी और स्वर्लोक सतोगुणप्रधाना लक्ष्मी मुझे प्रेरित करे, यह भी अभिप्राय अभिप्रेत है। जो इस विद्यारूपा लक्ष्मी को उपाधिभेद से उपाधि अभेद से और उपाधि रहित रूप से अनिर्वचनीया ब्रह्मरूपा को तत्त्वरूप से जानता है, वह महती श्रेय को प्राप्त करता है और उसका भोग करता है। लक्ष्मी शोभा को कहते हैं। अतः तीनों लोकों की शोभा वाली यह लक्ष्मी यजुर्वेदोक्त चौबीस अक्षर वाली है।



ज्ञानयुक्तोऽयमाद्यष्टाङ्गयोगः—

(क) यमः—शीतोष्णाहारनिद्राविजयः सर्वदा शान्तिः निश्चलत्वम्, विषयेन्द्रियनिग्रहः यमाः॥१॥

(ख) नियमः—गुरुभक्तिः सत्यमार्गानुरक्तिः सुखागतवस्त्वनुभवः तुष्टिः निःसङ्गता-एकान्तवासः मनोनिवृत्तिः फलानभिलाषः वैराग्यभावः नियमाः॥२॥

(ग) आसनम्—सुखासनवृत्तिः चीरवासः आसनम्॥३॥

(घ) प्राणायामः—पूरककुम्भकरेचकैः षोडश-चतुःषष्टि-द्वात्रिंशत्संख्यया यथाक्रमं—प्राणायामः॥४॥

(ङ.) प्रत्याहारः—विषयेभ्य इन्द्रियार्थेभ्यो मनो निरोधनं-प्रत्याहारः॥५॥

(च) ध्यानम्—शरीरेषु चैतन्यैकतानता-ध्यानम्॥६॥

(छ) धारणा—चैतन्ये चेतः स्थापनम्-धारणा॥७॥

(ज) समाधिः—ध्यानविस्मृतिः—समाधिः॥८॥

ज्ञानपूर्वक यम आदि जो योग के आठ अङ्ग हैं, उसके स्वरूप ये हैं—

(क) शीतोष्ण आहार का भोजन-निद्रा पर विजय, सर्वदा शान्त रहना चञ्चलता का अभाव-विषयों के प्रति इन्द्रियों को जाने नहीं देना (उसे रोकना) ये नियम हैं।

(ख) गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति-सत्यमार्ग के अनुसरण में लगाव प्रारब्धानुसार उपस्थित प्राप्त वस्तुओं में सुख का अनुभव करना व्यवहारतः यथाप्राप्ति में संतोष-वस्तुओं में लगाव का नहीं होना—एकान्त उपयुक्त स्थल में निवास, मन के संकल्प-विकल्पधर्म से निवृत्ति, कृतकर्म के फल के प्रति इच्छा नहीं करना—सदा विषयों के प्रति विरागभाव नियम के अन्तर्गत हैं।

(घ) पूरक (नाक के छिद्र से वायु का अन्दर खींचना), कुम्भक (नाक के छिद्र से खींचे गये वायु को अन्दर रोकना), रेचक (खींचे गये वायु को रोकने के बाद उसे बाहर की ओर फेंकना) इस तीनों क्रियाओं को एकबार करने पर प्राणायाम (सामान्य) एक बार हुआ। इसी के क्रम से सोलहबार-बत्तीसबार-चौसठबार क्रम से साधना बढ़ने के हिसाब से अधिक बढ़ाकर करने को प्रणायाम कहते हैं।

(ङ.) इन्द्रियों को उसके विषयों के प्रति पूर्व से प्रवाहित गति को रोकना और इन्द्रियों के सहित मन की वृत्ति को अन्तर्मुखी करना प्रत्याहार कहलाता है।

(च) शरीर के प्रत्येक अङ्गों में चैतन्यरूप 'मैं' का लगातार (अविच्छिन्नतैलधारावत्) अभ्यास प्राप्त होना ध्यान है।

(छ) चैतन्य में चेत (अहं आस्पद) का स्थापन करना धारणा है।

(ज) ध्यान की विस्मृति अर्थात् लय हो जाना समाधि है।

देहस्य पञ्चदोषाः—१. कामः, २. क्रोधः, ३. निश्वासः, ४. भयम्, ५. निद्रा। (मण्डल ब्राह्मण ३०)

तन्निरासः—१. निःसंकल्पः, २. क्षमा, ३. लघ्वाहारः, ४. अप्रमादः, ५. तत्त्वसेवनम्।

देह के पाँच दोष होते हैं– १. काम (इच्छा करना), २. क्रोध करना, ३. निश्वास क्रिया, ४. भय होना और, ५. निद्रा।

देह के उन पाँचों दोषों को दूर करना इस प्रकार सम्भव है–१. संकल्पशून्यता से काम की निवृत्ति। २. क्षमा द्वारा क्रोध की निवृत्ति। ३. स्वल्पाहार सेवन से निःश्वास की निवृत्ति। ४. अप्रमाद से भय की निवृत्ति। ५. तत्त्वचिन्तन से निद्रानिवृत्ति।



लक्ष्योऽन्तर्बहिर्दृष्टिर्निमेषवर्जिता शाम्भवीमुद्रा महाविद्या।

लक्ष्य (प्राप्तव्य) के अन्तः (अन्दर) और बाहर निमेषवर्जित (अपलक) दृष्टि को शाम्भवीमुद्रा कहा जाता है। यह शाम्भवीमुद्रा महाविद्या है।



१. तस्य निश्चिन्तता-ध्यानम्।
२. सर्वकर्मनिराकरणम्-आवाहनम्।
३. उन्मनीभावः- पाद्यम्।
४. सदाऽनमस्कम्-अर्घ्यम्।
५. सदादीप्तिपारामृतवृत्तिः स्नानम्।
६. ईशावस्यमिदं सर्वम्-वस्त्रम्।
७. सर्वत्र भावनाः-गन्धः।
८. दृक्स्वरूपावस्थानम् अक्षतम्।
९. चिदाप्तिः-पुष्पम्।
१०. चिदाग्निस्वरूपम्-धूपम्।
११. चिदादित्यस्वरूपम्-दीपः।
१२. परिपूर्णचन्द्रामृतस्यैकीकरणम्-नैवेद्यम्।
१३. निश्चलत्वम्-परिक्रमा।
१४. सोऽहंभावः-नमस्कारः।
१५. मौनम्-स्तुतिः।
१६. सर्वसन्तोषो-विसर्जनम्।

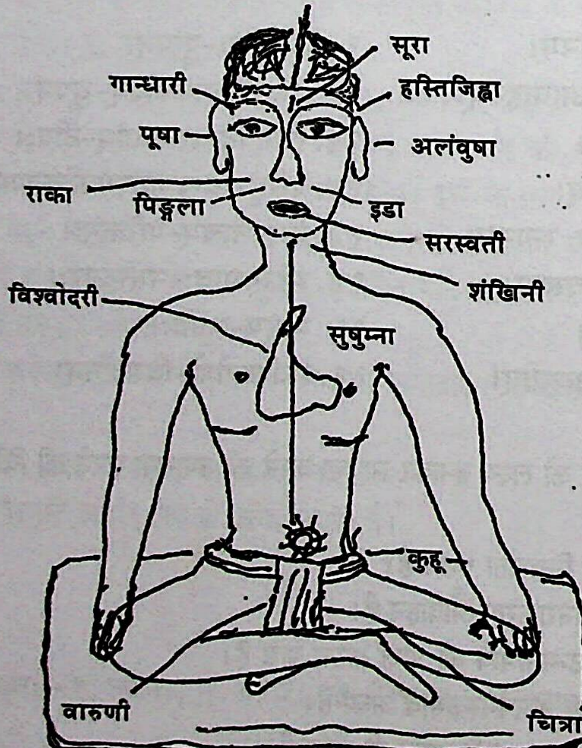
ब्रह्मात्म्यैक्य स्थिति को लक्ष्य बनाकर साधना करने की,उपासना करने की विधि यहाँ दी जा रही है–

१. उस आत्मा की निश्चलता ध्यान है।
२. सभी कर्मों का निराकरण आवाहन है।
३. उस आत्मा में उन्मनीभाव को प्राप्त करना पाद्य है।
४. मन का लय कर अनमनस्कभाव अर्घ्य है।
५. सदा आत्मप्रकाशस्वरूप चित्तवृत्ति ही स्नान है।

६. यह जगत् ब्रह्म के द्वारा व्याप्त (आच्छादित) है, यही भाव वस्त्र है।
७. सभी जीवों और वस्तुओं में आत्मभावना ही गन्ध है।
८. द्रष्टा (साक्षी) रूप में स्थिति अक्षत है।
९. चिद्भाव की प्राप्ति पुष्प है।
१०. चिद्रूप अग्नि ही धूप है।
११. चिद् का आदित्यस्वरूप ही दीप है।
१२. पूर्णचन्द्रमास्वरूप में ब्रह्मात्म्यैक्यरूपता ही नैवेद्य है।
१३. निश्चल (स्थिर) भाव की प्राप्ति परिक्रमा है।
१४. सोऽहंभाव=वह ब्रह्म मैं (जीवात्मा) ही हूँ यह नमस्कार है।
१५. मौनभाव की प्राप्ति स्तुतिकर्म है।
१६. सभी वस्तुओं में तृप्तिभाव (कामनारहित) ही विसर्जन है।



मूर्धानमभिसृतैका



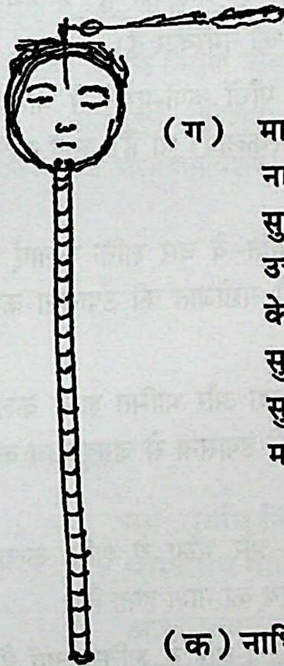
सुषुम्नायै नमस्तुभ्यं, सुधायै चन्द्रमण्डलात्। (योगशिखोपनि. ५)
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं, महाशक्त्यै चिदात्मने।। (योगशिखोपनि. ६)

१. सद्योजात-पृथिवी-निवृत्तिः-कपिल-आनन्दा-विभूतिः ऐश्वर्यकारणात्।
२. वामदेवात्-उदकं-प्रतिष्ठा-कृपणा-भद्रा-भसितम्-भासनात्।
३. अघोरात्-वह्निः- विद्या-रक्त-सुरभिः- भस्म-सर्वदाभक्षणात्।
४. तत्पुरुषात्-वायुः- शान्तिः- श्वेता-सुशीला-क्षारम्-आपदां क्षारणात्।
५. ईशानात्-आकाशं-शान्त्यतीता-चित्रा-सुमना-रक्षा-भवभीतिभ्यो रक्षणात्।

(बृहज्जाबालोपनि. १)

(क) ब्रह्मरन्ध्रोपरिस्थाने, वर्तते सततं शिवा। चिच्छक्तिः।

(ख) गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन् वीणादण्डः सदेहभृत्। दीर्घास्थिदहपर्यन्तं, ब्रह्मनाडीति कथ्यते।।



(ग) मायाशक्तिललाटाग्रभागे व्योमाम्बुजे,
नादरूपा पराशक्तिललाटस्य तु मध्यमे।
सुषुम्ना शाम्भवी शक्तिः;
उच्चारयेत् परां शक्तिं ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनीम्।
केचिद्वदन्ति चाधारं सुषुम्ना च सरस्वती।
सुषुम्नायां यदा हंसः ऊर्ध्वमूर्ध्वं च धावति।
सुषुम्नायां प्रवेशेन चन्द्रसूर्यौ लयं गतौ।
मध्यनाडी= प्रदर्शनात् (मुक्तिः)।

(योगशिखोपनि. ६।८)

(क) नाभिकन्दे
नासाग्रे
पदाङ्गुष्ठे



धारयेत्
मनसा प्राणान् सन्ध्या बालेषु वा सदा।
सर्वरोगविनिर्मुक्तः जीवेद्योगी गतक्लमः।।

(ख) ब्राह्मे मूहूर्त्ते वायुमाकृष्य जिह्वया,
पिबतस्त्रिषु कालेषु वाक्सिद्धिर्महती भवेत्।। (त्रिशिख ब्रा.उ. १०८)

नाड़ियाँ असंख्य हैं, परन्तु उनमें प्रमुख पन्द्रह नाड़ियाँ हैं। ऊपर से कहा जा रहा है–दोनों भौहों

के मध्य सूरा, दक्षिणनेत्र-गान्धारी, वामनेत्र हस्तिजिह्वा, दक्षिणकर्ण-पूषा, वामकर्ण अलंवुषा, दक्षिण घ्राण छिद्र राका, वाम छिद्र–इडा, मुख में सरस्वती, ग्रीवा में शंखिनी, हृदयदेश में विश्वोदरी और सुषुम्ना, कटिदेश में कूहू , कटिदेश में वारुणी और गुह्य देश में चित्रा नाम की नाड़ियाँ स्थित हैं। इन पन्द्रह मुख्य नाड़ियों में भी इडा-पिङ्गला और सुषुम्ना अतिप्रमुख नाड़ियाँ हैं। इन तीनों में भी सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ है, जो अतिसूक्ष्मरूपा गुदा के निकट से मेरुदण्ड के भीतर होती हुई शिरोभाग की ओर जाती है। इसी गुदा स्थान के निकट से ही वामभाग से इडा और दक्षिण भाग से पिङ्गला नासाग्रमूलपर्यन्त जाती है, भ्रूमध्य में ये तीनों नाड़ियाँ मिल जाती हैं, जिसे त्रिवेणी कहते हैं। सुषुम्ना को सरस्वती, इडा को गंगा और पिंगला को यमुना कहा जाता है। गुदसमीप से तीनों नाड़ियों के ऊर्ध्व प्रस्थान को मुक्त त्रिवेणी और भ्रूमध्य मिलन को युक्त त्रिवेणी कहते हैं। इडा को चन्द्रनाड़ी और पिङ्गला को सूर्यनाड़ी कहा जाता है। उपर्युक्त श्लोकार्थ इसी को दृष्टि में रखकर की जा रही है–सुषुम्ना और सुधा (चन्द्रनाड़ी) को नमस्कार है। मनोन्मनी (मन का लय हो जाने और आत्ममात्र बुद्धि रह जाना) चिदात्मा की महाशक्ति को नमस्कार है।

भगवान् सदाशिव पाँच विग्रह पाँच मुँह (पञ्चमुख) हैं। उन पाँचों रूपों-मुखों से भी सदाशिव सदाकल्याणकारी ही हैं। उन पाँचों विग्रहों-मुखों की पञ्च-पञ्च शक्तियाँ (कलाएँ) भी हैं। उन्हीं शक्तियों के द्वारा उन-उन ऐश्वर्यपूर्ण कार्य करते हैं। यथा–

१. ॐ सद्योजात की पृथिवी वृत्ति-कपिला-आनन्दा और विभूति–ये चार शक्ति कलाएँ हैं, इसे ऐश्वर्य से परिपूर्ण हैं और दूसरों (जीवों) को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। जो सद्योजात की उपासना करता है, उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

२. वामदेवात्-वामदेव में–उदक (जल) में प्रतिष्ठ हैं। कृपण-भद्रा और भासित शक्ति कलाएँ है, इसके द्वारा अचेतन भी चेतन (आत्मरूप) से भासित होता है। वामदेव की उपासना से जगद्रूपभ्रम का नाश होता है।

३. अघोरात्-अघोर में–वह्नि कला है और विद्या-रक्ता-सुरभि-और भस्म ये शक्ति कलाएँ हैं। भक्षण कर्म का निष्पादन करते हैं। इनकी उपासना से अज्ञानजन्य संसारभय का नाश होता है।

४. तत्पुरुषात्-तत्पुरुष में–वायु कला है और शान्ति-श्वेता-सुशीला-क्षार ये शक्तिकलाएँ हैं। इस स्वरूप की उपासना से निखिल आपद् (समूल संसाररूप) भय से छुटकारा प्राप्त होता है।

५. ईशनात्-ईश में–आकाश तत्त्व करना और शान्त्यातीता-चित्र-सुमना-रक्षा ये शक्ति कलाएँ हैं। इस स्वरूप की उपासना से सभी प्रकार के जगद्भय से रक्षा होती है। भगवान् सदाशिव नित्यरूप से सत्यज्ञानादि लक्षण एक ही हैं तथापि अपनी कलाशक्ति जलतत्त्व, अघोर से वह्नितत्त्व, तत्पुरुष से वायु तत्त्व और ईशान से आकाशतत्त्व स्वरूप हैं, यह पक्ष मुख्य पक्ष हैं।

(क) ब्रह्मरन्ध्र से परे जो स्थान है, उसमें शिवा का नित्य निवास है। वही शिव की चित्शक्ति है।

(ख) इस देह के गुदा के पृष्ठभाग में वीणादण्ड के समान (वीणादण्डोपमित)। (चित्र को देखकर

भी समझा जा सकता है।) दीर्घ (लम्बा) अस्थि (हड्डी) सम्पूर्ण देह में विस्तृत है, उसी अस्थिदण्ड को ब्रह्म नाड़ी कहा जाता है।

(ग) ललाट (शिरोभाग के आगे में आकाशकमल में माया शक्ति का स्थान है। नादरूपा पराशक्ति ललाट के मध्यभाग (दोनों भौंहों के बीच भाग के ऊपर) में विराजमान हैं। सुषुम्ना शाम्भवीशक्ति है, वहीं पर ब्रह्मरन्ध्र में निवास करने वाली पराशक्ति का ध्यान करना चाहिये, ये कहा है। जप करना चाहिये, ध्यान करना चाहिये। कोई साधकजन का विचार है कि इसी पराशक्ति के अधोभाग में सुषुम्ना सरस्वती (पिंगला) और इडा (गंगा) का मिलन -स्थान (त्रिवेणी) है। परन्तु सुषुम्ना नाड़ी में साधक के प्रवेश कर जाने पर चन्द्रनाड़ी (इड़ा) और सूर्यनाड़ी (पिंगला) का लय हो जाता है। केवल मध्यनाड़ी सुषुम्ना में प्रविष्टि ही मुक्ति है। (योगशिखोप. ६/८)

(क) नाभि कन्द (नाभि की गोलाई वाला स्थान) में वायु को खींच कर नासाग्रभाग से पादाङ्गुष्ठभाग अथवा बाल (केश) के मूल तक आभ्यान्तर प्रयत्न द्वारा उसके संचरण का ध्यान करने से योगी सभी रोगों से मुक्त निरोगी जीवन जीता है।

(ख) ब्रह्ममुहूर्त्त (रात्रिशेष) में अथवा तीनों सन्धिकाल में जिह्वा को दोनों ओष्ठ से दबा कर वायु को खींचने (पूरक प्राणायामविशेष) से वाक् (वाचाशक्ति) शक्ति की अपार विस्तार की सिद्धि प्राप्त होती है।



ब्रह्मोक्तसूर्यनामस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच–

नमः सूर्याय नित्याय, रवयेऽर्कपिभानवे।
भास्कराय मतङ्गाय मार्तण्डाय विवश्वते॥१॥

आदित्यायादिदेवाय, नमस्ते रश्मिमालिने।
दिवाकराय दीप्ताय, अग्नये मिहिराय च॥२॥

प्रभाकराय मित्राय, नमस्तेऽदितिसम्भवे।
नमो गोपतये नित्यं, दिशाञ्च पतये नमः॥३॥

नमो धात्रे विधात्रे च, अर्यम्णे वरुणाय च।
पूष्णे भगाय मित्राय, पर्जन्यायांशवे नमः॥४॥

नमो हितकृते नित्यं, धर्माय तपनाय च।
हरये हरिताश्वाय, विश्वस्य पतये नमः॥५॥

विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं नित्यं, त्र्यम्बकाय तथात्मने।
नमस्ते सत्यलोकेश, नमस्ते सप्तसप्तये॥६॥

एकस्मै हि नमस्तुभ्य मेकचक्ररथाय च।
ज्योतिषां पतये नित्यं, सर्वप्राणभृते नमः॥७॥

हिताय सर्वभूतानां, शिवायार्तिहराय च।
नमः पद्मप्रबोधाय, नमो वेदादिमूर्तये॥८॥

काधिजाय नमस्तुभ्यं, नमस्तारासुताय च।
भीमजाय नमस्तुभ्यं, पावकाय च वै नमः॥९॥

धीष्णाय नमो नित्यं, नमः कृष्णाय नित्यदा।
नमोस्त्वदितिपुत्राय, नमो लक्ष्याय नित्यशः॥१०॥

(म.पु.ब्र. ७१)

ब्रह्मा ने सूर्य के नामों से उनकी स्तुति की है, उस स्तुति को स्तोत्र कहते हैं। स्तोत्र में भगवान् सूर्यनारायण के इन नामों को गुम्फित किया है–सूर्य, नित्य, रवि, अकपि, भानु आपको नमस्कार है। भास्कर-मतङ्ग-मार्तण्ड-विवस्वान् आदित्य-आदिदेव-रश्मिमाला को नमस्कार है। दिवाकर-दीप्त-अग्नि-मिहिर-प्रभाकर-मित्र-अदिति-शम्भु-गोपति-दिशांपति (दिशाओं के पति) आपको निरन्तर प्रणाम है। धाता-विधाता अर्यमा-वरुण-पूषा-भग-मित्र-पर्जन्य-अंशु को नमस्कार है। हितकृत्-धर्म-तपन को नमस्कार है, हरि-हरिताश्व-विश्वपति को नमस्कार है, विष्णु-ब्रह्मा-त्र्यम्बक-आत्मा-सत्यलोकेश को नमस्कार है। सप्तसप्ति-एक अद्वितीय-एकचक्ररथ को नमस्कार करता हूँ। ज्योतिष्पति-सर्वप्राणभृत् को प्रणाम है। सर्वभूतहित-शिव-आर्तिहर-पद्मप्रबोध को प्रणाम करता हूँ। वेदादिमूर्ति-काधिज को प्रणाम। तारासुत-भीमज को नमस्कार है। पावक को प्रणाम। धीष्ण को नमस्कार, कृष्ण-नित्यदा को प्रणाम, अदितिपुत्र को प्रणाम और लक्ष्य को नित्य-निरन्तर को प्रणाम करता हूँ।



(क) आदित्य ॐ मित्युपासीत्। (मैत्रायणी उ. ५।३)

(ख) आदित्यं ब्रह्म ॐ उपासीत्। (छान्दो. उ. ३।३।१)

तिथिदेवताः (भवि.पु.ब्रा. १.२)

क्र.स	तिथि	देवता	कार्य (फल)	अर्थ
१.	प्रतिपद्	अग्निः	धनघान्यम्	प्रतिपद के अग्नि देवता है और धनधान्यवर्धन फल है।
२.	द्वितीया	ब्रह्मा	विद्या	द्वितीया के ब्रह्मदेवता और विद्यादाता है।
३.	तृतीया	कबेरः	धनम्	तृतीया के कुबेर देवता धनदाता है।
४.	चतुर्थी	गणेशः	विघ्ननाशः	चतुर्थी के गणेश विघ्ननाशक है।
५.	पंचमी	नागः	विषभयाभावः	पंचमी के नाग विषभय त्राणदाता है।
६.	षष्ठी	कार्तिकेयः	मेधा-दीर्घायु	षष्ठी के कार्तिकेय-मेधा (ज्ञान) और दीर्घायुदाता है।
७.	सप्तमी	सूर्यः	रक्षा	सप्तमी के सूर्य देवता लोकरक्षक है।
८.	अष्टमी	रुद्रः	ज्ञानं-कान्तिः	अष्टमी के रुद्र ज्ञान और कान्तिदाता है।
९.	नवमी	दुर्गा	इच्छापूर्तिः विजयः	नवमी के दुर्गा इच्छापूर्ति और विजयदात्री है।
१०.	दशमी	यमः	रोगन्नाशः नरकाभावः	दशमी के यम रोगनाशक और रोगनाशक है।
११.	एकादशी	विश्वेदेवाः	धनधान्यादिः	एकादशी के विश्वेदेव धनधान्य-दाता है।
१२.	द्वादशी	विष्णुः	विजयः-पूज्यता	द्वादशी के विष्णु विजय और पूज्यता प्रदाता है।
१३.	त्रयोदशी	कामः	रूपम्-रमणी	त्रयोदशी के कामदेव रूप और पूज्यता प्रदाता है।
१४.	चतुर्दशी	शंकरः	ऐश्वर्यम्	चतुर्दशी के भगवान् शंकर ऐश्वर्य प्रदान करते है।
१५.	अमावस्या	पितरः	प्रजा-धन आयुः के दाता है।	अमावश्या के पितृगण देवता है और ये सन्तति-धन तथा आयु के दाता है।

(क) आदित्य ही ॐ स्वरूप ब्रह्म है। अतः आदित्य की उपासना करनी चाहिए। जो आदित्य महाकाश में प्रकाशस्वरूप से स्थित हैं, वही हृदयाकाश में आत्मा स्वरूप से है। अतः ॐ ब्रह्म आदित्य का आत्मा से अभेद समझो और उनकी उपासना करो। प्रतिपदा से अमावस्या तक की तिथियों को दो प्रतीक रेखा चित्रों से घेरने का तात्पर्य चन्द्रसूर्य की गति के अनुसार उन-उन तिथियों में चन्द्रमा का क्षय दर्शाया गया है। ह्रास और वर्धन चन्द्रकला की दीप्ति का पृथिवी के उस-उस भाग पर उस-उस अंश रूप में पड़ने से है। उन-उन तिथियों के व्रत आदि उनके देवता की उपासना करने पर फलदायक होता है।

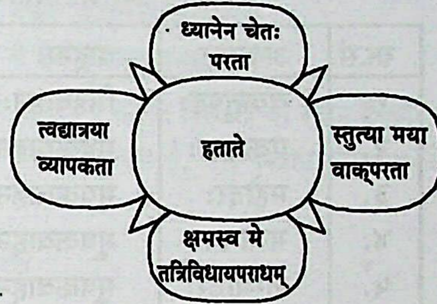
नक्षत्रदेवताः (भवि.पु.ब्रा. १.२)

क्र.स	नक्षत्र नाम	देवता	कार्य (फल)	अर्थ
१.	अश्विनी	अश्विनीकुमार	दीर्घायुः	अश्विनी के अश्वनीकुमार दीर्घायु देते है।
२.	भरणी	यमः	अपमृत्युनाशः	भरणी के यम अपमृत्युनाशक है।

३.	कृत्तिका	अग्निः	यथेष्टफलम्	कृत्तिका के अग्नि यथेष्ट फलदाता हैं।
४.	रोहिणी	ब्रह्मा	अभिलाषापूर्तिः	रोहिणी के ब्रह्मा अभिलाषापूर्ति करते हैं।
५.	मृगशिरा	चन्द्रः	ज्ञानमारोग्यम्	मृगशिरा के चन्द्रमा ज्ञान तथा आरोग्यदाता हैं।
६.	आर्द्रा	शिवः	विजयः	आर्द्रा के भगवान् शिव विजय दाता हैं।
७.	पुनर्वसु	अदितिः	मातृसमरक्षा	पुनर्वसु के अदिति माता के समान रक्षा करती है।
८.	पुष्य	बृहस्पति	सद्बुद्धिः	पुष्य के बृहस्पति सद्बुद्धिदाता हैं।
९.	आश्लेषा	नागाः	निर्भयः	अश्लेषा के नागगण निर्भयप्रदाता है।
१०.	मघा	पितरः	धनधान्यादिः	मघा के पितृगण धनधान्य देते हैं।
११.	पूर्वाफाल्गुनी	पूषा	विजयः	पूर्वाफाल्गुनी के पूषा विजयप्रदाता हैं।
१२.	उत्तराफाल्गुनी	भगः	विजयः पतिः-पत्नी	उत्तराफाल्गुनी के भग देवता,विजय,पति और पत्नी को प्रदान करते हैं।
१३.	हस्तः	सूर्यः	सम्पति	हस्त के सूर्य सम्पत्ति प्रदाता हैं।
१४.	चित्रा	त्वष्टा	शत्रुरहितराज्यम्	चित्रा के त्वष्टा शत्रुरहित राज्यप्रदाता हैं।
१५.	स्वाती	वायुः	शक्तिः	स्वाती के वायु शक्तिदाता हैं।
१६.	विशाखा	इन्द्राग्निः	धन-धान्य तेजः	विशाखा के इन्द्राग्नि धन-धान्य और तेज (ओज) के दाता हैं।
१७.	अनुराधा	मित्रः	लक्ष्मी-आयुः	अनुराधा के मित्र लक्ष्मी और वायु के दाता हैं।
१८.	ज्येष्ठा	इन्द्रः	पुष्टि गुणाढ्यता	ज्येष्ठा के इन्द्र पुष्टि और गुणाढ्यता (गुणवर्धन) प्रदान करता हैं।
१९.	मूलम्	सर्वदेवा पितरः	स्वर्गः	मूल के सभी देवता और पितृगण स्वर्गप्रदाता है।
२०.	पूर्वाषाढ़ा	आपः	शारीरिक-मानसिक-तापाभावः	पूर्वाषाढ़ के जल (वरुण) शारीरिक मानसिक ताप को दूर करते हैं।
२१.	उत्तराषाढ़ा	विश्वेदेवाः	सर्वलाभः	उत्तराषाढ़ के विश्वेदेव सम्पूर्ण लाभ कराते है।
२२.	श्रवणम्	विष्णुः	लक्ष्मीर्विजयः	श्रवण के विष्णु भगवान् लक्ष्मी और विजय के दाता हैं।
२३.	धनिष्ठा	वसवः	भयमुक्तिः	धनिष्ठा के वसुगण भय से मुक्ति प्रदान करते हैं।
२४.	शतभिषा	इन्द्रः	व्याधिमुक्तिः	शतभिषा के इन्द्र रोग से मुक्ति प्रदान करते है।
२५.	पूर्वाभाद्रपद	अजः	भक्तिः विजयः	पूर्वाभाद्रपद के अज-भक्ति और विजय करते हैं।
२६.	उत्तराभाद्रपद	अहिर्बुध्न्यः	परमशान्तिः	उत्तराभाद्रपद के अहिर्बुध्न्य परमशान्ति को देते है।
२७.	रेवती	पूषा	मंगलं-धृति-विजयः	रेवती के पूषा मंगल-धृति और विजय को प्रदान हैं।

नक्षत्र की उपासना, व्रत, जप, हवन,दान-उनके देवता को उद्देश्य कर करने पर फलदायी होता है।

त्वद्यात्रया व्यापकता हता ते स्तुत्या
हता वाक्परतापि नित्यं ध्यानैर्मनोगोचरता
हता ते, देवापराधं त्रितयं क्षमस्व॥



हे देव! प्रथम मैं तीर्थयात्रा किया करता था कि आपका सानिध्य प्राप्त होगा। उसी क्रम में आत्म मंदिर से बाहर आपकी स्थापित मूर्ति का ध्यान-स्तुति-प्रार्थना भी किया। स्तुति करते समय मैं आपका ध्यान भी लगाता था। परन्तु जब आपका वास्तविक स्वरूप का आत्मरूप से (स्वानुभूतिरूप) से प्रत्यक्ष साक्षात् हो गया है, तो मुझे लगता है कि मैं अपराध ही करता रहा हूँ। जब आप व्यापक हैं, तो तीर्थों में जाना कर्म से आपकी व्यापकता को खण्डित किया। आप वाक् से परे परावाक्रूप ही हैं, तो आपकी नित्यस्वरूपपरावाक् स्वरूप को स्तुति करके खण्डित किया। अतः अपराध ही किया। ध्यान करने से आप का जो चेतना रूप से हृदय में प्रतिष्ठित रहना- वह भी खण्डित हुआ। अपराध ही हुआ। अतः अब बोधप्राप्त होने पर पूर्वकृत अपराध के प्रति क्षमा-याचना करता हूँ।

❁

सश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसना, सिंहासनाध्यासिनी,
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि नः।
यत्पादामलकोमलाकुकुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेलितः,
शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिबुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति॥ (भविष्यपु. उ. १)

सिंहासन पर विराजमान वाणी के देवी (सरस्वती) मुझे श्रेय (विद्या) को विस्तार देकर प्राप्त करावें। सरस्वती का क्या स्वरूप है? कहते हैं–जिसके चरणों में पवित्रता-कोमलता आदि विशिष्ट गुण है और पादनखों की पंक्ति की छटा से उद्वेलित होकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मरूप जिह्वा से शब्दब्रह्म रूपसुधा (अमृत) बिन्दुओं का स्राव हो रहा है, जिसे विद्वान्‌जन पान कर स्वच्छन्द भाव से ब्रह्मानन्दरूप क्रीड़ा का आश्रय लेकर खेला करते हैं। अर्थात् सरस्वती भगवती की जिह्वा हिरण्यगर्भब्रह्मा है। उस ब्रह्मरूप जिह्वा से अमृतमयशब्दब्रह्मरूप अमृतधारा का स्राव हो रहा है। जिसे ज्ञानी-बुधजनपान करते हैं और ब्रह्मरूप मैदान (क्रीड़ा स्थल) में स्वच्छन्दभाव से खेलते हैं। इन विशेषणों से विशिष्ट वाणी की देवता सरस्वती जो सिंहासन पर विराजती हैं, वे हमें नित्य श्रेय प्रदान करें।

❁

गणपतेर्मुख्या अष्टावताराः- मुद्‌गलपुराणे।

क्र.सं.	अवताराः	बाहनाः	प्रकृतयः
१.	वक्रतुण्डः	सिंहवाहनः	मत्सरासुरहन्ता।
२.	एकदन्तः	मूषकवाहनः	मदासुरनाशकः।
३.	महोदरः	मूषकवाहनः	ज्ञानदाता-मोहहन्ता।
४.	गजाननः	मूषकवाहनः	सांख्यसिद्धिः- लोभहन्ता।
५.	लम्बोदरः	मूषकवाहनः	क्रोधविनाशकः।
६.	विकटः	मयूरवाहनः	कामासुरहन्ता।
७.	विघ्नराजः	शेषवाहनः	ममतासुरनाशकः।
८.	धूम्रवर्णः	मूषकवाहनः	अहन्तासुरहा।

प्रथम-अवतार गणपति का वक्रतुण्ड है, उनका सिंह वाहन है और वे भक्तों के अन्तःकरण में राज्य करने वाले मत्सर रूप असुर का नाश करने वाले हैं। द्वितीय-गणपति एकदन्त हैं, मूषक वाहन वाले हैं और वे मन में राज्य करने वाले। मदरूप असुर को नाश करने वाले हैं। तृतीय गणपति-महोदर नाम से प्रसिद्ध मूषक वाहन हैं और वे साधक भक्तों के मन में विराजमान मो=ह को नष्ट कर उत्तम ज्ञान प्रदान करते हैं। चतुर्थ गजानन नामक गणपति का मूषक वाहन है और वे सद् असद् विवेचनी बुद्धि (सांख्य सिद्धि) प्रदान कर मन के लोभ को नाश करते हैं। पाँचवें लम्बोदर नामक गणपति के मूषक वाहन है और वे भक्तों के क्रोध को नाश करने वाले हैं। छठ विकट नामक गणपति के मयूर वाहन है और वे मन में स्थित काम (इच्छा) रूप असुर के संहारक हैं। सातवें विघ्नराज गणपति के शेष (नाग) वाहन है और वे भक्तों के हृदय में प्रविष्ट ममता रूप असुर का नाश करने वाले हैं और आठवें गणपति धूम्रवर्ण के मृषक वाहन है और वे भक्तों साधकों के मन में बैठे अहंकार रूप असुर के विनाशक हैं।

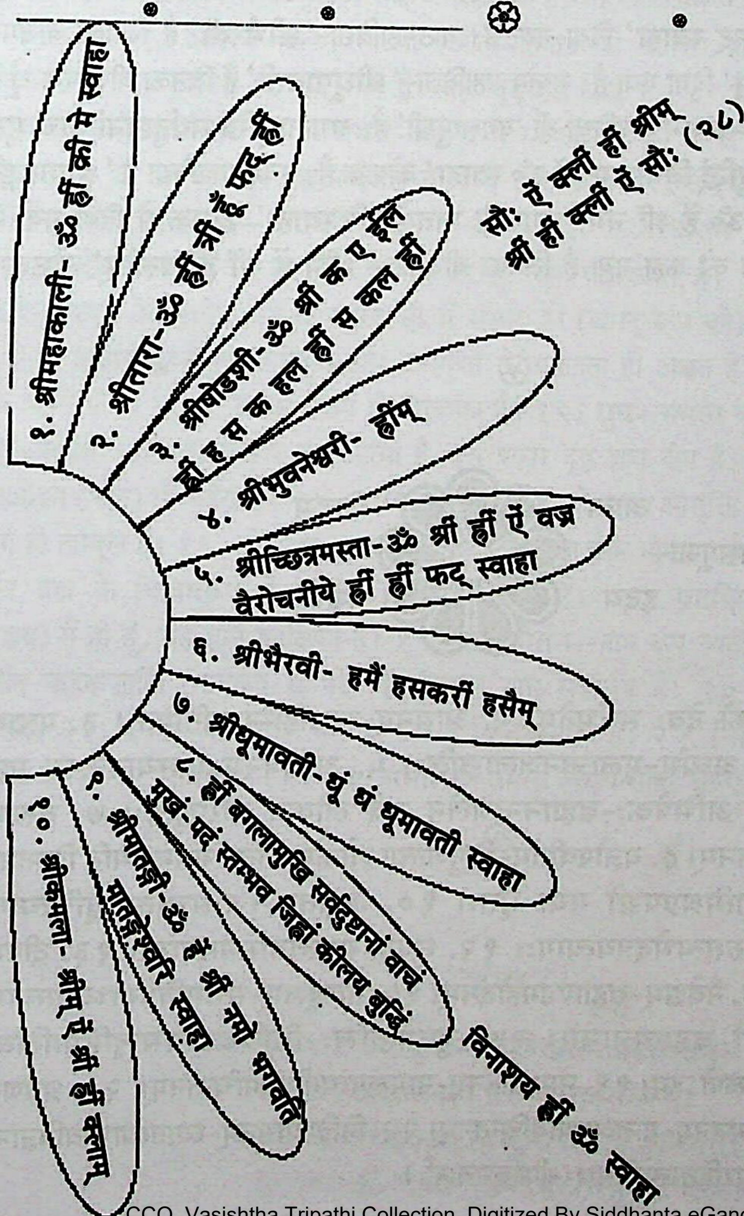
यात्रायाम्

यानमर्धफलं हन्ति, तदर्धं क्षत्रपादुके।
वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान्, सर्वं हन्ति प्रतिग्रहः॥

तीर्थयात्रा करने पर यानारूढ़ का आधा फल नष्ट हो जाता है। उसका आधा छत्र और पादुका (जूता-चप्पल) आदि के धारण करने वालों का नष्ट हो जाता है तथा उसका तीनभाग यात्रा में वाणिज्य (व्यापार) करने वालों का नष्ट होता है एवं प्रतिग्रह (दान) लेने वालों का सम्पूर्ण नष्ट हो जाता है। इसलिए तीर्थयात्रा करने वालों के लिए ये सब कृत्य त्याज्य हैं।

त्रिलोकी यस्य जठरे यस्य काष्ठाश्च वाहनाः।
यस्य श्वासश्च पवनः तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥

जिस देव (द्योतनशील-क्रीडनशील) के जठर (उदर) में समस्त त्रिलोकी का स्थान है और जिस दिशाएँ (दशो दिशाएँ) वाहन है और जिसके श्वास ही पवन रूप से बह रहा है, ऐसे परब्रह्म परमात्मा (देव) देव का मैं स्मरण-चिन्तन-मनन-उपासना करता हूँ।



दश महाविद्याओं में सर्वप्रथम '**श्रीमहाकाली**' आती हैं और इनका बीज मन्त्र कोष्ठक में-'**ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा**' दिया गया है। द्वितीय महाविद्या '**श्रीतारा**' द्वितीय कोष्ठ में है और '**श्रीतारा**' का बीज मन्त्र-'**ॐ ह्रीं त्रीं हूँ फट्**' दिया गया है। तृतीय में '**श्रीषोडशी**' आती है, जिसका बीज मन्त्र-'**ॐ श्रीं क ए ईल ह्रीं ह स क हल ह्रीं स कल ह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीम्**' तथा द्वितीय बीज (विकल्पबीज) '**श्री ह्रीं क्लीं ऐं सौः**' कोष्ठक में दिया गया है। चतुर्थ महाविद्या में-'**श्रीभुवनेश्वरी**' आती है। जिसका कोष्ठकगत बीज '**ह्रीम्**' दिया गया है। पंचम में-'**श्रीच्छिन्नमस्ता**' आती है, जिसका बीज-'**ॐ श्रीं ह्रीं ऐं वज्र वैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा**' दिया गया है। षष्ठमहाविद्या-'**श्रीभैरवी**' हैं जिनका बीजमन्त्र कोष्ठक में-'**हसैं हसकरीं हसैम्**' दिया गया है। सप्तम महाविद्या-'**श्रीधूमावती**' हैं जिनका बीज मन्त्र **धूं धूं धूमावती स्वाहा** कोष्ठगत है—अष्टम महाविधा श्री 'बगलामुखी' है, **बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा**' कोष्ठक है। नवम महाविद्या में '**श्रीमातङ्गी**' आती हैं जिनका बीज मन्त्र-'**ॐ हें श्रीं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि स्वाहा**' कोष्ठक में दिया गया है। दश में '**श्रीकमला**' महाविद्या को कहा गया है जिनका बीजमन्त्र-'**श्रीम् ऐं श्रीं ह्रीं क्लीम्**' कोष्ठकगत है।



१. आवाहनम्-एको देवः सर्वभूतेषु। २. आसनम्-स्वमहिम्नि प्रतिष्ठितः। ३. पाद्यम्-पुण्यपापरजःसंगो न। ४. अर्घ्यम्-मूलाज्ञानजलाञ्जलिः। ५. आचमनम्-एतस्यानन्दस्य मात्रां सर्वभूतान्युपजीवन्ति। ६. अभिषेकः-ब्रह्मानन्दजलेन सर्वे लोकाः परिप्लुताः। ७. वस्त्रम्-निरावरणचैतन्यप्रकाशचिन्तनम्। ८. यज्ञोपवीतम्-त्रिगुणात्मा लोकमालिका सूत्रमहमिति चिन्तनम्। ९. चन्दनम्-अनेकवासनामिश्रप्रपञ्चो मया धृतः। १०. अक्षताः-रजःसत्त्वतमोवृत्तित्यागः। ११. बिल्वपत्रम्-ईश्वरो गुरुरात्मभेदत्रयत्यागः। १२. धूपम्-समस्तवासनात्यागः। १३. दीपम्-ज्योतिर्मयात्मविज्ञानम्। १४. नैवेद्यम्-ब्रह्माण्डमहोदनम्। १५. ताम्बूलम्-सरागविषयाभ्यासत्यागः। १६. नीराजनम्-आत्मनो ब्रह्मताज्ञानम्। १७. पुष्पाञ्जलिः-विविधब्रह्मसन्दृष्टिमालिका। १८. प्रदक्षिणा-कूटस्थाचलरूपोऽहम्। १९. नामकीर्तनम्-नामरूपव्यतीतात्मचिन्तनम्। २०. श्रवणम्-श्रोतव्याभावचिन्तनम्। २१. मननम्-मन्तव्याभावचिन्तनम्। २२. निदिध्यासनम्-ध्यातव्याभावविज्ञानम्। २३. समाधिः-समस्तविक्षेपरहितात्मनिष्ठा। (श्रीशङ्कराचार्याः)

सगुण पूजा आत्मा (अन्तःकरण) के निर्मलीकरण के लिए होता है, जब तक अर्चक को बुद्धिभेद है, तब तक संसार बना रहता है अर्थात् भेद (भिन्न-भिन्न विषय की उपस्थिति) का विषय भेद बना रहता है। अभेद ज्ञान हो जाने पर श्रुतिप्रतिपादित निरञ्जन ब्रह्मज्ञानोदय हो जाता है, ऐसे अर्चक की अर्चना निर्गुण मानसपूजा होती है, उस साधक की पूजा हृदयपंकजस्थित आत्मलिंग स्थान में ही सम्पन्न होती रहती है,जो इस प्रकार है–

१. **आवाहन**–सभी भूतों में एक ही ब्रह्म देव हैं, यह आवाहन का मन्त्र है। यहाँ केवल ज्ञानवृत्ति ही करण है। २. **आसन**–अपने महिमा (आत्ममहिमा) की प्रतिष्ठा ही आसन है। ३.**पाद्य**–पुण्य और पाप के साथ आत्मा का सङ्ग नहीं है। यही दृढ़बुद्धि पाद्य है। ४. **अर्घ्य**–मूलाज्ञान की जलाञ्जलि अर्थात् त्याग ही अर्घ्य है। ५. **आचमन**-आनन्द में या आनन्द की प्राप्ति से ही सभी भूत जीते हैं, यह आचमन है। ६. **अभिषेक**–ब्रह्मानन्दजल के द्वारा सभी जीव आप्लुत (भींग कर गीला) है, यही बुद्धि अभिषेक है। ७. **वस्त्र**–निरावरण चैतन्य के प्रकाश का चिन्तन वस्त्र है। ८.**यज्ञोपवीत**–त्रिगुणात्मालोकरूपमाला का सूत्र मैं (आत्मा) ही हूँ, यह यज्ञोपवीत है। ९.**चन्दन**–अनेक वासना के मिश्रभाव प्रपञ्च के अधीन होने के कारण ही मैं संसार को (जगत् रूप को) धारण किया है, यही चन्दन है। १०. **अक्षत**–रजोगुण-सतोगुण और तमोगुणों से अतीतता ही अक्षत है। ११. **बिल्वपत्र**–ईश्वर-गुरु और अपने में जो भेद है, उसका त्याग ही बिल्वपत्र है। १२. **धूप**–समस्त वासना का त्याग धूप है। १३. **दीप**–ज्योतिः (प्रकाश) स्वरूप यह आत्मा है, इस प्रकार दृढ़ ज्ञान दीप है। १४. **नैवेद्य**–ब्रह्माण्डस्वरूप महाओदन (भात) ही नैवेद्य है। १५. **ताम्बूल**–विषयों में जो राग (आसक्ति) का अभ्यास बना है, उसका त्याग ही ताम्बूल है। १६. **नीराजन**–आत्मा ही ब्रह्म है, ऐसा ज्ञान नीराजन है। १७. **पुष्पाञ्जलि**–जगत् में सर्वत्र ब्रह्म के विविधरूप में प्राकट्य मालापुष्पाञ्जलि है। १८. **प्रदक्षिणा**–कूटस्थ अचल स्वरूप (निश्चय) मैं ही हूँ, यह ज्ञान प्रदक्षिणा है। १९. **नामकीर्तन**–नाम रूप व्यतीत (नाम-रूप से अनवच्छिन्न) अर्थात् नामरूपातीत (नामरूप से परे) का चिन्तन नाम संकीर्तन है। २०. **श्रवण**–श्रवण -पदार्थ का चिन्तन। २१. **मनन**–मननशील धर्म का अभाव चिन्तन मनन है। २२. **निदिध्यासन**–ध्यातव्य कर्म का अभाव का चिन्तन निदिध्यासन है। २३. **समाधि**–समस्त विक्षेप रहित आत्मनिष्ठा समाधि है।



"ह्रीम्"

अशेषतो जगत्कृत्स्नं हृल्लेखात्मकमीरितम्।
व्योम्नाप्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना।
मत्योर्विमर्श ईकारो बिन्दुना तन्निफालनम्।। (श्रीवि.अ.श्री.त.रा.)
ह्रीं क्लीं ह्रीं जाप्य तुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते।

मातर्मातर्नमस्ते दह-दह जडतां देहि बुद्धिप्रशस्ताम्॥
विद्ये वेदान्तवेद्ये परिणतपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे।
मार्गातीतस्वरूपे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे॥
(श्री ब्रह्मणा विर. सरस्व. स्तो.-७)

इस सम्पूर्ण जगत् को ही हृल्लेखा कहा गया है। जो हृदयाकाश से प्रकाशित और अग्नि से ग्रसित है। इन दोनों के विमर्श (निश्चर्य-विचार) को ईकार कहा गया है, जो बिन्दु से विस्तार प्राप्त हुआ है, वही 'ह्रीम्' बीज है। (श्री.वि.अ.श्री.त.रा.)

ह्रीं क्लीं ह्रीं इस बीजमन्त्र को जप करने वालों पर प्रसन्न रहने वाली! हिम (बर्फ) के समान धवलशोभावाला मुकुट धारण करने वाली! वीणा दण्ड पर व्यस्त (चञ्चल) हाथ वाली! हे मातः! हे मातः! मेरी जड़ता को दहनकरो–दहन करो, प्रशस्त (निर्मल) बुद्धि को प्रदान करो। हे विद्यास्वरूपे! हे वेदान्त विद्या से जानने योग्य! शरणागत हो स्तुति करने वालों के लिए मुक्तिमार्गस्वरूपे! मोक्ष देने वाली! प्रस्थानत्रय आदि मार्गातीतस्वरूपे! हे स्वच्छ (धवल) हार को धारण करनेवाली मातः! शारदे तुम मेरे लिए वरदा होओ।

• •  • •

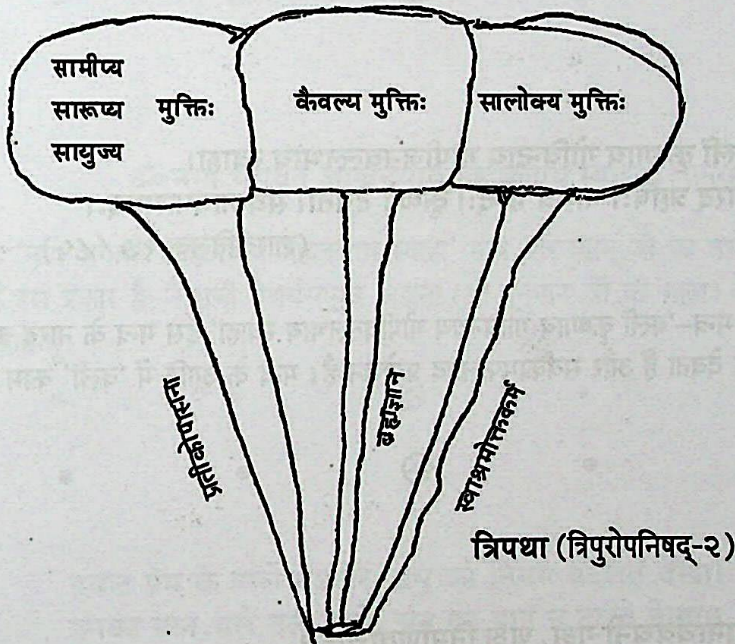
सम्यगालोचनात् सत्याद् वासनाप्रविलीयते।
वासना विलये चेतः शममायाति दीपवत्। (मु.उ.)

असङ्गव्यवहारत्वाद् भवभावनवर्जनात्।
शरीरनाशदर्शित्वाद् वासना न प्रवर्तते॥ (मु.उ.)

अध्यात्मविद्याधिगमः,
साधुसंगतिः
वासना संपरित्यागः
प्राणस्पन्दनिरोधः
} एताः पुष्टा युक्तयः चित्तजये।

सत्त्व गुण के सम्यगालोचन से वासना का लय (नाश) सम्भव होता है। वासना के विलय हो जाने पर दीपक के समान (वात विघ्नरहित) चेतना (ज्ञान) स्फुरित होने लगता है। सङ्गरहित व्यवहार से और जगत् भाव के वर्जन के द्वारा यह शरीर नाशवान् है, ऐसा निश्चय करके चित्त को निर्मल ज्ञान में स्थिर करने पर वासना का वर्धन नहीं होता और वह लय हो जाता है।

चित्त (अन्तःकरण-मन) पर विजय प्राप्त करने के लिये ये चार साधन (उपकरण) हैं–१. अध्यात्मविद्या 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'नेह नानास्ति किञ्चन' आदि द्वारा लक्षित बोध का प्राप्त होना। २. साधुओं की संगति। ३. वासना का संपरित्याग और ४. प्राणों के स्पन्दन (स्फुरण) का निरोध करना अर्थात् ध्येय में लय करना।



त्रिपथा (त्रिपुरोपनिषद्-२)

सर्वार्थशक्तियुक्तस्य, देवदेवस्य चक्रिणः।
यद्वाभिरोचते नाम, तत्सर्वार्थेषु योजयेत्।। (वीरमित्रोदयभक्ति)

मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये तीन मार्ग हैं–१. प्रतीकोपासना, २. औपनिषदिक ब्रह्मज्ञान, ३. स्वाश्रमोक्त कर्म। इसीलिये इसे त्रिपथा भी कहते हैं। प्रतीकोपासना से अपने इष्ट देवता की अनन्य भक्ति द्वारा–(क) सामीप्य, (ख) सारूप्य और (ग) सायुज्य, यह तीन प्रकार की मुक्ति बतलायी गयी है। सामीप्य मुक्ति इष्ट देवता की समीपता पार्षदरूप में प्राप्त होती है। सारूप्यमुक्ति में उपास्य के स्वरूप की प्राप्ति होती है और सायुज्य में उपास्य देवता के शरीर (विग्रह) की प्राप्ति होती है। औपनिदिक ब्रह्मज्ञान द्वारा कैवल्यमुक्ति (केवल) मुक्ति होती है। इसमें उपासक को केवल-निर्गुण-अद्वितीय (जीवात्मा परमात्मा का ऐक्य) स्वरूप में स्वयं की स्थिति होती है। ब्रह्म और जीवात्मा में पारमार्थिक अभेद (एकता) ज्ञानरूप

कैवल्य (केवलभाव) की प्राप्ति हो जाती है। सालोक्य मुक्ति शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मानुष्ठान द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है और उपासक उपास्य देवता के लोक को प्राप्त करता है, जैसे वैकुण्ठ लोक, सूर्यलोक, सत्यलोक इत्यादि। उपासक तत्तत् देवता के कर्मोपासना से तत्तत् लोक को प्राप्त करता है।

सर्वशक्तिसम्पन्न सभी प्रकार की मनोकामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ देवों के भी देव भगवान् चक्रधर के किसी भी (अभिरुचि के अनुसार) नाम को आधार बनाकर किसी कार्य का आरम्भ करने से वे सफलकारी होते हैं।



क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
नारद ऋषिः। गायत्रं छन्दः। कृष्णो देवता। सर्वकामफलप्रदः।
(शारदातिलक १७/८५)

श्रीकृष्ण के मन्त्र–'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीवल्लभाय स्वाहा' इस मन्त्र के नारद ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीकृष्ण देवता हैं और सर्वकामफलप्रद प्रयोजन है। मन्त्र के आदि में 'क्लीं' काम बीज है।



ज्ञानार्थवचनो गश्च, णश्च निर्माणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म, गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

एकशब्दः प्रधानार्थः दन्तश्च बलवाचकः।
बलं प्रधानं सर्वस्मात्, एकदन्तं प्रणमाम्यहम्॥

दीनार्थवाचको हेश्च, अम्बः पालकवाचकः।
दीनानां पालकं देवं, हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥

विपत्तिवाचको विघ्नः नायकः खण्डनार्थकः।
विघ्नखण्डनकं देवं नामामि विघ्नविनायकम्॥ *

'ग' वर्ण (अक्षर) ज्ञान अर्थ का संकेताक्षर है और 'ण' वर्ण निर्माण (मोक्ष) वाचक संकेताक्षर है और दोनों ज्ञान और मोक्ष के जो ईश परब्रह्म गणेश हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ।

एकदन्त नाम जो गणेश जी का है, वहाँ 'एक' शब्द प्रधान (श्रेष्ठ) वाचक और 'दन्त' शब्द बल का वाचक है और श्रीगणेश जी का बल सभी देवों असुरों-नाग-किन्नर-मानव आदि में श्रेष्ठ है, इसलिए एकदन्त कहलाने वाले श्रीगणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

दीन अर्थ का वाचक 'हे' है और 'अम्ब' पालकवाचक है। दीनों के पालक 'हेरम्ब' नामक गणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

'विघ्न' शब्द विपत्ति का वाचक है और नायक शब्द विपत्ति को खण्डन (नाश) करने के वाचक है, अतः विघ्न के विनाशक विघ्नविनायक नामक श्रीगणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ।



ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।। (रामरहस्य)

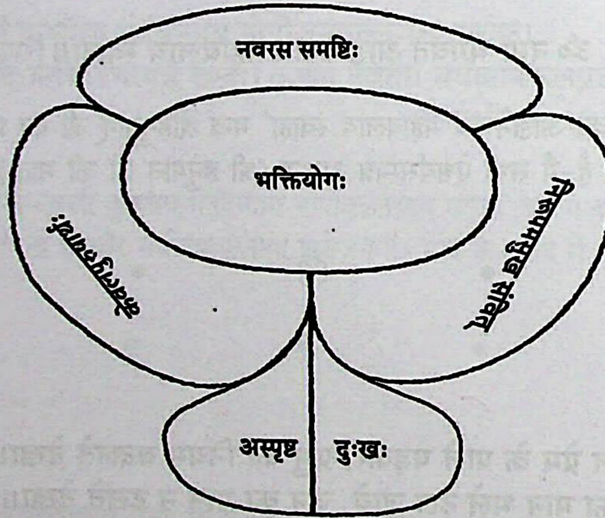
यह 'नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा' मन्त्र श्रीहनुमान् जी का प्रभावी मन्त्र है। इसका सामान्य अर्थ इस प्रकार है—मैं सभी ऐश्वर्यसम्पन्न अञ्जना (श्री हनुमान जी की माता) के पुत्र महाबलशाली को प्रणाम करता हूँ।



प्रबल प्रेम के पाले पड़कर, प्रभु को नियम बदलते देखा।
उनका मान भले टल जाये, जन का मान न टलते देखा।।
जिनकी केवल कृपा दृष्टि से, सकल सृष्टि को पलते देखा।
उनको गोकुल के गोरस पर सौ-सौ बार मचलते देखा।
जिनका चरणकमल कमला के, करतल से न निकलते देखा।
उनको तृण करील काँटों में, कंटक पथ पर चलते देखा।।
जिनका ध्यान विरंचि शम्भु सनकादिक से न सँभलते देखा।
उनको ग्वाल सखा मण्डल में, लेकर गेंद उछलते देखा।।
जिनकी बंक भृकुटि के भय से, सागर सप्त उबलते देखा।
उनको ही यसुदा के भय से, अश्रुबिन्दु दृग छलकते देखा।।



तेरा मन दरपन कहलाये।
भले बुरे सारे कर्मों को देखे और दिखाये।।तेरा.।।
मन ही देवता मन ही ईश्वर मन से बड़ा न कोय।
मन उजियारा कर ले प्राणी, जग उजियारा होय।।
इस उजले दर्पण पर प्राणी, धूल न जमने पाये।।तेरा.।।
सुख की कलियाँ दुःख के काँटे मन सबका आधार।
मन से कोई बात छिपे ना, मन के नैन हजार।
जग से चाहे भाग ले कोई, मन से भाग ने पाये।।तेरा.।।



(दुःखासंभिन्नसुखं हि परमपुरुषार्थः) (टी.)

कथादेर्नित्यसन्मानं, कुर्वन् देहादिभिर्मुदा।
स्थिरासनेन तत्पानं, चेत्तच्छ्रवणमुच्यते।।१।।

हृदाकाशेन सम्पश्यन्, जन्मकर्माणि वै मम।।
प्रीत्योच्चारणं तेषां, एतत्कीर्तनमुच्यते।।२।।

व्यापकं देवि मां दृष्ट्वा, नित्यं सर्वत्र सर्वदा।
निर्भयं सदा लोके, स्मरणं तदुदाहृतम्।।३।।

अरुणोदयमारभ्य, सेवाकालोचिताहृदा।
वाक्पाणिपादैस्तस्यार्चा, सेवनं तदुदाहृतम्॥४॥
सदा भूत्यानुकूल्येन, विधिना मे परात्मने।
अर्पणं षोडशानां वै, पाद्यादीनां तदर्चनम्॥५॥
मन्त्रोच्चारणध्यानाभ्यां, मनसा वचसा क्रमात्।
यदष्टाङ्गेन भूस्पर्शं, तद्वै वन्दनमुच्यते॥६॥
मङ्गलामङ्गलं यद्यत्, करोतीहेश्वरो हि मे।
सर्वं तन्मङ्गलायेति, विश्वासः सख्यलक्षणम्॥७॥
कृत्वा देहादिकं तस्य, प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम्।
निर्वाहाय च शून्यत्वं, यत्तदात्मसमर्पणम्॥८॥
सदा सेव्यानुकूल्येन, सेवनं तद्धि गोगणैः।
हृदयामृतभोगेन, प्रियं दास्यमुदाहृतम्॥९॥
(शिवपु.रू. सती. २३-२५-३३)

भक्ति नवरस समष्टि है। नवरस जो भक्तिसाहित्य में कहा गया है, उसका समष्टिरूप भक्ति है। यह प्रथम लक्षण कहा। निरुपम सुख संवित् रूप ही भक्ति है, यह द्वितीय लक्षण से कहा गया। केवल ज्ञान रूप जो परम पुरुषार्थ है, वही भक्ति है, यह तृतीय लक्षण से कहा गया और सभी प्रकार के दुःखों के साथ अपनी आत्मा को अस्पृष्ट (लेपरहित) रखना चौथी भक्ति का लक्षण कहा गया। भक्तिरसायन के टीकाकार का मत है कि दुःख से असंभिन्न जो सुखानुभूति है, वही भक्तिमार्ग का पर पुरुषार्थ है। (भक्ति रसायन)

अब नवधा भक्ति रस को कहा जा रहा है—हे देवि! जो सेवक सेव्य (परमात्मा शिव) की कथा में सन्मान रखता हुआ मन-कर्म-वचन से श्रद्धा रखकर रोमाञ्च भाव होकर स्थिर आसनस्थ होकर उस कथा का पान (श्रवण) करता है, उसे श्रवण नामक प्रथमा भक्ति कहते हैं।।१।।

अपने हृदयाकाश में ईश्वर (मेरे शिव) का जन्म-कर्म से सम्बन्धित कथा प्रीतिपूर्वक संकीर्तन (उच्चारण) करते हैं, तो उसे कीर्तन नामक द्वितीया भक्ति कहते हैं।।२।।

हे देवि! (उमा!) जब सेवक मेरे परमात्मा को सदा-सर्वदा एक रस व्यापक ब्रह्म का विनिश्चय करके सबमें उपस्थित जानता हुआ और मुझको ही सबका रक्षक समझता हुआ निर्भय होकर लोक निर्वहन करता है, उसे स्मरण नामक तृतीया भक्ति कहा गया है।।३।।

अरुणोदय काल से सेवा का आरम्भ कर उस-उस उचित काल में उस-उस उचित सेवा को हृदय से श्रद्धा-भक्ति से वाणी-पाणि (हाथ) (पैर) के द्वारा जहाँ-जिस सेवा में उपुयक्त हो, सेवा-अर्चा-पूजनादि

सम्पन्न करता है, उसे चतुर्थी सेवा नामक भक्ति कही जाती है।।४।।

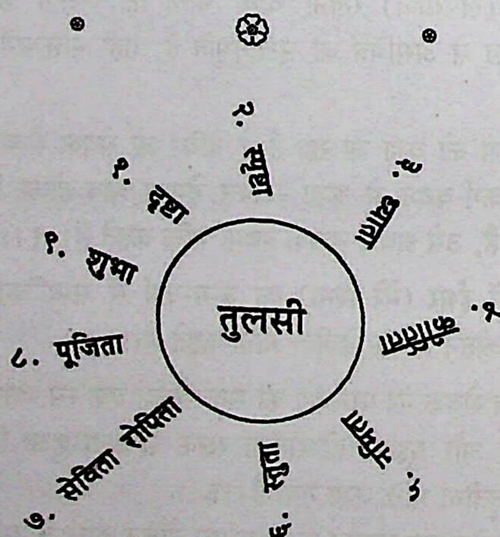
जब सेवक भक्त मेरे विभूति (ऐश्वर्य) के अनुकूल वेद और शास्त्रविधिपूर्वक पाद्यादि षोडशोपचार से पूजा करता है, वह पञ्चमी अर्चन नामक भक्ति कहलाती है।।५।।

मनसा-वाचा-कर्मणा के क्रम से मन्त्रोचारपूर्वक पूजन कर जब साष्टाङ्ग (आठों अंग) से भूमि को स्पर्श कर दण्डवत् करता है, तो वह षष्ठी वन्दन नामक भक्ति है, ऐसा जानना चाहिए।।६।।

हे देवि! जब भक्त का अनन्यभाव से यह विचार सुदृढ़ हो जाय कि मङ्गल-अमङ्गल जो भी उपस्थित हो रहा है, वह प्रभु की इच्छा से हो रहा है और ईश्वर जो करते हैं ,वह मंगल ही है, इस प्रकार दृढ़ विश्वासपूर्वक ईश्वरपरायणता पूर्वक जीवननिर्वाह को सातवीं सख्य भक्ति कही जाती है।।७।।

उस सेव्य ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्ति के उद्देश्य से देहादि सेवा (स्नानादिक) करके भोज्य पदार्थ को अर्पण करता हुआ वह सेवक शून्यभाव (निरहंकारभाव) से उस भोग को प्रसाद (कृपा) समझ कर देहनिर्वाहार्थ मात्र ग्रहण करे। उसमें अमृत भाव रखकर सेवन करे, तो वह आठवीं (अष्टमी) समर्पण भक्ति नाम से जानी जाती है।।८।।

निरन्तर सेव्य (परमात्मा) के अनुकूल आचारपूर्वक उनके श्रीविग्रहादिको को अपने इन्द्रियों द्वारा ग्रहण कर पुनः अपने हृदयाकाश में स्थापित करे और अमृत रूप परमात्मा का भोग (अनुभव) करता हुआ, उनकी प्रियता इसमें है इससे यह प्रिय है यह भाव उत्थित कर स्थित रहे (जीव-परमात्म्यैक्य भाव ही अमृत भाव है और यही जीवात्मा और परमात्मा की प्रियता है)। यही नौवीं (नवमी) दास्य भक्ति है।।९।। शिव पु.रु.सती. २३/२५/३३)



तुलसी के दर्शन-स्पर्शन-ध्यान-कीर्तन-नमस्कार स्तुति रोपन और सेवन पूजन-शुभा रूपा है, इस

भावना से भगवान् नारायण की कदाचित् नवधा भक्ति हो जाती है और भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। भौतिक दृष्टि से भी यह महान् औषधि गुणसम्पन्न है। इसीलिए हमारे पूर्वज ऋषिगण उसके महत्त्व को समझकर उसे प्रत्येक गृह में रोपित करने, सेवा करने का निर्देश देते हैं। यह दुःखद है कि हम अज्ञानवश तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रति अन्धविश्वास के कारण सर्वसुलभ इस देव वनस्पति के प्रति उपेक्षित भाववर्धन करते जा रहे हैं। जबकि पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इसके महत्त्व को समझ चुके हैं। अतः आधिदैविक-आधिभौतिक-आध्यात्मिक महत्त्व के इस देव-वनस्पति को लगावें और उनकी सेवा अर्चना नित्य रूप से करें।



सिक्ताप्यश्रुजलोत्करेण भगवद्वार्तानदीजन्मना,
तिष्ठत्येव भवाग्निहेतिरिति से धीमन्नलं चिन्तया।
हृद्व्योमन्यमृतस्पृहाहर कृपावृष्टेः स्फुटं लक्ष्यते,
नेष्टिः पृथुरोमताण्डवभराकृष्णाम्बुदस्योद्भवः॥
(भक्ति र.सि. २/१/२७८)

भगवद्वार्तारूपी नदी के उद्भव से तथा अश्रुजल की धारा से संसार रूपी अग्नि सिञ्चित होने पर भी अभी तक यह नष्ट न होकर विद्यमान ही है। अतः हे धैर्यशालिन् महात्मन्! इस विषय में निवृत्ति की चिन्ता करना व्यर्थ है। हृदयरूपी आकाश में जब अमृत रूपी जल की प्राप्ति की उत्कट इच्छा होगी, तब उस इच्छा से उत्पन्न जो भगवत्कृपा रूपी वृष्टि उससे तथा भगवद् मिलन हेतु विह्वलतारूपी ताण्डव से अतिसन्निकट में उत्पन्न कृष्णरूपी मेध का प्राकट्य अत्यन्त स्फुटरूप से होता है, जो (कृष्णरूपी मेघ) संसार सर्जक अग्नि को पूर्ण रूपेण शान्त कर देता है। (भक्ति र.सि. २/१/२७८)



नाम चिन्तामणिः कृष्णः चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥ (पाद्मे)

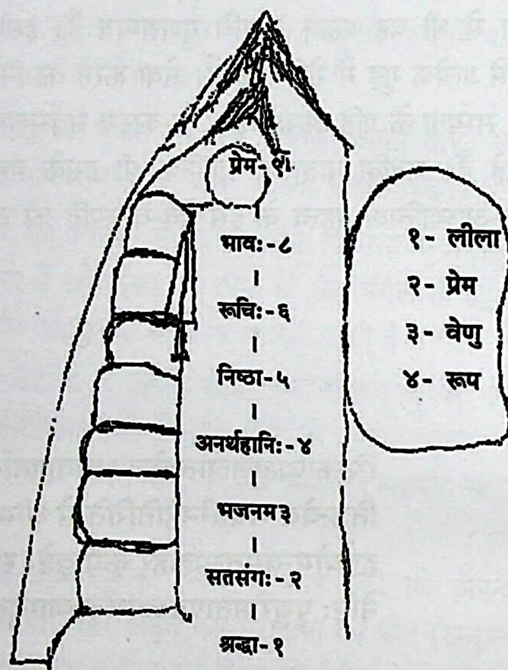
श्रीकृष्ण नामक चिन्तामणि नाम रत्न है। वह चैतन्यरस का साक्षात् विग्रह (विशेषज्ञान अथवा शरीर) है। वह पूर्णब्रह्म-नित्य स्वरूप और मुक्तस्वभाव स्वरूप है, क्योंकि नाम और नामी का अभेद होने के कारण वह कृष्ण ऐसा है।



प्रेम्णः प्रथमावस्था भाव
स्वयमास्वदस्वरूपा रति : } हृदेकस्पृहत्व

सत्त्वं तत्त्वं परतत्त्वञ्च,
तत्त्वत्रयमहं किल।
त्रितत्त्वस्वरूणी सापि,
राधा मम वल्लभा॥
(बृहद्गौतमीये)

प्रसादआन्तरो-हार्दः।
सङ्गमसंपृक्तस्वान्तो,
ममत्वातिशयाङ्कितः।
भाव स एव सान्द्रात्मा,
बुधैः प्रेमा निगद्यते॥



कृष्णरतिः स्थायीभावः-भक्तिरसः॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु १/४)
रसे सारः-चमत्कारः। (अलंकारकौस्तुभे)

प्रेम की प्रथमा अवस्था का नाम भाव है। अर्थात् भावोत्पत्ति होने पर प्रेम का उदय होता है। रति स्वात्मना आस्वाद्य स्वरूपा होती है। उन दोनों में एकता ही स्पृहा है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते है मेरा (ब्रह्म का) तीन तत्त्व (सार) है। सत्त्व-तत्त्व और परतत्त्व। यही तीनों तत्त्व स्वरूपा राधा है। इसीलिए वह हमारी वल्लभा (प्रिया) है। (बृहद् गौतमीये)

प्रसाद अन्तःकरण (हृदय) में होने वाली प्रसन्नता अर्थात् आह्लादात्मकैकमात्र वृत्तिविशेष) को कहते हैं।

ममता (अपनापन) के अतिशय से परिपूर्ण अपनी आत्मा (स्वान्तःकरण) में संस्पृक्त करके रखना संगम कहलाता है। वह संगम भावरूप होता है और उस भाव से आत्मा (हृदय) को सान्द्र (अभिसिञ्चित) करके गीलाकर-भींगा करके रखना ही प्रेमा नाम की भक्ति है, ऐसा बुधजन कहते हैं।

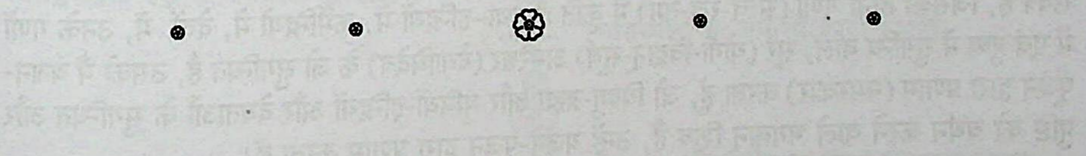
उपुर्यक्त प्रतीक चित्र प्रेमाभक्ति के नौ सोपान कहे गये हैं। प्रथम-श्रद्धा, द्वि.सत्संग तृ.भजन, चतु.-अनर्थहानि, पंच.-निष्ठा, षष्ठमरुचि, सप्त.-आसक्ति, अष्टा.-भाव और नवम प्रेम हैं। सोपान का रूपक उपास्य के प्रति होनी चाहिए। यह क्रमशः जन्य-जनक भाव अर्थ को भी द्योतित करता है यथा-उपास्य के प्रति प्रेम होने पर उससे-भाव, भाव से उपास्य के प्रति आसक्ति इत्यादि। अथवा श्रद्धा से सत्संग से भजन

इत्यादि उभयरूप से जन्य-जनक भाव का सम्बन्ध बन सकता है। श्रीकृष्ण की लीला, प्रेम, वेणु और रूप ये चारों माधुर्य स्थानी हैं। कृष्ण के प्रति रति यहाँ स्थायी भाव है। रस के सार (निचोड़) को चमत्कार कहते हैं। (भक्तिरसामृत सि. २/१, अलंकार कौ. १/४)



अस्थूलश्चानणुश्चैव, स्थूलोऽणुश्चैव सर्वतः।
अवर्णः सर्वतः प्रोक्तः, श्यामो रक्तान्तलोचनः॥
ऐश्वर्ययोगाद्भगवान्, विरुद्धार्थोऽभिधीयते। (कौर्मे)

परमात्मा न तो स्थूल हैं न ही अणु परिमाण हैं, परन्तु उनके अणुत्व और स्थूलत्व ऐश्वर्य के संयोग से है, इसलिए विरुद्धधर्मी प्रतीत होते हैं। वस्तुतस्तु वे सकल विशेष-विशेष उपाधिशून्य केवल स्वरूप ही हैं। (अस्थूलमनणु अस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायम्' (बृ.उ. ३/८/८) वह अस्थूल, अनणु-अहस्व-अदीर्घ-अलोहित-अस्नेह अच्छाय (छाया का अभाव स्वरूप) है। आदि अनेक श्रुतिवचन विचारित तथ्य है कि परमात्मा का स्वरूप लक्षण केवल रूप है, जिसका शब्दों से निर्वचन कठिन है, अतः इतना ही कहा जा सकता है कि वह निषेध-षेध वाच्य नहीं है। तदुभय स्वरूप भी नहीं है, केवल-निष्कल-निर्गुण-निरुपाधि स्वरूप ही उनका स्वरूप लक्षण कहा जा सकता है। इस प्रकार के श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अंग से कृष्ण (काले) हैं। केवल आँख मात्र रक्तकमल के समान लाल है, परन्तु लोकविरुद्ध (काला रंग के कारण लोक द्वारा अग्राह्य) होने पर भी अपने ऐश्वर्य के कारण सुन्दर हैं। (कूर्मपुराण)



महामृत्युञ्जयमन्त्रः (शिवपु. रु.सती. 18)
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, त्रैलोक्यपितरं प्रभुम्।
त्रिमण्डलस्य पितरं, त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥
त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च, त्रिधाभूतस्य सर्वतः।
त्रिदिवस्य त्रिबाहोश्च,
त्रिदेवस्य महादेवः, सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥
सर्वभूतेषु सर्वत्र, त्रिगुणेषु कृती यथा।
इन्द्रियेषु तथान्येषु देवेषु च गुणेषु च॥

पुष्पे सुगन्धिवत्सूरः सुगन्धिरमरेश्वरः।
विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने।।
इन्द्रियश्चैव देवानां, तस्माद्वै पुष्टिवर्धनम्।
तं देवममृतं रुद्रं, कर्मणा तपसापि वा।।
स्वाध्यायेन च योगेन, ध्यानेन च प्रजापते!
सत्येनान्येन च सूक्ष्मानां, मृत्युपाशाद्भवः स्वयम्।।
बन्धमोक्षकरो यस्माद्, उर्वारुकमिव प्रभुः।
मृतसंजीवनीमन्त्रो, मम सर्वोत्तमः स्मृतः।।

यहाँ महामृत्युञ्जय मन्त्र का कथन किया गया है। इसके वक्ता भगवान् शिव हैं। श्लोकों के मध्य से हे महामुने! का अध्याहार करना चाहिए। अब अर्थ का कथन करते हैं–मूल मन्त्र यह है– ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्। अब मन्त्रगत प्रत्येक पद के विशेष अर्थ (व्यापक अर्थ) को जानने के लिए मूल श्लोक की ओर चलें–हम त्र्यम्बक भगवान् शिव को यजन-पूजन द्वारा प्रसन्न करने के कर्म (प्रणाम) करता हूँ, जो तीनों लोकों के पिता हैं, वे प्रभु (सामर्थ्य सम्पन्न) हैं, जो तीन मण्डल (भूर्भुवःस्वः) के पिता, त्रिगुण (सत्त्व-रज-तम) के पिता और महेश्वर जो तीनों तत्त्व, तीनों वह्नि, त्रिधाभूत (स्वेदज-अण्डज-जरायुज), त्रिदिव (स्वर्ग), त्रिबाहू के पिता की प्रसन्नता के लिए (ऊपर कही गयी क्रिया का पुनः अभ्याहार कर) यजन-पूजन-प्रणाम करता हूँ।

जो त्रिदेवों में महान् देव हैं और जो सुगन्धित पुष्टि का वर्धन करने वाले हैं तथा सभी भूतों में सर्वत्र हैं, जिसकी तीनों गुणों (सत्त्व-रज-तम) में कृति है यथा–इन्द्रियों में, कर्मेन्द्रियों में, देवों में, उनके गणों में एवं पुष्प में सुगन्धि वाले, सूर (योगी-विद्वान्-सूर्य) अमरेश्वर (देवाधिदेव) के जो सुगन्धित है, उसको मैं यजन-पूजन द्वारा प्रणाम (नमस्कार) करता हूँ, जो विष्णु-ब्रह्मा और मुनियों-इन्द्रियों और देवताओं के सुगन्धित और पुष्टि को वर्धन करने वाले भगवान् शिव हैं, उन्हें यजन-पूजन द्वारा प्रणाम करता हूँ।

उस अमृत स्वरूप देव रुद्र कर्मणा-तपसा (कर्म और तप से) स्वाध्याय से, योग से ध्यान से (हे मुने प्रजापते!) सत्य से तथा अन्य जो भी उपाय हो, उससे हमें मृत्युरूप पाश (बन्ध) से मोक्ष प्रदान करने वाले होओ। जैसे उर्वा के रुक (छोटी ककड़ी-गुर्मी-के डण्ढल) के समान सुलभतापूर्वक बन्धन से छुड़ाओ) क्योंकि आप वैसा करने में समर्थ हैं। भगवान् शिव कहते हैं कि यह मृतसंजीवनी मन्त्र सभी मन्त्रों में उत्तम होने के कारण सर्वोत्तम है। (शिव पु.रु.सती. १८)

॥ नवचक्रविवेकः ॥

सर्वेच्छासिद्धिः

सर्वेच्छासिद्धिः

आकाचक्रं तां पश्यन् ध्यायेत् पूर्णगिरिपीठम्	९	तत्र षोडशदलपद्ममूर्धमुख, तन्मध्यकर्णिका-त्रिकूटाकारं तन्मध्ये ऊर्ध्वशक्तिः।
आज्ञाचक्रं	८	ब्रह्मरन्ध्रं निर्माणचक्रं तत्र धूम्रशिखाकारं ध्यायेत्।
भ्रूचक्रमङ्गुष्ठमात्रं	७	तत्र ज्ञाननेत्रं दीपशिखाकारं ध्यायेत्। वाक्सिद्धिदं भवति।
तालुचक्रं, तत्रामृतप्रवाहः घण्टिकामूलं चक्ररन्ध्रौ	६	राजदन्तावलम्बिनीविवरं द्वादशारं, तत्र शून्यं ध्यायेत्, चित्तलयो भवेत्।
कण्ठचक्रं चतुरङ्गुलं तत्र वामे इडा चन्द्रनाडी	५	दक्षिणे पिङ्गला सूर्यनाडी, मध्ये सुषुम्नां श्वेतवर्णां ध्यायेत्।
हृदयचक्रं अष्टदलं अधोमुखम्।	४	तन्मध्ये ज्योतिर्लिङ्गाकारं ध्यायेत्, सैव हंसकला, सर्वप्रिया।
नाभिचक्रम् पञ्चावर्तं तन्मध्ये कुण्डलिनी	३	बालार्ककोटिप्रभां ध्यायेत्। सामर्थ्यशक्तिः सर्वसिद्धिप्रदो भवति।
स्वाधिष्ठानम्-षड्दलम् तत्रैवोड्यान पीठम्	२	तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत्। जगदाकर्षणसिद्धिप्रदम्।
आधारे ब्रह्मचक्रम् त्रिरावृत्तं भगमण्डलाकारं	१	तत्र मूलकन्दे शक्तिं पावकाकारं ध्यायेत् तत्रैव कामपीठम्। सर्वकामप्रदं भवति।

(सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्)

१. ब्रह्मचक्र– इसे मूलाधारचक्र भी कहते हैं। यहाँ उसी को ब्रह्म संज्ञा दी गयी है। यह लिंग स्थान के नीचे और गुदा स्थान से ऊपर दो-दो अङ्गुलि के अन्तराल स्थान पर शरीर में है। यह त्रिवृत्ताकार कमलदलसदृश है। अन्य तन्त्रयोग मत में त्रिदल कमल, कहीं त्रिकोण स्वरूप से कहा गया है। यहाँ साधक को मूलकन्द में अग्नि के आकार के शक्ति का ध्यान करना चाहिए। यही कामपीठ है। इस पीट

पर शक्ति विराजमान है और वह अग्निस्वरूपा है, उसी का ध्यान करे। यहाँ शक्ति के सम्यक् परिपक्वता सम्पन्न होने पर सभी कामनाओं की पूर्ति आद्याशक्ति पराम्बा सर्वशक्तिस्वरूपा अन्नपूर्णाख्या करती है।

२. स्वाधिष्ठानचक्र– यह नाभि के नीचे और लिङ्ग स्थान के ऊपर शरीर में स्थित है। यह षड्दल कमल के सदृश है। इसी स्थान पर उड्यानपीठ है। उस पीठ पर विराजमान प्रवाल के अङ्कुर सदृश (समान) पश्चिमाभिमुख लिङ्ग शक्ति का ध्यान करे–

अलिङ्गो लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।
अलिङ्ग शिव इत्युक्तो लिङ्गं शैवमिति स्मृतम्॥1॥
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुर्लिङ्गमुत्तमम्।
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम्॥2॥ (शिवपुराणे अ. १)

अव्यक्त को लिंग का मूल कहते हैं और अलिङ्ग शिव हैं इत्यादि। यहाँ लिङ्ग के सम्यग् ध्यान सम्पन्न होने पर जगदाकर्षण की सिद्धि की प्राप्ति होती है।

३. नाभिचक्र– यह पञ्चावृत्त कमल दल के सदृश है, जिसके मध्य,कुण्डलिनी स्थित है। यहाँ बालार्क (उदयकालीन सूर्य) कोटि प्रभा के सदृश शक्ति का ध्यान करें। प्रातःकालीन उदित सूर्य की प्रभा (प्रकाश) के समान प्रकाशवाली शक्ति का ध्यान करे और वह शक्ति कोटि सूर्य के समान प्रभावाली है ऐसा अनुभव करे। यहाँ सम्यग् ध्यान सुसम्पन्न साधक को सभी प्रकार का सामर्थ्य प्राप्त होता है, जो सभी सिद्धि को प्रदान करने वाला होता है।

४. हृदयचक्र– यह अधोमुख अष्टदलकमल सदृश है। यहाँ पर (चक्रमध्य) में ज्योतिर्लिङ्गाकार ध्येय का ध्यान करे। यही सर्वप्रिया हंसकला नाम से कही जाती है। यह हृदय स्थान में स्थित है।

५. कण्ठचक्र– यह कण्ठ प्रदेश में चतुर्दल कमल सदृश चार अंगुल प्रमाण का है। इसके वामभाग में इडानाड़ी है। इसी इडानाड़ी को चन्द्रनाड़ी भी कहा जाता है। इस चक्र के दक्षिण भाग में पिङ्गला नाम की नाड़ी है। इसी नाड़ी को सूर्य नाड़ी भी कहते है। इस दोनों नाड़ी के मध्य में सुषुम्ना नामक नाड़ी है। इसका वर्ण श्वेत वर्ण है। इस चक्र में सुषुम्ना नाड़ी में ध्येय का ध्यान साधक को करना चाहिए।

६. तालुचक्र– यह चक्र घण्टिका मूल (कण्ठ की कौड़ी) स्थान में स्थित है। यहाँ अमृत प्रवाह होता है। अमृत का श्राव होने पर साधक जिह्वा को उलटा कर उसे पान करते हैं। यहाँ राजदन्तावलम्बिनी (राजदन्त के समान लटकी हुई) द्वादशार (द्वादशकमल) जो कण्ठविवर में होता है, उसमें शून्य के आकार (निरूप) का ध्यान करें। इस चक्र में शून्य का ध्यान सम्यग् सुसिद्ध हो जाने पर चित्त का लय (नाश) हो जाता है।

७. भ्रूचक्र–यह चक्र आँख के ऊपर स्थित (भौहों) के मध्य और घ्राण (नाक) के मूल में स्थित है। यहाँ दीपशिखा (दीपक के लौ के आकार) के आकार के ध्येय का अर्थात् ज्ञाननेत्र का ध्यान करें। इस ज्ञाननेत्र में ध्यान सुसिद्ध होने पर वाक् (वाणी) की सिद्धि होती है।

८. आज्ञाचक्र– यहाँ पर ब्रह्मरन्ध्र है, इसलिए इसे निर्माण चक्र कहा जाता है। इस चक्र में धूम्र शिखाकार (धूम्र वर्ण की लौ का आकार) का ध्यान करे। धूम्रवर्ण से आकाश में रूपक भी लिया जा सकता है या मेघ वर्ण का रूपक भी ग्राह्य हो सकता है। जिस आकाश (शून्य) के समान से व्यापक और उपाधिशून्यता को इंगित करता/अर्थ ध्वनित होता है। (यह व्याख्याकार का स्वयं का विचार है।)

९. आकाशचक्र– यहाँ पूर्णगिरि पीठ है। पूर्णगिरिपीठ पर विराजमान शुद्धचिद्रूपा आद्याशक्ति का ध्यान करे। यहाँ षोडशदलकमल ऊर्ध्वमुख (खिले हुए ऊर्ध्वमुख कमल) है। उसके मध्य उसकी कर्णिका (पत्ता) जो त्रिकूटाकार है, उसमें शुद्धचिद्रूपा आद्या शक्ति विराजमान है, उसका ध्यान करे। इसमें ध्यान सुसिद्ध होने पर सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है अर्थात् साधक पूर्णकाम हो जाता है। (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्)



अध्योध्या[1] मथुरा[2] माया[3]' काशी[4] काञ्ची[5] ह्यवन्तिका[6]।
पुरी द्वारावती[7] चैव, सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

माया च कामरूपाख्या,
एतास्तु पृथिवीमध्ये, न गण्यते कदाचन॥

(वृह.ध. पुराण ५३/५४)

१. श्रीरामधनुरग्रस्था। २. सुदर्शनधारिता। ३. शिवलिङ्गस्था। ४. शिव-त्रिशूलस्था। ५. हरहरिवाम-दक्षिणहस्तस्था। ६. हरेः पद्मोपरि स्थिता। ७. विष्णोः पञ्चजन्योपरि स्थिता। (बृ.ध.पु. ५३/५४)

१. अयोध्या–भगवान् श्रीराम के धनुष के अग्रभाग में यह स्थित है। इसलिए भी इसका नाम अयोध्या है क्योंकि कोई भी बलवान् योद्धा उसे युद्ध करके जीत नहीं सकता। 'न योद्धुं शक्यते, युद्धं कृत्वाधीनं कर्तुं न शक्यते यस्मात्तस्मादयोध्या' जिसे युद्ध करके अधीन नहीं किया जा सकता, इसलिए वह अयोध्या है। श्रीराम के धनुष के अग्रभाग में स्थित होने के कारण यह उससे रक्षित है।

२. मथुरा– जो भूमि भगवान् हरि (नारायण) के सुदर्शन चक्र से धारित है, इसलिए रक्षित है। 'निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मथुरामकराकृतिः' (रघु. १५/८) निर्मम (यह मेरा नहीं है) अर्थ के (प्रयोजन उद्देश्य से) जिसका निर्माण किया गया हो, ऐसे मकराकृति (मकर के आकार का) मथुरा को बनाया। इसलिए वह मथुरा ब्रह्मसदन है।

३. माया–शिव जी के लिङ्ग के आधारस्वरूप से स्थित होने के कारण यह विज्ञानस्वरूपा है। इसलिए इसे हरद्वार या हरिद्वार कहते हैं। ज्ञान-विज्ञान की द्वार ही स्वरूप है जिसका, वह हरद्वार या हरिद्वार है। अतः यह ब्रह्ममयी नगरी 'विज्ञानं ब्रह्म' विज्ञान (विशेष ज्ञान) ही ब्रह्म है। अथवा 'हरस्य हरेर्वा द्वारः नगरमुखम् या सा माया' ब्रह्मसदन को प्राप्त करने के लिये जो द्वार (साधन) स्वरूपा है, इसलिये वह माया हरद्वार वा हरिद्वार है।

४. काशी– यह नगरी भगवान् शिव के त्रिशूल पर स्थित है। त्रिशूल शत्रुओं को भेदन कर्म के निमित्तक होता है। 'सर्वानर्थमूला विद्या' सभी प्रकार के अनर्थ (पाप) का मूल अविद्या ही है और वह विद्या विरोधिनी है, इसलिए त्रिशूल ज्ञान का प्रतीक है और अपनी विरोधिनी अविद्या को नष्ट करनेवाला है। अविद्या के नष्ट होते ही प्रकाश-ज्ञान का उदय हो जाता है और 'अहं ब्रह्मास्मि सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिनिर्देशित (लक्षित) अर्थ का बोध हो जाता है। अतः त्रिशूल श्रुतिवाक्यनिर्दिष्टा अज्ञान निवारक है और 'काशते प्रकाशते या सा काशी' उससे जो प्रकाशित होती हो, उसे काशी कहते हैं। यथा मेघाच्छत्र सूर्य प्रकाशित नहीं होता, वायु (ज्ञान का रूपक) द्वारा उसे हटा दिये जाने पर प्रकाशित हो जाता है। तथा– स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा अविद्यामल के कारण बोधगम्य नहीं हो पाता, परन्तु गुरु= उपदिष्ट श्रुतिवाक्य के सामर्थ्य से 'अहं ब्रह्मास्मि' बोध हो जाता है, तद्वत् त्रिशूल और काशी को उपकार्य-उपकारक भाव रूपक अथवा आधाराधेयभाव सम्बन्ध रूपक अथवा जन्य-जनकभाव रूपक समझना चाहिए। अन्यत्र–'इदमज्ञानलोहाङ्गं तीक्ष्णासंसारशूलकम्। गुणत्रयविशाखाढ्यं अतिक्रम्य वजेत् पुमान्'। कहा है। (आ.पु. १/४-५)

यह त्रिशूल तीन शाखा वाला सत्तोगुण-रजोगुण और तमोगुण (त्रिगुणमय) तीक्ष्णसंसार मूल अज्ञान ही लौहरूप से बना हुआ है, अतः इसका अतिक्रमण कर मानव जब पार हो जाय और अपने निरामय आत्मा को प्राप्त होवे इत्यादि त्रिशूल के सम्बन्ध में चिन्तन (शास्त्रवचन भी) हैं, परन्तु प्रसंग विस्तारभय वश इतना कहना पर्याप्त है।

५. काञ्ची– यह नगरी हर (शिव) के बायें हाथ और हरि के दक्षिण हाथ पर स्थित है। जो हर और हरि के हाथ में संरक्षित हो, उसके सम्बन्ध में कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। उसे इतना ही समझे कि वह नगरी परमपावनी और उत्कृष्टतमा है।

६. अवन्तिका– यह भगवान् के पदपद्म के आश्रय से स्थित है, अतः पवित्रतम है।

७. द्वारावती– यह नगरी भगवान् हरि के पाञ्चजन्य शंख को आश्रय करके स्थित है, जो त्रिविधात्मक संसृतिभय को शमन करनेवाली है। प्रसंगात् यहाँ पाञ्चजन्य और शंख पर विचार होना चाहिए। शंख = शं सुखं खनति अवदारयति अभक्तानामसुरानामिति। यद्वा शं = सुखं खनति ददाति स्वनेन (ध्वनिना) स्वपक्षानां भक्तानां प्रपन्नां च इति। खनु अवदारने खन दाने चानयोः रूपम्। पञ्चजन्य एव पाञ्चजन्यः जो भक्तों तथा शरणागतों के सुख का विस्तार करे, वह पाञ्चजन्य नामक शंख है। (बृह.ध.पु. ५३/५४)

वरुण मन्त्र-'वं वरुणाय नमः'।
ध्यानम्–यस्य केशेषु जीमूता, नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारः, तस्मै तोयात्मने नमः॥
(६००० जपः) (यज्ञमन्त्रसंग्रहे)

वरुण मन्त्र–वं वरुणाय नमः' इसमें 'वं वरुण बीज अक्षर है 'वरुण' देवता को नमस्कार करता हूँ' यह मन्त्र का अर्थ (अनुवाद) है। वरुण के ध्यान मन्त्र का अर्थ है–जिसके केशों में मेघ है, सभी अङ्गों के सन्धियों (जोड़ों) में जिसके नदियाँ हैं, कुक्षि (गर्भ) में जिसके चारों समुद्र हैं, ऐसे तोयात्मा (जलात्मा) अर्थात् जलमय शरीर वाले को नमस्कार (प्रणाम) करता हूँ। इस वरुण मन्त्र का छः हजार मन्त्र का पुरश्चरण है। (यज्ञमन्त्रसंग्रह)

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

	विष्णुमायेति शब्दिता	
	चेतनेत्यभिधीयते	
या देवी सर्वभूतेषु	बुद्धिरूपेण संस्थिता	नमस्तस्यै
	निद्रारूपेण संस्थिता	नमस्तस्यै
वृत्तिरूपेण संस्थिता	क्षुधारूपेण संस्थिता	नमस्तस्यै
स्मृतिरूपेण संस्थिता	छायारूपेण संस्थिता	
दयारूपेण संस्थिता	शक्तिरूपेण संस्थिता	नमो नमः
तुष्टिरूपेण संस्थिता	तृष्णारूपेण संस्थिता	
मातृरूपेण संस्थिता	क्षान्तिरूपेण संस्थिता	
भ्रान्तिरूपेण संस्थिता	जातिरूपेण संस्थिता	
व्याप्तिदेव्यै	लज्जारूपेण संस्थिता	
चितिरूपेण या कृत्स्नं	शान्तिरूपेण संस्थिता	
एतद्व्याप्य व्यवस्थिता	श्रद्धारूपेण संस्थिता	
	कान्तिरूपेण संस्थिता	
	लक्ष्मीरूपेण संस्थिता	

जो देवी विष्णु की माया रूपा कही गयी है और सभी प्राणियों में क्रीडाशील है, उसे नमस्कार करता हूँ। नमस्कार शब्द तीन बार कहने से सात्विक-राजस-तामस भेदेन कहा गया है।

गुणभेद से अथवा कायिक-वाचिक-मानसिक कर्मभेद से यहाँ नमस्कार की त्रिरुक्ति कही गयी। यहाँ कुल तेईस रूप में देवी को कहा गया, वह इसलिए कि ये तेईस ही आर्ष देवियाँ हैं–विष्णुमाया चेतना च, बुद्धिर्निद्रा क्षुधा तथा। छाया शक्तिश्च तृष्णा च, क्षान्तिर्जातिस्वतः परम्।। लज्जा शान्तिस्ततः श्रद्धाप, कान्तिर्लक्ष्मीस्ततः परम्। वृत्तिः स्मृतिर्दया चैव, तुष्टिर्माता ततः परम्।। भ्रान्तिर्व्याप्तिश्चितिश्चैव, त्रयोविंशति संख्यकाः। अतोऽधिकं अनार्षं स्यात्तन्त्रे कात्यायने स्फुटमिति।।'

⊛ ⊛ ❀ ⊛ ⊛

वाचकः — वाच्यम्

अचः

क्षम्



वाचकः	वाच्यम्
कं - भूः	षः - शुद्धविद्या
खं - जलं	सः - ईश्वरः
गं - अग्निः	टं - पादौ
घं - वायुः	ठं - पायुः
ङं- व्योमः	डं - उपस्थः
चं - गन्धतन्मात्रा	ढं - पाणिः
जं - रूपतन्मात्रा	णं - वाक्
झं - स्पर्शतन्मात्रा	तं - घ्राणं
ञं - शब्दतन्मात्रा	थं - रसना
पं - मनः	दं - नेत्रम्
फं - अहंकारः	धं - त्वक् (स्क.पु.मा.कु. ३)
बं - बुद्धिः	नं - श्रोत्रम्
भं - प्रकृतिः	यं - रागः
मं - पुरुषः	रं - विद्या
शः - महामाया	लं - कला (परात्रिंशिका)
हः - सदाशिवः	वं - माया

ये तीस वर्णों के प्रकृति पुरुषात्मक वर्ण देवताओं से सम्बन्ध रखने वाले विषय हैं, जो परावाणी के स्वरूप को समझने का उत्तम माध्यम है। मानव देह में तत्तत् अवयव स्थानों में साधक परावाणी के स्वरूप की उपासना करे। वे वर्ण और अवयव जिससे वर्णों का परस्पर सम्बन्ध है और साधक (उपासक) को तत्तत् स्थानों में प्रतिष्ठित रहकर तत्तत् रूप से द्योतन करने के कारण देव हैं, जो इस प्रकार से समझा जा सकता है–जं-रूपतन्मात्रा, झं, खं-जल, गं-अग्नि, घं-वायु, ङं-व्योम, चं-गन्धतन्मात्रा, छं-रसतन्मात्रा, जं-रूपतन्मात्रा, झं-स्पर्शतन्मात्रा, ञं-शब्दतन्मात्रा, पं-मन फं-अहंकार, बं-बुद्धि, भं-प्रकृति, मं-पुरुष, शः-महामाया, षः-शुद्धविद्या, सः ईश्वर है। टं बीजात्मकवर्ण की स्थापना और उपासना दोनों पैर में, डं की पायु में डं-उपस्थ, ढं-हाथ, णं-वाक्, तं-घ्राण, थं-रसना, दं-नेत्र, धं-त्वक्, नं-श्रोत्र में उपासना का विषय है। यं-राग है, रं-विद्या, लं-कला और वं माया है। इस प्रकार अच वर्ण का वाच्य शिव हैं क्षम् का वाच्य शक्ति है। (स्क.पु.मा.कु. ३. परात्रिंशिका)



॥ श्रीदत्तगुरुस्तोत्रम्॥

मूलाधारे वारिजपत्रे सुचतुष्के,
वं-शं-षं-सं वर्णविशाले सुविशाले।
रक्तं वर्णं श्रीगणनाथं भगवन्तम्,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥१॥

स्वाधिष्ठाने षड्दलपत्रे तनुलिङ्गे,
बालस्तावद्वर्णविशाले सुविशाले।
पीतं वर्णं वाक्यपतिरूपं द्रुहिणं तम्,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥२॥

नाभौ पद्मे पत्रदशांके डफ् वर्णे,
लक्ष्मीकान्तं गरुडारूढं नरवीरम्।
नीलं वर्णं निर्गुणरूपं, निगमाद्यं,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥३॥

हृदि पद्मान्ते द्वादशपत्रे कठवर्णे,
शम्भुं शेषं हंसविशेषं शमयत्रतम्।
श्वेतं वर्णं पञ्चाकृतिनं कलयन्तम्,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥४॥

कण्ठस्थाने चक्रविशुद्धे कमलाङ्के,
चन्द्राकारे षोडशपत्रे स्वरवर्णे।
मायाधीशं जीवशिवं तं शशिमूर्तिं,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥५॥

आज्ञाचक्रे भृकुटिस्थाने द्विदलान्ते,
हं लं बीजं ज्ञानमधीशं रविमूर्तिम्।
तेजोगारे अश्वारुढे श्रीसूर्यं,
दत्तत्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥६॥

ब्रह्मानन्दं ब्रह्ममुकुन्दं भगवन्तम्,
सत्यं ज्ञानं भूममयं तं भज रूपम्।
पूर्णं शान्तानन्दमयं तं निजमूर्तिम्,
दत्तायेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि॥७॥

श्रीदत्तगुरुस्तोत्र–मूलाधार के चतुर्दलकमलपत्र में वं, शं, षं, सं सुन्दर विशाल बीजाक्षर में स्थित रक्तवर्ण के गणनाथ (गणेश) भगवान् स्वरूप गुरु की मूर्ति दत्तात्रेय जी को प्रणाम करता हूँ।।१।।

स्वाधिष्ठान चक्र में पीतवर्ण के विकसित बाल पंकज में सूक्ष्मशरीर स्वरूप असुर (अज्ञान) द्रोही (विरोधी) गुरु दत्तात्रेयमूर्ति को प्रणाम करता हूँ।।२।।

नाभि के मध्य दशदल कमल में ड फ् बीजाक्षर गरुड पर आरूढ नरवीर लक्ष्मी के कान्त (पति) जो नील वर्ण के हैं, निर्गुणात्मक हैं, निगम (वेद-ज्ञान) के मूलस्वरूप हैं, ऐसे गुरु श्री दत्तात्रेय जी को प्रणाम करता हूँ।।३।।

हृदयस्थ द्वादशपत्रकमल में क ठ बीजाक्षर स्वरूप एवं शेष, हंस और शम्भु स्वरूप हैं तथा जो तपस्या में लीन हैं श्वेत वर्ण के हैं, पञ्चमुख हैं और ब्रह्मानन्द में क्रीड़ा करने वाले हैं, ऐसे गुरु श्रीदत्तात्रेय को प्रणाम करता हूँ।।४।।

कण्ठस्थान में स्थित विशुद्धिचक्र में जो षोडशकमलाकार हैं और चन्द्राकार हैं स्वर वर्ण बीजाक्षर वाले हैं, माया के अधीश हैं, जीवों के कल्याणस्वरूप से विराजते चन्द्रमा स्वरूप हैं, ऐसे गुरु श्री दत्तात्रेय जी को प्रणाम करता हूँ।।५।।

भृकुटि स्थान में द्विदल कमल आज्ञाचक्र में हं और लं बीजाक्षर स्वरूप ज्ञानाधीश, रवि (सूर्य) मूर्तितेज के अधिष्ठान स्वरूप, अश्वारूढ श्रीसूर्य भगवान् के साक्षात्मूर्ति गुरु दत्तात्रेय को प्रणाम करता हूँ।।६।।

ब्रह्मानन्द स्वरूप, ब्रह्ममुकुन्द स्वरूप, सर्वैश्वर्य सम्पन्न, सत्य और ज्ञान के आधार तथा अभयमूर्ति, पूर्ण-शान्त तथा आनन्दमय स्वरूप आत्ममूर्ति गुरु श्री दत्तात्रेय को प्रणाम करता हूँ।।७।।



धारणाः

१. आग्नेयी–

सांग्निः शिखाफडन्ता च, विष्णोः कार्या द्विजोत्तम!।
नाडीभिर्विकटं नित्यं, शूलाग्रं वेधयेच्छुभम्।।
पादांगुष्ठात्कपालान्तं, रश्मिमण्डलमावृत्तम्।
तिर्यक् चाधोर्ध्वभागेभ्यः प्रयान्त्योऽतीव तेजसा।।
चिन्तयेत्साधकेन्द्रस्तं, यावत्सर्वं महामुने!।
भस्मीभूतं शरीरं स्वं, ततश्चैवोपसंहरेत्।।
शीतश्लेष्मादयः पापं, विनश्यन्ति द्विजातयः।।

२. वारुणी–

स्फुरच्छीकरसंस्पर्श, प्रभूते हिमगामिभिः।
धाराभिरखिलं विश्वं, आपूर्य भुवि चिन्तयेत्।।
ब्रह्मरन्ध्राच्च संक्षोभात्, यावदाधारमण्डलम्।
सुषुम्नान्तर्गतो भूत्वा, सम्पूर्णेन्दुकृतालयम्।।
संप्लाव्य हिमसंस्पर्श, तोयेनामृतमूर्तिना।।
क्षुत्पिपासाक्रम प्राप्य, सन्तापपरिपीडितः।
धारयेद्वारुणी मन्त्री, तुष्ट्यर्थं चाप्यतन्द्रितः।।

३. ऐशानी–

व्योम्नि ब्रह्ममये पदमे, प्राणापाने क्षयं गते।
प्रसादं चिन्तयेद्विष्णोः, यावच्चिन्ताक्षयं गता।।
महाभावं जपेत्सर्वं, ततो व्यापक ईश्वरः।
अर्धेन्दुं परमं शान्तं निरायासं निरञ्जनम्।।
विष्णुमन्त्रेण वा कुर्यात्, आब्रह्मसचराचरम्।
मद्भावभावनापन्नः, ततोऽसौ परमात्मना।
भवत्यभेदे भेदश्च, तस्या ज्ञानकृतो भवेत्।।

४. अमृताः–

सम्पूर्णेन्दुनिभं ध्यायेत् कमलं तन्त्रिमुष्टिगम्।।
शिरस्थं चिन्तयेद्यत्नात्, शशांकायुतवर्चसम्।
सम्पूर्णमण्डलं व्योम्नि, शिवकल्लोलपूर्णितम्।।
तथा हृत्कमले ध्यायेत्, तन्मध्ये स्वतनुं स्मरेत्।
साधको विगतक्लेशो, जायते धारणादिभिः।। (अग्निपु. ३७५)

धारणाः

धारणा चार प्रकार की यहाँ कही गयी है–आग्नेयी, वारुणी, ऐशानी और अमृता। इन चारों धारणाओं का ब्रह्मज्ञान साधना में अपने-अपने क्रिया देश में अपने-अपने महत्त्व के हैं, जिसकी जानकारी के लिए हमें इस प्रकार उसके स्वरूप को समझना चाहिए।

१. आग्नेयी धारणा–साधक पद (पैर) से शिखापर्यन्त फ से ड वर्ण तक के बीजाक्षर स्वरूप विष्णु का ध्यान करे। नाड़ी के द्वारा विचित्र परन्तु सुन्दर शूलाग्र का वेधन करे, इसी प्रकार तिर्यक् गति के द्वारा अन्तःभूमि में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे (पादांगुष्ठ से कपाल पर्यन्त) धारणा को संचालित करता हुआ अत्यन्त तेज (दिव्य अग्नि) पुञ्जभूधारणा से वह श्रेष्ठ साधक अपने कायान्तर्गत शीत और श्लेष्मादि पापों को भस्म (नाश) करे। इस तरह की तेजोमयी धारणा के द्वारा तब तक अन्तःशरीर के नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तिर्यक् गति से भावनात्मक धारणा करता रहे, जब तक कि उपर्युक्त पाप समूल नष्ट न हो जाय। इस प्रकार मन्त्री (साधक) प्रयत्न से प्राप्त आग्नेयी धारणा में दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाय। यही आग्नेयी धारणा है।

२. वारुणेयी धारणा–साधक प्रवहमान हिममयी धारंणा की धारा से समस्त विश्व को परिपूर्ण कर साधना भूमि का चिन्तन करे, अनन्तर ब्रह्मरन्ध्र को क्षुभित करके उस क्षुभित हिममयी धारा से आधारमण्डल (मूलाधार चक्र) को प्राप्त कर पुनः उस मण्डल से सम्बद्ध धारणा को सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट करा कर सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल को संप्लावित करे। इसी प्रकार उस हिमस्पर्श वाले अमृतमयी जलधारा के द्वारा क्षुत्पिपासा से संतप्त और पीडित प्रकृतिसंवलित आत्मा (जीवात्मा) को क्रमित करके अपनी तृप्ति के लिए सजगतापूर्वक उस वारुणी धारणा में मन्त्री (मनन करने वाला साधक) सुस्थिर हो जाय। यही वारुणी धारणा है।

३. ऐशानी धारणा–साधक को ब्रह्ममय कमलाकाश में प्रविष्ट होकर प्राणवायु और अपान वायु को ध्येय में लय करना चाहिए। प्राण और अपान के क्षय (लय) हो जाने पर यावत् चिन्ता का क्षय न हो जाय, तब तक विष्णु के प्रसाद (निर्मलता) का अपने आत्मा में चिन्तन करना चाहिए। उसके अनन्तर साधक ईश्वर के व्यापकत्व धर्म महाभाव का अपने में स्थापन कर मैं ईश्वर (विष्णु) ही हूँ और यह सब पदार्थ मैं ही हूँ इस प्रकार की धारणा बनानी चाहिए। इस प्रकार अर्धेन्दु परम शान्त निरञ्जनस्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करे अथवा ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर में विष्णु का चिन्तन करे और उस विष्णु के भाव से अपने को भावित होकर ध्येय और ध्याता का जो भेद है, उसे धारणा शक्ति की युक्ति से दूर कर अभेद स्थापना *'मैं श्रीविष्णु ही हूँ'* इस प्रकार की धारणाप्राबल्य से स्थित हो जाय।

४. अमृता धारणा–साधक कमलपुष्पदण्ड को हाथ में धारण करने वाले सम्पूर्ण चन्द्रमा के सदृश आभा वाले तथा सहस्रों चन्द्रकिरण के प्रकीर्णन से चकाचौंध शिर है जिसका, ऐसे शिव का ध्यान करे। निखिल व्योम मण्डल (आभ्यन्तर) में शिव कल्लोल ध्वनि से प्रपूरित उस शिव को अपने हृदय कमल में धारण करके उसमें अपना आत्मस्थापन करे अर्थात् शिव में 'अहं' की धारणा करे और ऐक्य

स्थापन कर केवल भाव में स्थित हो जाय। इसी को अमृता धारणा कहते हैं। इन धारणाओं (उपर्युक्त चारों) से साधक विगतक्लेश होकर शिवत्व को प्राप्त कर लेता है। (अग्नि पु. ३७५)



भक्तिः-नारदः

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'॥२॥

१. 'न कामानां निरोधरूपा'॥७॥

२. 'अमृतरूपा च'॥३॥

३. 'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोऽमृतस्तृप्तो भवति'।

४. न किञ्चिद्वाञ्छति, शोचति, द्वेष्टि रमते उत्साही भवति'॥४॥

५. 'यज्ज्ञात्वा मत्तस्तब्ध आत्मारामो भवति'॥६॥

निरोधः—'लोकव्यापारन्यासः'।

तस्या साधनानि-

१. विषयसंगयोस्त्यागः॥३५॥

२. अव्यावृतभजनम्॥३६॥

त्यागः—स्नेहस्य विषयानां च त्यागः। (महाभा.शा. १९२/१७)

भगवद्गुणश्रवणकीर्तनम्॥३७॥

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः

खरैः संस्तुतः पुरुष पशुः।

नयत्कर्णपथोपेतः, ज्ञातुनाम गदाग्रजः॥ (श्रीमद्भाग. २/३/१९)

भक्तिलब्धवतः साधोः, किमन्यदवशिष्यते।

मय्यन्तगुणे ब्रह्म ण्यानन्दानुभवात्मनि॥ (११/२६/३०)

३. मुख्यस्तु महत्कृपयैव भगत्कृपालेशाद्वा। (ना.भ.सू. ३८)

नारद भक्तिसूत्र में नारद मुनि ने भक्ति का विशद और निर्दुष्ट लक्षण किया है-वह भक्ति इस चराचर सम्पूर्ण जगत् में परमात्मा के स्वरूप दर्शन रूप परमप्रेम स्वरूप ही है। वह कामनाओं के निरोध स्वरूप नहीं है, बल्कि निखिल सृष्टि में भगवद्दर्शन रूप लालसा (अभिलाषा) विशेष है। वह अमृत के समान प्रिय और अलभ्य परम प्राप्तव्य स्वरूप ही है। जिस भक्ति को प्राप्त कर मानव सिद्ध हो जाता है,

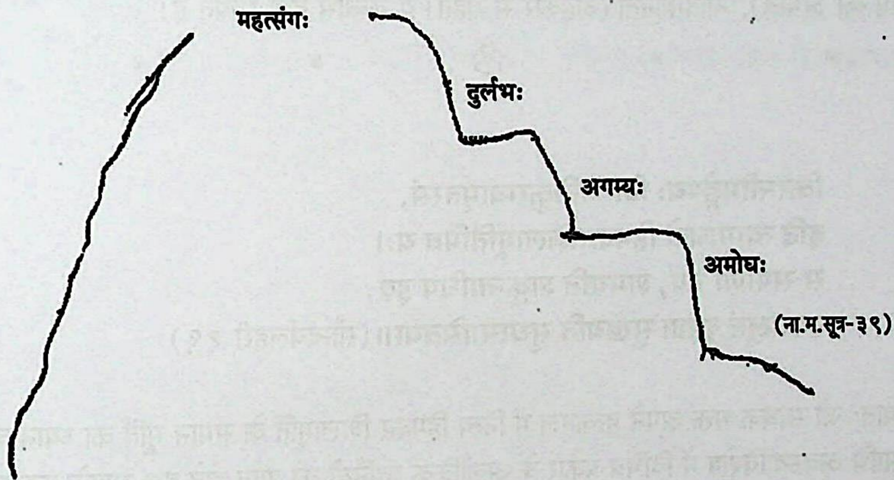
अमृत (अमरता) को प्राप्त कर लेता है, तृप्त हो जाता है अर्थात् पूर्ण काम हो जाता है। उसे कोई सांसारिक पदार्थ की इच्छा नहीं रह जाती है, वह चिन्तामुक्त हो जाता है, वह किसी से द्वेष नहीं करता; क्योंकि उसे परमात्मामय जगदृष्टि हो जाती है। वह सर्वत्र सभी वस्तुओं में भगवद्दर्शन प्राप्त करता हुआ उसमें रमण करता हुआ उत्तरोत्तर प्राप्त पदार्थों (वस्तुओं) में भगवद्दर्शनाभिलाषी होता हुआ उत्साही हो जाता है। इस प्रकार की भक्ति को प्राप्त करने वाला साधक भक्त ईश्वर दर्शन कर प्रेममद में मत्त हो जाता है और जैसे कोई मद्यपी अपनी स्थिति को भूल कर उससे भिन्न स्थिति को प्राप्त कर अन्यथा आचरण करता है, वैसे ही भगवद्प्रेममद में कभी-नाचता-कभी गाता हुआ भगवन्नाम के प्रेम में मत्त हो जाता है, कभी स्तब्ध होता है और कभी अन्तरात्मा में प्रभु को पाकर उसी में ध्यानमग्न हो आत्माराम की स्थिति में मग्न रहता है और आनन्द में डूब जाता है। वह भक्ति व्यवहार के त्याग बुद्धि से प्राप्त होती है। लोक में मैं–तूँ-तुम जो व्यवहार है वह शरीर सापेक्षक होता है। इस शरीर सापेक्षबुद्धि के निरोध होने पर ईश्वर के प्रति कामना (इच्छा) होती है, जो प्रेमस्वरूपा भक्ति कहलाती है और उस भक्ति के द्वारा परमात्मा का दर्शन सम्भव हो पाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के लिए साधन है कि–1. विषय और उसके संग का त्याग हो। २. निरन्तर भगवान् का भजन हो और विषयों के प्रति जो स्नेह बना रहे, उसका सर्वथा त्याग हो। भगवद्गुण कीर्तन ही भजन है। भगवान् के गुणों का निरन्तर कीर्तन (गान करना) रूप कर्म भजन कहलाता है। (ना.भ.सू. २,७,४,६,३५,३६,३७, महाभा. १९२/१७)

जिस पुरुष ने परमात्मा भगवान् नारायण की भक्ति को प्राप्त नहीं किया, उनका भजन-सेवा-स्तुति मन्त्र जप भक्तिलक्षण कर्म नहीं किया, के समान है और उसका जन्म कुत्ता-सूकर-ऊष्ट्र (ऊँट) गर्दभ (गदहा) के तुल्य केवल भार वहन करने मात्र के समान होता है। वह शरीरान्तर्गत हाथ पैर-आँख-कान-नाक आदि अंगों को ढ़ोकर मात्र इन पशुओं के समान जीवन व्यतीत कर रहा होता है। जिसने भगवान् की भक्ति को प्राप्त किया है, जिसने संतों के समागम को प्राप्त किया है, जिसने विषयों के संग का त्याग किया है और परमात्मा श्रीकृष्ण का अपने आत्मा में अनुभव का आनन्दानुभव कर लिया तथा उनके अनन्त स्वरूप और गुण में लीन हो सर्वत्र उनका व्यापक स्वरूप का दर्शन कर लिया, उसी का जन्म सार्थक है वही सन्त है–वही साधु है, वही योगी है, वही मानव जन्म की सार्थकता को सिद्ध किया। उसे सब कुछ प्राप्त हुआ जानना चाहिए। उसे कुछ भी अप्राप्तव्य शेष नहीं रह गया। वह पूर्णकाम हो जाता है। (श्रीमद्भा. २/३/१९/११/२६/३०)

ऐसे भक्त भगवान् की महत्कृपा प्राप्त करने का जो सफल प्रयास किया-साधना की भजन-कीर्तन-जप-स्वाध्याय-व्रत-दानादि की, उससे भगवान् की अगर महत्कृपा प्राप्त हुई, तो वही जीवन का मुख्य पुरुषार्थ है अथवा भगवान् की, इससे कृपालुता को प्राप्त किया तो मुख्य उद्देश्य प्राप्त कर धन्य-धन्य हो परम पुरुषार्थ लब्ध हो गया, ऐसा जानना चाहिए। (ना.भ. सू. ३८)

सत्सगंः-सर्वसंगापहः। (श्रीमद्भा.य ११/१२/२)

भगति सुतन्त्र सकल गुणखानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्राणी।। (संत तुलसीदास)

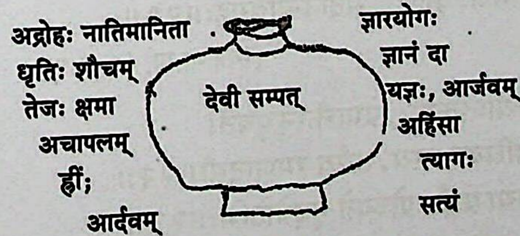


सत्सङ्ग-संतों और साधु पुरुषों के सङ्ग को कहते हैं। सङ्ग से उनके भाव-उनके कर्म-आचरण-धर्म-व्रत का एकीभाव प्राप्त होता है, क्योंकि वह अनेकत्व के संग भाव को निर्मूल करती है। (श्रीमद्भाग. ११/१२/२)



(प्रह्लादः)

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः स्वाध्यायः



देवी सम्पत् ये हैं– सत्त्व की शुद्धि, अभयता (भय रहित), स्वायाध्य (आत्मचिन्तन), ज्ञानयोग, दान, दम (मनोनिग्रह), यज्ञ, आर्जव (शीलता), अहिंसा, त्याग, सत्य, अक्रोध, (क्रोध का नहीं होना), तप, अपैशुन्य (चुगली नहीं करना), शान्ति, दया, अलोलुपता (लालच नहीं होना), मार्दव (कोमलभाव), ह्री (लज्जा), अचपलता (चंचलता का अभाव), तेज, क्षमा, धृति (धैर्य) शौच (बाह्य-आभ्यन्तरशुद्धि), अद्रोह (शत्रुता का अभाव), नातिमानिता (अहंकार से रहित) ये छब्बीस दैवी सम्पत् हैं।

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरम्बामृतरसं,
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः।
स सर्पाणां दर्पं, शमयति शकुन्ताधिप इव,
ज्वरप्लुष्टं दृष्ट्या सुखयति सुधासासितया॥ (सौन्दर्यलहरी १९)

हे मातः जो साधक भक्त अपने हृत्कमल में नित्य हिमकर शिलामूर्ति के समान मूर्ति का ध्यान करता हुआ तथा समाधि अवस्थाविशेष में विभिन्न प्रकार के अलौकिक ध्वनियों को प्राप्त होते हुए आपके प्रकाशपुञ्ज अमृतरस को हृदय में धारण कर हिमकर शिला की मूर्ति के समान होकर आप परमात्मा में स्थित हो जाता है, वह जिस तरह सर्पों के समूह के दर्प को गरुड़ पक्षी नष्ट कर देता है, उसी प्रकार संसार के दुःखरूपी ज्वर से सन्तप्त को दृष्टिपात मात्र से सुखी कर देता है।

व्रजः व्राजितरित्युक्ता, व्यापनाद् व्रज उच्यते।
गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते॥
तस्मिन्तन्दात्मजः कृष्णः, सदानन्दविग्रहः॥२१॥
(स्का.मा.मा. (१/१९)

आत्मारामश्चाप्तकामः, प्रेमात्क्तैरनुभूयते।
आत्मा तु राधिका तस्य, तयैव रमणादसौ॥२२॥
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥२३॥

व्रजनं-क्रीडा-भ्रमन-चलन-गमन आदि क्रियात्मकरूप को कहते हैं और जहाँ पर आनन्दकन्द परमात्मा परं ब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं क्रीड़ा करें या जहाँ पर स्वयं के ब्रह्मानन्दरूप से क्रीडित हो रहे हों, वह व्रज है अथवा व्यापक स्वभाव के कारण यह आत्मा व्रज है। आत्मा में जब निरतिशयानन्द ब्रह्म सुख के कारण क्रीडन-

कम्पन अर्थात् स्पन्दन हो, तो उसे व्रज कहते हैं। इसलिए गुणातीत परंब्रह्म परमात्मा जो व्यापक स्वरूप वाले हैं वही व्रज हैं। परमात्म सुख ही नन्द है, वह आत्मसुख जब ब्रह्मात्मैक्यता को प्राप्त कर स्पन्दनैक्य को प्राप्त कर ले, तो व्रज की स्थिति होती है। उसको रूपक अथवा प्रतीक रूप में कहा जा रहा है कि–उस व्रज में नन्द के आत्मज श्रीकृष्ण नृत्य आनन्द के विग्रहावतार-आत्माराम-आप्तकाम विहार करते हैं–नृत्य करते हैं–क्रीड़ा करते हैं, जिसे प्रेम रस में निमग्न जन ही अपने अन्तःकरण में अनुभव करते हैं। उस आनन्दकन्द परमात्मा श्रीकृष्ण की आत्मा स्वरूपा राधिका हैं, राधिका में रमण करने के कारण ही वह श्रीकृष्ण आत्माराम के नाम से प्रसिद्ध हैं।

'सोऽहम्'

हकारः पुरुषः प्रोक्तः, स इति प्रकृतिर्मता।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसः, तदात्मकमिदं जगत्।। (आचार्याः)
आत्ममन्त्रः- ऋषिः-ब्रह्मा,
सः शक्तिः, गायत्रं-छन्दः,
हं बीजम्, आत्मैव-देवता, (सूत सं.य. ४/७/१)

'सोऽहम्' यह आत्ममन्त्र है। आत्ममन्त्र सभी मन्त्रों में श्रेष्ठतम मन्त्र है। अन्य मन्त्र परम्परया परम लक्ष्य को प्राप्त करा पाते हैं। परन्तु आत्ममन्त्र साक्षात् परम लक्ष्य को प्राप्त कराने में सक्षम हैं। अन्य मन्त्र द्रविण प्राणायाम (कर्माधिक्यलघुफलक) के समान है, जबकि आत्ममन्त्र 'दशमस्त्वमसि' के समान सद्यःफल को देनेवाला है। इसलिए यह सर्वमन्त्रों से श्रेष्ठतम मन्त्र है। 'सोऽहम्' मन्त्र में 'सः' और 'अहम्' ये दो पद हैं 'सः' पद ब्रह्मवाचक और 'अहम्' पद जीववाचक है और जप का फल ब्रह्म और जीव का ऐक्य है।

श्रोत्रेण श्रवणं तस्य, वचसा कीर्तनं तथा।
मनसा मननं तस्य, महासाधनमुच्यते।। (शिव.पु. विश्वेश्वर ख. ५१)

भगवान् शिव के रूप-रस-गन्धादि तथा शब्द-स्पर्शादि से रहित अव्यक्त स्वरूप ही लिङ्ग है। उस लिङ्ग की आराधना ही साधक का साधना रूप कर्म है और वाच्य लिङ्गस्वरूप शिव पद है। उस शिव पद की प्राप्ति के लिए गुरुतः शास्त्रत उत्थित उपदेशरूप वाक्य का श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा श्रवण तथा वाक्यरूप कीर्तन एवं

मनसा मनन रूप साधना कर्म है, जो शिव पद प्राप्ति का महासाधन है.। (शि.पु.वि.ख) ५१)

क्र.सं.	बीजाक्षरमन्त्रः	देवसंज्ञा	देवस्वरूपः (लक्षणम्)
१.	ॐ अं	मृत्यञ्जयः	सर्वव्यापकः
२.	ॐ आं	आकर्षणंः	सर्वगतः
३.	ॐ इं	पुष्टिदा	क्षेमकरः
४.	ॐ ईं	वाङ्प्रसादकरो	निर्मलः
५.	ॐ उं	सर्वबलदः	सारतरः
६.	ॐ ऊं	उच्चाटनोदः	सहः
७.	ॐ ऋं	संक्षोभकः	चंचलः
८.	ॐ ॠं	सम्मोहनः	नवलः
९.	ॐ लृं	विद्वेषणः	मोहकः
१०.	ॐ लॄं	मोहकरः	मोहकरः
११.	ॐ एं	सर्ववश्यकरः	सर्ववश्यकरः
१२.	ॐ ऐं	शुद्धसात्त्विकः	पुरुषवश्यकरः
१३.	ॐ ओं	अखिलवाङ्मयः	नित्यशुद्धः
१४.	ॐ औं	सर्ववाङ्मयः	वश्यकरः
१५.	ॐ अं	गजादिवश्यकरः	मोहनः
१६.	ॐ अः	मृत्युनाशकरो	रौद्रः
१७.	ॐ कं	सर्वविषहरः	कल्याणप्रदः
१८.	ॐ खं	सर्वक्षोभकरः	व्यापकः
१९.	ॐ गं	सर्वविघ्ननाशकः	महत्तरः
२०.	ॐ घं	सौभाग्यप्रदः	स्तम्भनः
२१.	ॐ ङं	सर्वविषनाशकः	उग्रः
२२.	ॐ चं	अभिचारघ्नः	क्रूरः
२३.	ॐ छं	भूतनाशकः	भीषणः
२४.	ॐ जं	कृत्यादिनाशकः	दुर्धर्षः
२५.	ॐ झं	भूतनाशकः	मृत्युदः
२६.	ॐ ञं	मृत्युप्रमथनः	मृत्युञ्जयः

२७.	ॐ टं	सर्वव्याधिहरः	सुभगः
२८.	ॐ ठं	चन्द्ररूपः	अमृतप्रदः
२९.	ॐ डं	गरुडात्मकः	विषघ्नः
३०.	ॐ ढं	सर्वसम्पत्प्रदः	सुभगः
३१.	ॐ णं	सर्वसिद्धिप्रदो	मोहकरः
३२.	ॐ तं	धनधान्यादिसम्पत्प्रदः	प्रसन्नः
३३.	ॐ थं	धर्मप्राप्तिकरः	निर्मलः
३४.	ॐ दं	पुष्टिवृद्धिकरः	प्रियदर्शनः
३५.	ॐ धं	विषज्वरहरः	विपुलः
३६.	ॐ नं	भुक्तिमुक्तिप्रदः	शान्तः
३७.	ॐ पं	सर्वविघ्ननाशनः	भव्यः
३८.	ॐ फं	अणिमादिसिद्धिप्रदः	ज्योतिरूपः
३९.	ॐ बं	सर्वदोषहरः	शोभनः
४०.	ॐ भं	भूतप्रशान्तिकरः	भयानकः
४१.	ॐ मं	विद्वेषि	मोहकः
४२.	ॐ यं	सर्वव्यापकः	पावनः
४३.	ॐ रं	दाहकरो	विकृतः
४४.	ॐ लं	विश्वम्भरः	भासुरः
४५.	ॐ वं	सर्वम्यायनकरः	निर्मलः
४६.	ॐ शं	सर्वफलप्रदः	पवित्रः
४७.	ॐ षं	धर्मार्थकामदः	धवलः
४८.	ॐ सं	सर्वकारणः	सार्ववर्णिकः
४९.	ॐ हं	सर्ववाङ्मयः	निर्मलः
५०.	ॐ ठं	सर्वशक्तिप्रदः	प्रधानः
५१.	ॐ क्षं	परापरतत्त्वज्ञापकः	परंज्योतिरूपः

अज्ञानी-स्थूलदेहाभिमानी-द्वैतबुद्धिस्थ मूर्तिपूजक साधक के लिये स्थापित इष्ट मूर्ति में स्थूलोपचार सामग्री द्वारा स्थूल पूजन तत्तत् बीजाक्षर मन्त्रों से पूजनादि इसी क्रम में करना चाहिए। द्वैत बुद्धिवाले साधक भी यदि श्रद्धा-भक्ति-निष्ठा से स्थूल पूजन करता है, तो अन्तःकरण की शुद्धि अनन्तर उसे भी यथाक्रम परम पुरुषार्थरूप मोक्षप्राप्ति हो सकती है। वह द्वैतस्थ साधक साधना (श्रद्धा-भक्ति निष्ठादि) के द्वारा सूक्ष्म उपासना में स्वतः प्रविष्ट हो जाता है।

बीजाक्षर मालामन्त्र प्रतीकात्मक है। साधक प्रत्येक सृष्ट वस्तु में परमात्मभावना से उपासना करे, यही इसका मुख्याभिप्राय होना चाहिए। सृष्टि के प्रत्येक सृज्यमान वस्तु (जीवात्मा) संज्ञा वाला है और संज्ञा (वर्ण-अक्षर) स्वरूप ही होता है। अतः संज्ञा (अक्षर वस्तु) और सृष्टि वस्तु (माला का मनका) माला है। दोनों की सहायता से ब्रह्म (परमात्मा) मन्त्र का जप कर आत्मलाभ किया जा सकता है।



हरिः सर्वेषु भूतेषु, भगवानास्त ईश्वरः।
इति भूतानि मनसा, कामैस्तैः साधु मानयेत्।

सर्वतीर्थमयी माता, सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात्, सर्वयत्नेन पूजयेत्।। (पद्म पु. सृष्टि ख. ५२/११)
मातरं पितरं चैव, यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षणीकृता तेन, सप्तद्वीपा वसुन्धरा।।
पतिव्रता च या नारी, पत्युर्नित्यं हिते रता।
कुलद्वयस्य पुरुषान् उद्धरेत् शतं शतम्।। (पुराणवचनानि)
न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्।
धर्मो हि भगवान् देवो, गतिः सर्वेषु जन्तुषु।। (पुराणवचनानि)
सत्यपूतां वदेत् वाणीं, मनःपूतं समाचरेत्।
सत्यस्य नावं सुकृतं सुकृतमयी परन्'। (ऋग्वेद ९/७३/१)

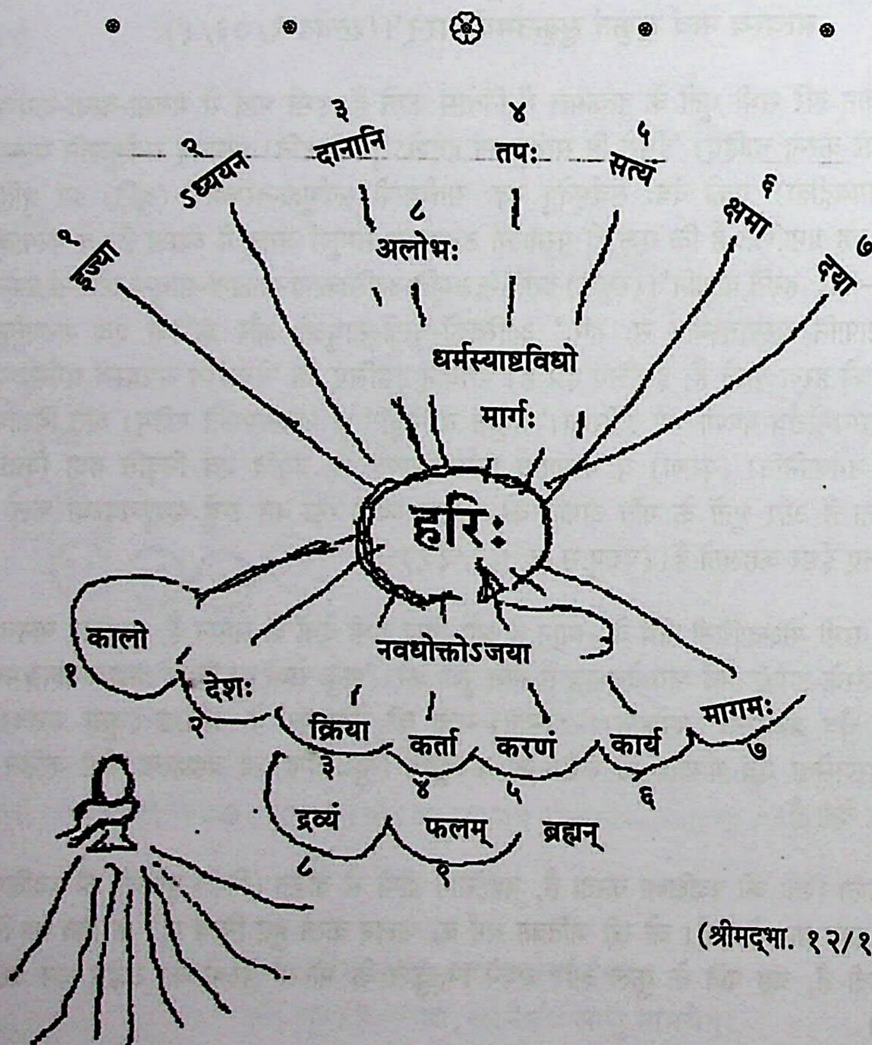
भगवान् हरि सभी भूतों के हृत्कमल में निवास करते हैं, इसी भाव से मनसा-वाचा-कर्मणा सभी भूतों से व्यवहार करना चाहिए। 'ईश्वरो हि सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।' (भगवद्गीता) 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।' (श्रुति) इन श्रुति-स्मृति वाक्यों से भी यह प्रमाणित है कि एक ही परमात्मा उच्चावच सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। वे परमात्मा हरि इसलिए है कि–'हरिः हरति पापानि'। (स्मृति) हरति-नाशयति-आस्तिकानां-भक्तानां-साधूनां-ज्ञानिनां प्रपन्तानाञ्च दुःखरूपानि पापानि यस्मात्तस्मात् सः हरिः' आस्तिकों-भक्तों-साधुओं और ज्ञानियों एवं शरणागतों के दुःखरूप पाप को हरण करते हैं, इसलिए हरि हैं। भगवान् इसलिए कि 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।' प्रवृत्तिं च निवृतिं च भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति। (पुराण) वे परमात्मा षडैश्वर्यसम्पन्न हैं, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति तथा विद्या तथा अविद्या के वेत्ता हैं और भूतों के गति अगति को सम्यक् ध्यान रख कर उन्हें यथाव्यवस्था फल प्रदान करते हैं, इसलिए ईश्वर कहलाते हैं। (पद्मपु.सृ.ख. ५२/११)

माता सभी मोक्षदायिनी तीर्थ के समान है और पिता सभी देवों के समान हैं, इसलिए मानव सभी प्रकार से यत्न करके उनकी तीर्थ भाव देवभाव से सेवा पूजा करे। 'मातुः सेवा गुरूच्छिष्टं ब्राह्मणानामङ्गमर्दनम्। गवां कण्डूयनं चैव ब्रह्महत्यां व्यपोहति।।' (स्मृति) माता की सेवा गुरु के उच्छिष्ट (जूठा प्रसाद) और ब्राह्मणों की चरणसेवा एवं गोमाता के शरीर का कण्डूयन (खुजलाना) ये ब्रह्महत्या जैसे कठिन पापों को भी नष्ट कर देता है।

जो माता पिता की प्रदक्षिणा करता है, वह सात द्वीपों से वेष्टित (घिरी) पृथिवी की प्रदक्षिणा के महत् फल को प्राप्त कर लेता है। जो स्त्री पातिव्रत धर्म का पालन करते हुए नित्य पति के हित का चिन्तन करने वाली होती है, वह पति के कुल और अपने पितृकुल के सौ-सौ पुरुषों का उद्धार कर देती हैं। (पुराणवचनानि)

धर्म से हीन काम और अर्थ का मन से भी कभी चिन्तन न करें, क्योंकि धर्म स्वयं भगवान् का विग्रह है और वही सभी जन्तुओं की गति है। सत्यवाक्यों से पवित्र जो वचन है, उसी को बोलना चाहिए और जब पवित्र हो तभी आचार व्यवहार प्रारम्भ करे, अन्यथा वह निष्फल हो जाता है, साथ ही पापों को भी जन्म देता है। (पुराणवचनानि)

सत्य (ब्रह्म) रूपी नौका को पवित्र कर्म रूपी करण (साधन) से बनाओं, जिस नाव से सत्यरूपी जल में विहार किया जा सकेगा। सत्य की प्रतिष्ठा तब हो पाती है, जब कर्म (व्यवहार) सत्य हो। यदि कर्म सत्य (पवित्र नहीं होंगे, तो सत्यस्वरूप (ब्रह्ममय जगत्) में कैसे चल पायेगा। अतः भीतर-बाहर सत्य की प्रतिष्ठा हो सके, इसके लिए सत्य (ब्रह्मा) का चिन्तन-मनन के साथ सत्यकर्म (ब्रह्ममय कर्म) भी हो,तभी सत्यसंसार (ब्रह्ममय जगत्) में तरण सम्भव हो सकेगा।



(श्रीमद्भा. १२/११/३१)

धर्म का मार्ग अष्टविध है और वही अष्टविध (आठ प्रकार) मार्ग परमात्मा हरि का स्वरूप है। 'धृ धारणपोषणयोः' धातु से धर्म शब्द बना है। जिससे लोक का धारण (स्थिति) और पोषण (पुष्टि) हो उसे धर्म कहते हैं। भगवान् हरि परमात्मा लोक के धारण-पोषण के हेतुरूप धर्मस्वरूप को धारण करते है और उस धर्मस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् हरि को प्राप्त करने के लिए ये आठ मार्ग हैं–

१. इज्या– वेद-शास्त्रानुकूल कर्तव्य कर्मरूप यज्ञादि इज्या है।

२. अध्ययन– उस परमात्मा धर्म पुरुष भगवान् वेदों-पुराणों-स्मृतियों आदि धर्मग्रन्थों को श्रद्धा और निष्ठापूर्वक श्रीगुरुमुखारविन्द से उपदिष्टानुसार ग्रहण कर उसका आचरण करना अध्ययन है।

३. दान– दान मानवजीवन को सफल बनाने के लिए सर्वोत्तम साधन है। दान से अन्तःकरण में सन्निविष्ट अनादि आविद्यात्मक मल रूप (राग) से निवृत्ति होती है। जगद्वस्तुओं में स्वाभाविक रूप से (अनादि आविद्यक कर्मविपाक से) जीवों का राग होता है, जो कि निर्मल-शुद्ध-स्वच्छ आत्मा पर मलरूप आवरण (लेप) कर देता है और जिससे उत्तरोत्तर जीवात्मा पाप कर्म के गर्त की ओर बढ़ते रहता है, अतः उस भयानक पाप और उसके अनिष्ट फल से रक्षण हेतु ऋषियों-मुनियों-महात्माओं ने परमात्मस्वरूप वेदादिक वचनों के उपदेश को अपने अभिप्राय से कहा है–'कर्त्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च' भगवान् हरि के प्रीत्यर्थ धन का विनियोग (दान) करना चाहिए। कितना करना चाहिए? कहते हैं–

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमता।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च॥ (स्कन्द पु. केदार ख. १२/३५)

न्याय से उपार्जित धन का दशवाँ अंश दान का अंश (भाग) है, अतः भगवान् हरि की प्रीति के लिए दान करे। इतना ही नहीं, इस धनलिप्सा की निवृत्ति के लिए–

यावद् भ्रियते जठरं तावत्सत्त्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥'

अपने पेट को भरने के लिए धन की जितनी आवश्यकता हो, वही उसका धन है और उतने पर ही उसका अधिकार होता है, उससे अधिक पर जो अपना अधिकार मानता है, वह चोर है, इसलिए वह दण्ड का भागी है। जो जीवात्मा मानव तीन-तिकड़म छल-प्रपञ्च से-दोहन-शोषण-भ्रष्टाचार से-उत्कोच से धन को इकट्ठा करता है, उसे किस श्रेणी में रखा जाय यह विचारणीय है और उसे दण्ड का क्या प्रावधान हो यह भी विचारणीय है। परन्तु दुर्भाग्यवश इस पावन (पवित्र) भारत की भूमि में जिसे कर्मभूमि कहा गया है, उसे पश्चिमी सभ्यता की भौतिक समृद्धि का आकर्षण ने इस तरह अपने आगोश में ले लिया है कि मानवता के वृत्तचित्र पर कालिख पुतता जा रहा है। अतः धार्मिकजनों-संतों महात्माओं-पण्डितों-संन्यासी-विरक्तों साधुओं को भगवान् श्रीहरि के प्रीत्यर्थ शीघ्र सार्थक उपाय सोचना चाहिए।

४. तप– तप भगवत्प्रीत्यर्थ-व्रतोपवास-पंचाग्नि सेवन-इन्द्रियदमन आदि स्वरूप होता है, जो भगवत्प्रीत्यर्थ परम साधन रूप है।

५. सत्यम्– सत्य भगवान् हरि के प्राप्ति और प्रीति के लिए मुख्य साधन स्वरूप है।

सत्येन तपते सूर्यः, सत्येन धार्यते मही।
सत्येन वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।

सत्य सूर्यलोक को ऊष्मा और प्रकाश प्रदान करता है, सत्य से ही पृथिवी सम्पूर्ण सृष्टि को धारण करती है, सत्य से ही वायु बहता है, इसलिए सत्य में ही सृष्टि की सभी क्रिया-कलाप संचालित होता है।

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च, सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च, सप्तभिर्धार्यते मही।। (ब्रह्म वै.पु.सृ.ख.)

गोमाता-विप्र-वेद-सती-सत्यवादी अलोभी और दानशील जनों के इस पृथिवी पर रहने के कारण ही यह पृथिवी टिकी है। इसलिए हमारा शास्त्र सदा सचेष्ट करता है–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः।।

सत्य बोलो-प्रिय बोलो, परन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो और प्रिय असत्यभाषण तथा आचरण मत करो, क्योंकि यही धर्म का सनातन (अनादि) स्वरूप है।

६. क्षमा– क्षमा दुष्टों-असाधुजनों और अज्ञानियों-बालकों द्वारा किये गये अपराध को सहन करना रूप स्वभाव है, जो धर्म का ही स्वरूप है, इसलिए कहा गया है–

क्षमा सत्यं दया दानं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहरणं, सन्तोषाऽस्तेयमेव च।।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः, सामान्यो दशधा स्मृतः।। (अग्नि पु. १७५/१०-११)

अतः क्षमाशील होना हरिप्राप्ति का ही मार्ग है।

७. दया– सभी भूतों में भगवान् हरि का स्मरण-दर्शन-अनुभव करते हुए उनके प्रति प्रेमार्द्रभाव (पद्मीभाव) ही दया है। अतः कहा गया है–

यं किञ्चिद् वीक्षसे पुत्र, भ्रममाणं द्विजोत्तमम्।
तस्यावश्यं त्वया कार्यं, विनयादभिवादनम्।।

जिस किसी को आप देखें, उसे अवश्य ही आदरसहित प्रणाम करना चाहिए। दयावृत्ति भगवदारुढ़ चित्तवृत्तिविशेष है–

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।

जब-जब दया का भाव उत्पन्न हो चित्तवृत्ति द्रवित हो, तब तब उस वृत्ति में हरि का प्राकट्य समझना चाहिए। तुलसी ने कहा है–

दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लगि घट में प्रान॥

इसलिए जब तक इस घट (शरीर) में प्राण रहे, तब तक दया का त्याग न करे।

८. अलोभ– जगत् के विभिन्न प्रकार के वस्तुओं में जीवात्मा को अनादि वासना के कारण लोभ प्राप्त होता रहता है, जो पाप का कारण बनता जाता है और जीवात्मा पाप पर पाप कर बैठता है तथा भगवान् हरि के मार्ग से दूर होते जाता है। विषयवस्तुओं के प्रति त्याग की भावना ही अलोभिता है।

• • ❁ • •

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय, ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय, विघ्नेशाय नमो नमः॥ (ब्र.वै.पु. गणपति ख. २३/३२)

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं क्रमशः ऐश्वर्य बीज-लज्जाबीज और काम बीज हैं, इनसे युक्त सुन्दरस्वरूप ब्रह्मस्वरूप तथा सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाले लोकों के ईश गणेश्वर को नित्य प्रणाम करता हूँ।

• • ❁ • •

शैवी विद्याः-'ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ॥
शाक्ति विद्या-'ॐ ह्रीं नमः शिवायै ॐ॥'

शैवी विद्या–इस शैवी विद्या की दीक्षा ग्रहण करने वालों के लिये 'ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ' यह मन्त्र गुरु द्वारा प्रदान किया जाता है और इसे शिवविद्या मन्त्र कहा जाता है। (शि.पु.वा.सं. १५)

शात्त्की विद्या– शात्त्की विद्या दीक्षा ग्रहण करने वाले साधक जिज्ञासु को 'ॐ ह्रीं नमः शिवायै ॐ' यह मन्त्र गुरु द्वारा प्राप्त कराया जाता है और इसी मन्त्र को शाक्ति विद्यामन्त्र कहा जाता है। (शि.पु.वा.सं. 15)

• • ❁ • •

ॐ अस्य श्रीमहमृत्युञ्जयमन्त्रस्य- वामदेवकहोलवशिष्ठा ऋषयः। पंक्तिर्गायत्री-अनुष्टुप् छन्दांसि। श्रीसदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रा देवताः। ह्रीं शक्तिः। श्रीं बीजम्। अभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः॥ मन्त्रः-ॐ हौं जूं सः ॐ भूभर्वः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं। उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्, ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ॥

उपर्युक्त महामृत्युञ्जय मन्त्र है, इस मन्त्र के वामदेव, कहोल और वशिष्ठ ऋषि हैं, पंक्ति गायत्री और अनुष्टुप् छन्द हैं तथा सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रदेवता हैं एवं ह्रीं शक्ति है और श्रीं यह बीज है। इस मन्त्र अभीष्ट-

सिद्धि हेतु विनियोग है। विनियोग शब्द से प्रयोजन या सम्बन्ध विवक्षित है अर्थात् अभीष्ट प्राप्ति कराने में सम्बन्ध का काम करता है।



सर्वे रसाश्च भावाश्च,
तरङ्गा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति,
यत्र स प्रेमसंज्ञकः॥
(चैतन्यचन्द्रोदये ३/८)

प्रेममार्गी (भक्ति मार्ग में स्थित) साधक जब अपने इष्ट परमात्मा में एकात्मता में लीन हो जाता हैं, तो सभी भाव अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र देवगण तथा सूर्य-चन्द्र आदि नक्षत्रगण एवं वायु आदि महाभूत उनके भाव के तरङ्ग में उन्मज्जित (ऊपर तैरना) और निमज्जित (भीतर तैरना) होते रहते हैं। जैसे सागर में विप्लव से जल के तरङ्ग ऊपर नीचे होते रहते हैं, उसी प्रकार उक्त साधक के उस अखण्ड भाव में सभी समाहित हो तदाकारता को प्राप्त होकर जलस्फुरण (तरङ्ग) के समान उत्प्लवित और अधोप्लवित होते हैं और जब साधकों की यह स्थिति हो जाती है, तो उसी को प्रेम कहा जाता है। (चैतन्यचन्द्रोदय ३/८)



मूलाधारात्सहस्त्रारपर्यन्तं सुषुम्नायां शुद्धस्फटिकमिव नादचैतन्यं ध्यायेत्। नादोध्वन्यात्मको मनुः।

तन्मध्ये चिन्तयेत् देवीं ऋज्वाकारातडित्प्रभाम्।
ओंकाररूपिणीं ज्योत्स्नां, आत्मरूपां शुभोदयाम्॥

मूलाधारचक्र से सहस्रार कमलदल पर्यन्त भावनामय प्राणवायु को ले जाकर वहीं स्थित सुषुम्नानाड़ी में शुद्धस्फटिक के समान नादचैतन्य ब्रह्म का ध्यान करे तथा नादब्रह्म में अपने को स्थिर करे। उस नाद चेतना में ऋज्वाकारा बिजली के सदृश प्रभावाली, ओंकारस्वरूपिणी ज्योतिस्वरूपा आत्मस्वरूपा से उदित होने वाली देवी का चिन्तन करे।



न वर्ण्यते कैः किल काशिकेयं,
जन्तोः स्थितस्यात्र यतोऽन्तकाले।

पचेलिमैः प्राकृतपुण्यभारैः,
ओंकारमोङ्कारपतीन्दुमौलिः॥ (स्क. का.ख.)

यह काशी किनके द्वारा वर्णना योग्य नहीं है अर्थात् सभी करते हैं। जिसमें स्थित जन्तुओं के शुभाशुभ कर्मों के परिपाक होने पर अन्त समय में चन्द्रमौली भगवान् शिव स्वयं तारक मन्त्र ॐ ब्रह्म मन्त्र का उपदेश देकर उन्हें मुक्त कर देते हैं। (स्क.पु.का.ख.ऋ)

काश्यामष्टङ्गयोगः

काश्यां वासः सज्जनानां प्रसंगः
गंगास्नानं पापकर्मारुचिश्च।
पुण्ये प्रीतिः स्वेच्छया लाभसौख्यंम्
दानं शक्त्या न प्रतिग्राह्यमत्र॥ (काशी ख. २/३४)

काशी में अष्टांग योग इस प्रकार है–१. काशी में निवास, २. सज्जनों का संग, .३. गङ्गस्नान, ४. पापकर्मों से घृणा, ५. पुण्यकर्मों में प्रीति, ६. स्वेच्छया प्राप्त वस्तुओं में सुख, ७. यथाशक्ति दान तथा ८. दान लेने से बचना। (काशी ख. २/३४)

काश्यां सप्तपुर्यः।

१. व्यापिकाकाशिका।
२. शङ्खोद्धारप्रदेशे द्वारका।
३. बिन्दुमाधवपार्श्वस्था विष्णुकाञ्ची।
४. उत्तरार्कादुत्तरा मधुरा वरणावधिः।
५. अयोध्या वायुकोणे सोमेश्वरसमीपतः।
६. असिसम्भेदकोणे गंगाद्वारं प्रकीर्तितम्।
७. वृद्धकालात्परे भागे कृत्तिवासेश्वरावधि
कालाकालपुरी ज्ञेया अवन्ती।

सभी तीर्थ तथा सभी देश विमुक्तिप्रद काशी में रहते हैं। काशी में सात पुरियाँ इस प्रकार हैं– १. काशिका जिसका अर्थ है व्यापक प्रकाश, २. शंखोद्धार प्रदेश में द्वारकापुरी है, ३. बिन्दुमाधव के पास विष्णु काञ्ची है, ४. क़ाशी में उत्तरार्क के उत्तर में मथुरा अर्थात् मथुरापुरी है, ५. काशी के वायुकोण में सोमेश्वर के समीप में अयोध्यापुरी है, जहाँ पर रामेश्वर लिङ्ग है, ६. असि नदी का जहाँ से भेद (संगम) है, वहाँ गङ्गाद्वार अर्थात् मायापुरी हरिद्वार है, ७. वृद्ध काल से लेकर कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग पर्यन्त महाकालपुरी अर्थात् उज्जैनी-अवन्ती नाम की पुरी है।

इस प्रकार अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, पुरी द्वारावती यह सात मोक्षदायिनी पुरी काशी में स्थित हैं।

मन्त्रमात्रस्याङ्गानि १४॥

१. कवचं, २. पञ्जरं, ३. हृदयं, ४. अष्टोत्तरशतनाम, ५. अङ्गस्तुतिः ६. मन्त्रं, ७. पुरश्चरणं, ८. अङ्गन्यासं, ९. करन्यासं, १०. माहात्म्यं, ११. सहस्रनाम, १२. स्तवराजः, १३. मालामन्त्रः, १४. अनुस्मृतिः। (प्रणवकल्पे)

मन्त्र मात्र के चौदह अङ्ग

प्रणवकल्प के अनुसार मन्त्र के चौदह अङ्ग कहे गये हैं। चौदहों अङ्गों के द्वारा अनुष्ठीयमान मन्त्र फल को देने में कल्पवृक्ष के समान समर्थ होता है। अतः साधक को इन निम्नलिखित चौदहों अङ्गों को उपासना में ग्रहण करना चाहिए। ये अङ्ग हैं– १. कवच का पाठ, २. पञ्जर स्तोत्र का पाठ, ३. मन्त्र के हृदय स्तोत्र का पाठ, ४. अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र का पाठ, ५. आराध्य की अङ्गस्तुति करना, ६. मन्त्र का जप, ७. मन्त्र का पुरश्चरण करना, ८. अङ्गन्यास करना, ९. करन्यास करना, १०. माहात्म्य का पारायण, ११. सहस्रनाम स्तोत्र पारायण, १२. स्तवराज का पाठ, १३. माला मन्त्र का जप और १४. अनुस्मृति (तत्त्वचर्चा कर परस्पर में सत्सङ्ग करना। (प्रणवकल्प)

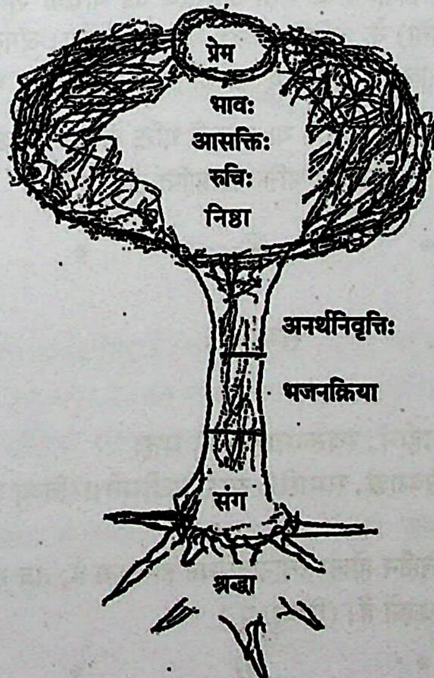
मनोमध्ये स्थितो मन्त्रो, मन्त्रमध्ये स्थितं मनः। मनोमन्त्रसमायुक्ते एतद्धि जपलक्षणम्॥ – कर्मठगुरु

जप लक्षण

जब जप करना प्रारम्भ हो, तो मन में मन्त्र और मन्त्र में मन का तादात्म्य होना चाहिए और जब तक ऐसी एकाकारता प्राप्त नहीं होती, तब-तक जप प्रारम्भ नहीं होता। जल में शक्कर मिलाने पर जिस तरह जल और शक्कर को अलग-अलग स्वरूप में नहीं देखते, बल्कि दोनों एक स्वरूप हो जाते हैं, उसी तरह मन्त्र और मन दोनों की एकात्मता को ही जप कहते हैं। (कर्मठगुरु)

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा,
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो,
मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥ (भाग. 11/29/34)

जिस समय मनुष्य समस्त कर्मों का परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मुझे विशेष ईप्सित हो जाता है। उस समय वह जीव भाव से छूटकर अमृतत्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर मुझसे मिल कर मेरा ही स्वरूप हो जाता है। (भाग. 11/29/34)



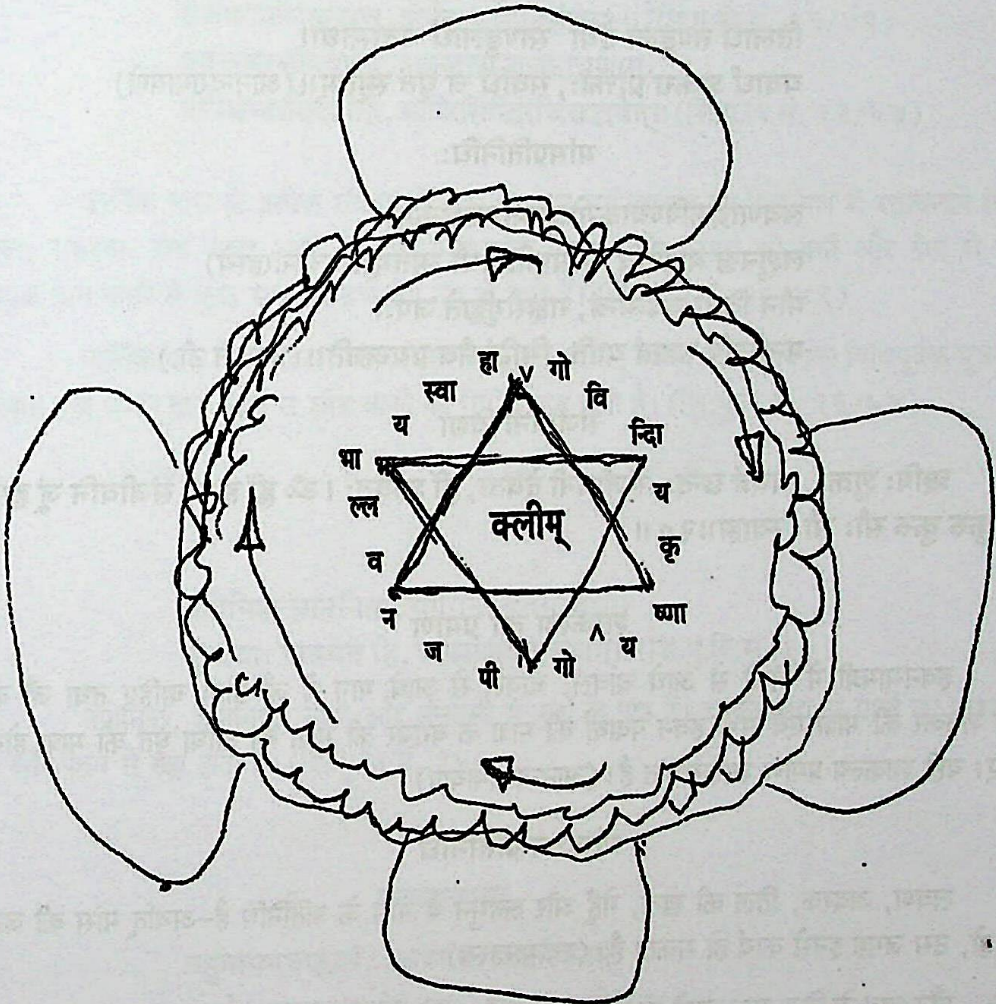
भक्तियोग मार्ग में नवधा भक्ति प्रसिद्ध है। भक्तिरूपी वृक्ष का मूल श्रद्धा है। जो भक्ति योग के लिये प्रथम सोपान है। मूल के बिना वृक्ष की स्थिति नहीं हो सकती, इसलिए यहाँ प्रतीक चित्र में श्रद्धा को वृक्षमूल के रूप में दर्शाया गया है। द्वितीय सोपान संग है। संग से सत्संग का अर्थ ग्रहण है। श्रद्धा के बिना सत्संग संभव नहीं होता। श्रद्धाहीन संग को कुसंग कहा जाता है। कुसंग में कामी-क्रोधी-लोभी-अहंकारी-विषयानुरागी आदि असद् विचारधारा के नरपशु (कहने को नर, परन्तु आचरण से पशु) होते हैं। वे स्वयं तो अज्ञानान्धकार के नरक में वास करते ही हैं औरों को भी उसी (नरक) में ढ़केल देने का स्वभाव वाले होते हैं। अतः वे खल-मूढ़-असाधु-कुमार्गी त्याज्य हैं। श्रद्धावान् साधक (मानव) कुसंग में निष्ठा नहीं रखते। वे सत्संग में श्रद्धा-निष्ठा-प्रेम रखते हैं, इसलिए वे ज्ञान को प्राप्त करते हैं–'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्' (गीता)। सत्संग से तृतीय सोपान (तृतीया भक्ति) भजनक्रिया की प्राप्ति होती है और भजनक्रिया (परमात्मा की आराधना) से अनर्थ की निवृत्ति होती है। सभी प्रकार के पापों का मूल अविद्या है, जो अनर्थरूपा है। इसलिए भामतीकार वाचस्पति मिश्र कहते हैं–'सर्वानर्थमूला विद्या' (भामती) सभी अनर्थों-पापों-अज्ञानों के मूल में अविद्या ही है। अविद्या की निवृत्ति होने पर अर्थात् अविद्यारूपी आवरण से आत्मा के अनावृत्त हो जाने पर ज्ञानोदय होता है और यथार्थ चिन्तन-दर्शन का मार्ग प्रशस्त होता है। जिससे परमात्मा में निष्ठा उत्पन्न होती है। यह निष्ठोत्पत्ति भक्ति का पाँचवाँ सोपान है। निष्ठा से परमात्मा में निष्ठा उत्पन्न होती है। निष्ठा से परमात्मा के चिन्तन-मनन-धारणा-ध्यान में अभिरुचि होती है, जो छठवाँ सोपान है। परमात्मा ईश्वर के प्रति रुचि होने पर वह ध्येय बन जाता है और उस सर्वगुणसम्पन्न-परमैश्वर्यसम्पन्न-सर्वप्रदाता-पूर्णकाम परमात्मा में साधक की पूर्ण धारणा बन जाती है और निरन्तर अभ्यास से परमात्मा में आसक्ति अर्थात् भक्ति का सातवाँ सोपान साधक-भक्त प्राप्त करता है। आसक्ति के प्रगाढ़ हो जाने पर साधक भक्त में भाव की उत्पत्ति होती है। भाव परमात्मा के सत्ता-अस्तित्व का वाचक शब्द है। परमेश्वर-परमात्मा ही सभी वस्तुओं में है। उनके भाव (सत्ता) के अतिरिक्त कोई भी भाव (सत्ता) जगत् में नहीं है, इस प्रकार का निश्चल-निश्छल-दृढ़-ध्रुव बोध ही भाव शब्द के अर्थ का द्योतक है। भाव रूप परमात्मा ही है–

यह भाव ही भक्तियोग का अष्टम सोपान या आठवीं भक्ति के नाम से कहा जाता है। भाव के सम्यग् परिपक्व हो जाने पर भक्ति के नवम सोपान प्रेमा भक्ति की प्राप्ति होती है।

समाधिः

तस्यैव कल्पनाहीनं, स्वरूपग्रहणं हि यत्।
मनस्तु ध्याननिष्पाद्यं, समाधिः सोऽभिधीयते॥ (विष्णु पु.)

जब मन संकल्प विकल्पविहीन होकर ध्यानावस्थित हो जाता है, तब साधक की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है, उसे ही समाधि कहते हैं। (विष्णु. पु.)



यह मन्त्र श्रीकृष्णोपासना के लिए है। षड्कोण का तात्पर्य षड्चक्र से है और परिधि का तात्पर्य देह से है। यन्त्र के बाह्य भूमि में कमलपत्र के चार संख्या का तात्पर्य चतुर्विध सृष्टि से है। गोपी का तात्पर्य ऐसे जीवात्मा से है, जो अपनी इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रक्षित कर परमात्मा में लगाया है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण का तात्पर्य परब्रह्म परमात्मा तथा 'क्लीम्' बीज का अर्थ पूर्णकाम से है अर्थात् जो जीवात्मा परमात्मा श्रीकृष्ण की उपासना में मनसहित अपनी इन्द्रियों को समर्पित कर देता है, वह आप्तकाम (पूर्णकाम) हो जाता है अर्थात् उसके प्राप्तव्य कुछ भी नहीं जाते।

साकल्य = प्रमाणम्

तिलार्धं तण्डुला देया स्तण्डुलार्धं यवास्तथा।
यवार्धं शर्करा प्रोक्ताः, सर्वार्धं च घृतं स्मृतम्॥ (आनन्दरामायणे)

मांसप्रतिनिधिः

लवणार्द्रकपिण्याकगोधूममांसपञ्चकम्।
लशुनञ्च महादेवि, मांसप्रतिनिधौ स्मृतम्॥ (श्यामारहस्ये)
मौनं विना जपेन्मन्त्रं, राक्षसैर्गृह्यते जपः।
मन्त्रोऽपि रुष्टतां याति, सिद्धिं नैव प्रयच्छति॥ (भागवत टी.)

संजीवनी विद्या

ऋषिः शुक्रः, गायत्रं छन्दः, संजीवनी देवता, ह्रीं शक्तिः। ॐ ह्रीं हं सः संजीवनि जूं हंसः कुरु कुरु कुरु सौः सौः स्वाहा॥२०॥

शाकल्य का प्रमाण

हवनसामग्री में तिलों से आधे चावल, चावल से आधे भाग में जौ होना चाहिए तथा जौ का आधा शक्कर की मात्रा एवं सभी हवन पदार्थों की मात्रा के बराबर की मात्रा का आधा घृत की मात्रा होनी चाहिए। यही शाकल्य प्रमाण शास्त्रसम्मत है। (आनन्द रामायण)

मांस का प्रतिनिधि

लवण, अदरक, तिल की खल, गेहूँ और लहसुन ये मांस के प्रतिनिधि है–अर्थात् मांस की जहाँ विधि हो, उस जगह इनसे कार्य हो सकता है। (श्यामारहस्य)

मौन भाव के बिना मन्त्र जपने पर जप का फल राक्षस ले लेते हैं और मन्त्र भी रुष्ट होकर सिद्धि प्रदान नहीं करता है। (भागवत टीका)

संजीवनी विद्या

संजीवनी विद्या के ऋषि शुक्र हैं, छन्द गायत्री तथा देवता संजीवनी एवं ह्रीं बीज शक्ति है। संजीवनी मन्त्र–'ॐ ह्रीं हं सः संजीवनि जूं हंसः कुरु-कुरु-कुरु सौः-सौः स्वाहा' इस प्रकार है और इस विद्या के मन्त्रजापक को जप से पूर्व तथा बाद में इस प्रकार इन विद्या देवता का भी ध्यान करना चाहिए।



कार्तिकादित्यवारेषु, नृणामादित्यपूजनात्।
तैलकार्पासदानात्तु, भवेत् कुष्ठादिसंक्षयः॥ (शि.पु.वि.सं. १६/४९)
कृत्तिकाभौमवारेषु, स्कन्दस्य यजनान्नृणाम्।
दीपघण्टादिदानाद्वै, वाणिसिद्धिरचिराद्भवेत्॥ (शि.पु.वि.सं. १६/५४)

कार्तिक मास के प्रत्येक रविवार के दिन भगवान् सूर्यनारायण का ताम्र पात्र में रक्तचन्दन मिश्रित जल, रक्तपुष्प, रक्त नैवेद्य आदि के द्वारा विधिपूर्वक पूजन करके कपास की बत्ती और तैल से संयुत दीपक दान करने से कुष्ठ सम्बन्धी व्रण रोग नष्ट हो जाते हैं। (शि.पु.वि.सं. १६/४९)

कार्तिक मास के प्रत्येक भौमवार (मंगलवार) को भगवान् स्कन्द (कार्तिकेय)का विधिपूर्वक पूजन कर दीपक तथा घण्टा दान करने से शीघ्र वाणी की सिद्धि प्राप्त होती है। (शि.पु.वि.सं. १६/५४)



तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा, योगिनो यतयस्तथा।
पूजायाः पात्रमेते हि, पापसंक्षयकारणम्॥ (शि.पु.वि.सं. १५)

तपोनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ, योगी और संन्यासी ये पूजा के पात्र हैं। इनकी पूजा से पापों का नाश होता है और पतन से रक्षा होती है। (शि.पु.वि.सं. १५)

१ दशाङ्गदानम्

बहुमानमथाह्वानं, २अभ्यंगं ३पादसेवनम्।
वासो४ गन्धाद्य५र्चनं च, घृतापूपरसोत्तरम्॥
षड्रसं ६व्यञ्जनं चैव, ७ताम्बूलं दक्षिणोत्तरम्८।
९नमश्चानुग१० मश्चैव, स्वन्नदानं दशाङ्गकम्॥ (शि.पु.वि.सं. १५)

दशाङ्ग दान

तपोनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ, योगी और यति (संन्यासी) इनके अपने आश्रम (गृह) में आने पर दशाङ्ग दान करना चाहिए। वे दशाङ्ग दान ये हैं–१. सम्मानपूर्वक आगत को बुलाना, २. स्नानादि सामग्री आदरपूर्वक अर्पण करना, ३. पादसेवा अर्थात् थकान दूर करने के लिए पैर दबाना, ४. वस्त्रादि देना, ५. सुगन्धित चन्दनादि से अर्चना करना तथा घृत में पकाये गये पूपादि (मालपूआ आदि) भोजन हेतु अर्पण

करना, ६. षड्रस व्यञ्जन से तृप्त करना, ७. भोजन के बांद ताम्बूलादि अर्पण करना, ८. दक्षिणा देना, ९. प्रणाम करना और १०. जाते समय कुछ दूर उनके साथ उनके पीछे-पीछे जाना।



प्रणवं द्विविधम्
सूक्ष्मम् ।।ॐ।।
स्थूलम् ।।नमः शिवाय।।
मन्त्रेणार्थानुसंधानं, स्वदेहविलयावधि। (शि.पु.वि.सं. १७)

वह प्रणव स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से दो प्रकार का कहा है। उसमें 'ॐ' एकाक्षर सूक्ष्म प्रणव है तथा 'नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षर स्थूल प्रणव है। प्रणव का सूक्ष्म रूप 'ओम्' अव्यक्त है और दूसरा पञ्चाक्षर 'नमः शिवाय' सुव्यक्त है। इस प्रणव मन्त्र के द्वारा अर्थ का अनुसन्धान तब तक करना चाहिए, जब तक देह का लय उसमें न हो जाय। इसी का नाम उपासना है। (शिवपु. वि.सं. १७)



श्रीरामेति पदं चोक्त्वा, जयराम ततः परम्।
जयद्वयं वदेत्प्राज्ञो, रामेतिं मनराजकः।।
त्रयोदशार्णः। सर्वकामदः।

श्रीरामः ऋषि। जगती छन्दः। श्रीरामो देवता। प्रणवो बीजम्। क्लीं शक्तिः। ह्रीं कीलकम्। (रामरहस्योपनि. २)

श्रीराम पद को पूर्व बोलकर उसके पश्चात् जय राम इतना बोले, उसके बाद जय राम बोले। (श्रीराम जय राम जय जय राम) यह मन्त्र मनु (जापक) के लिए मन्त्रराज है। यह तेरह वर्ण का मन्त्र सभी मनोरथों को सिद्ध करने वाला है।

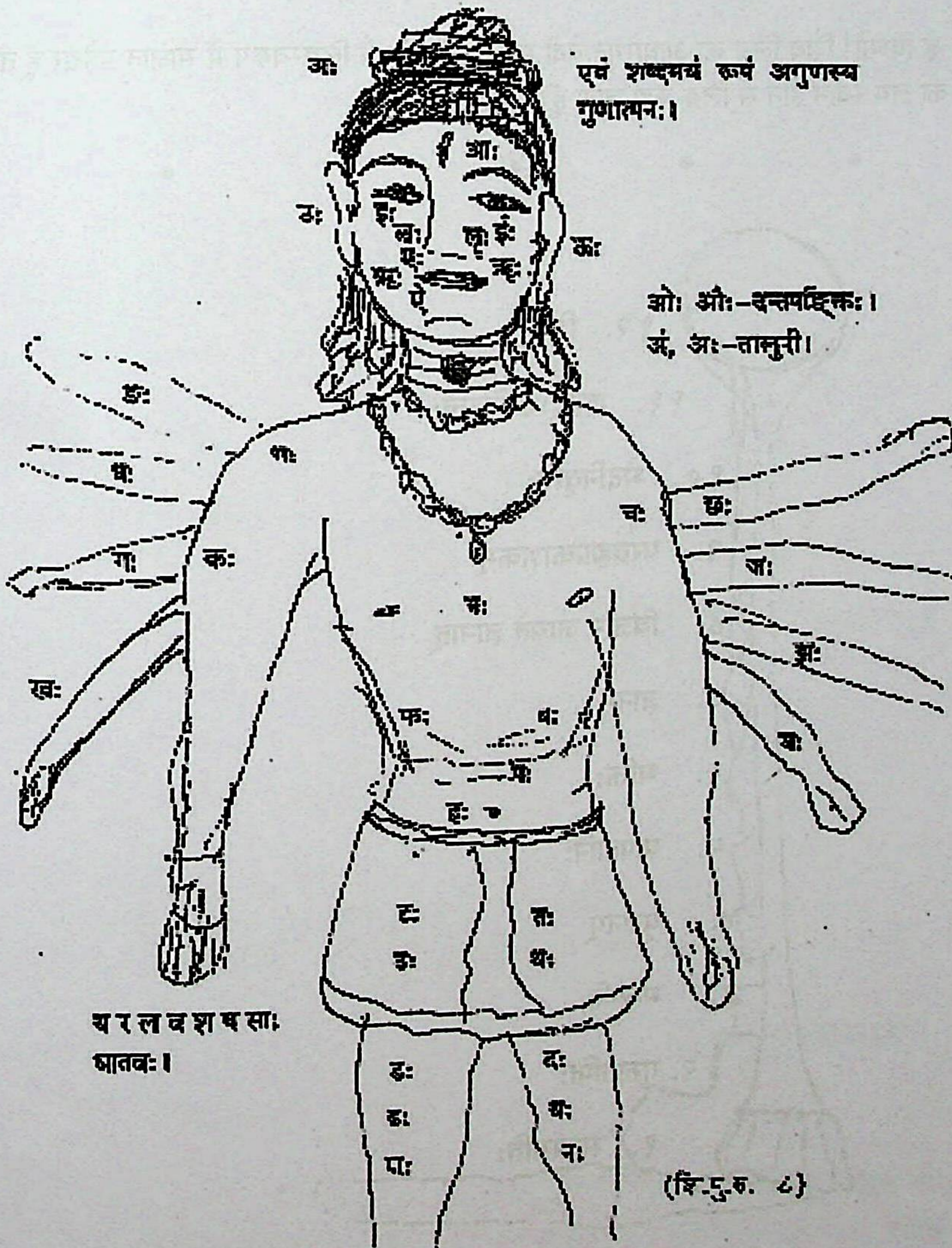
इस मन्त्र के श्रीराम ऋषि, जगती छन्द और श्रीराम देवता हैं। इस मन्त्र के प्रणव बीज, क्लीं शक्ति और ह्रीं कीलक है।



भक्तित्रिकं न यस्यास्ति,
काम मोहादयो मुने।
विकारास्तस्य सद्यो वै,
भवन्त्यखिलदुःखदाः।। (शि.पु. २/१)

हे मुने! जहाँ (जिस व्यक्ति में भक्ति ज्ञान और वैराग्य इन तीनों की उपस्थिति नहीं होती), वहाँ सभी दुःखों के मूल काम, क्रोध, लोभ और मोहादि तत्काल उपस्थित हो जाते हैं। (शि.पु. २/१)

⊛ ⊛ ✿ ⊛ ⊛

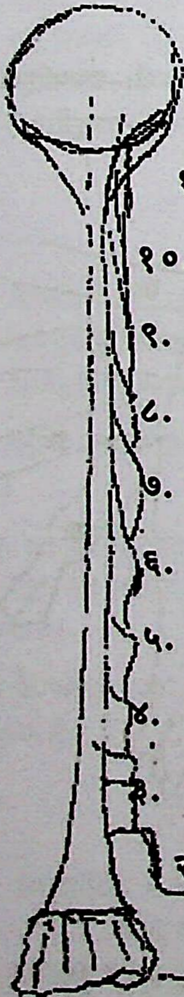




लिङ्गवेदिर्महादेवी, लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
लयानाल्लिङ्गमित्युक्तं, तत्रैव निखिलं जगत्॥
(शि.पु.रु. ९)

हे विष्णो! शिव लिङ्ग का आधारभूत वेदी महादेवी हैं और मैं लिङ्गस्वरूप में साक्षात् महेश्वर हूँ तथा त्रिलोकी का लय स्थान होने से लिङ्ग कहा जाता हूँ। (शि.पु.रु. ९)





सत्कर्मों का मूल सद्गुण तथा उसका भी मूल सत्सङ्गति है। सत्सङ्गति से उत्तम गुरु की प्राप्ति होती है। उत्तम गुरु से उत्तम मन्त्रादि की विधि की प्राप्ति होती है तथा विधिपूर्वक मन्त्रज्ञान से देवपूजन की योग्यता प्राप्त होती है। पूजन से पाप हानि होती है। पापक्षय होने पर भक्ति की प्राप्ति हो जाती है और भक्ति से ज्ञान की प्राप्ति होकर उस ज्ञान से परमात्मविज्ञान की प्राप्ति होती है। परमात्मविज्ञान से परब्रह्म के प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है और उससे भेदनिवृत्ति होती है। उसके बाद सर्वद्वन्द्व दुःखादि की निवृत्ति हो जाने पर जीव शिव स्वरूप हो जाता है। यहाँ शिवोपासना के द्वादश सोपान कहे गये हैं, जो साधकों को क्रमोपासना ज्ञान को प्रकट करता है। (शि.पु.रूप. १२)



अविमुक्तं स्नानम्।
भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यतः।
(शि.पु.रु. १६)

दोनों भृकुटियों और नासिका इन तीनों के मध्य का जो स्थान है, वह अविमुक्त काशी है और यहाँ ध्यान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। (शि.पु.रू. १६)

रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां
वक्षस्याष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः।। (पदार्थादर्शः)

रुद्राक्षधारण स्थान

कण्ठ में ३२ रुद्राक्ष धारण करे, मस्तक में ४० धारण करें। दोनों कानों में छः-छः रुद्राक्ष धारण करें तथा दोनों हाथों में १२-१२ रुद्राक्ष धारण करे। इसी प्रकार दोनों भुजाओं में १६-१६ रुद्राक्ष धारण

करें। दोनों आँखों के लिए एक, शिखा में एक और वक्षस्थल में १०८ रुद्राक्ष धारण करें। इस विधि से रुद्राक्ष धारण करने से प्राणी स्वयं शिव हो जाता है। (पदार्थादर्श)

जो साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों का भक्तिपूर्वक मुकुट बनाकर धारण करता है, वह पुरुष सर्वश्रेष्ठ होता है तथा जो भक्त तीन सौ साठ रुद्राक्षों की तीन लड़ी का यज्ञोपवीत बनाकर धारण करता है, वह शिव समान स्तुति के योग्य हो जाता है।

१४ मुख रुद्राक्ष धारण मन्त्र

एक से चौदह मुख के रुद्राक्ष के धारण मन्त्र क्रमशः ये है–एक मुखी का 'ॐ ह्रीं नमः', दो मुखी का 'ॐ नमः', तीन मुखी का 'ॐ क्लीं नमः', चारमुखी का 'ॐ ह्रीं नमः', पाँच मुखी का 'ॐ ह्रीं नमः', छः मुखी का 'ॐ ह्रीं हुं नमः', सात मुखी का 'ॐ हुँ नमः', आठ मुखी का 'ॐ हुँ नमः', नौ मुखी का 'ॐ ह्रीं हुं नमः', दस मुखी का 'ॐ ह्रीं नमः', ग्यारह मुखी का 'ॐ ह्रीं हुं नमः', बारह मुखी का 'ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः', तेरह मुखी का 'ॐ ह्रीं नमः', चौदह मुखी 'का 'ॐ नमः'। (शिव.पु.वि. २५)

• • ✿ • •



अनन्तं पूजयेद्यस्तु, मध्याह्ने सुसमाहितः।
अनन्तां लभते सिद्धिं, चक्रपाणिप्रसादतः॥
अनन्तमित्यहं पार्थ?, मम रूपं निबोधय।
आदित्यादि ग्रहात्मा यः, काल इत्यपि पठ्यते॥

मन्त्र–

अनन्तसंसारमहासमुद्रे, मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव!।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व, अनन्तसूत्राय नमो नमस्ते॥

जो मध्याह्न में समाहित होकर अनन्त की पूजा करता है। वह भगवान् चक्रपाणि श्रीकृष्ण की कृपा से अनन्त सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। हे पार्थ! इस अनन्त को मेरा ही स्वरूप समझो। सूर्यादि ग्रहों

में जो आत्मा है, वह मैं ही हूँ, इसलिए मुझे लोग काल भी कहते हैं। ये कला-काष्ठा-मुहूर्त-दिवा-रात्रि-पक्ष-मास-ऋतु और नक्षत्र तथा युग आदि जो कालिक व्यवस्थाएँ हैं, उन सभी में काल की स्थिति रहती है, उसी काल की स्थिति के अनन्त होने से मैं अनन्त कालस्वरूप कहलाता हूँ।

मन्त्र–हे वासदेव! अनन्त संसाररूपी महासागर में डूबते हुए मुझको उबारो तथा मुझे अनन्त स्वरूप परमात्मा से मिलाओ। हे सूत्रात्मा अनन्त! आपके लिए मेरा भूयो-भूयो नमस्कार है।



	ग्रहाः	अधि-देवताः		प्रत्यधि-देवताः	
१.	सूर्यः	शिवः	+	अग्निः	पद्मासनः पद्मकरः, पद्मगर्भसमद्युतिः। सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च, द्विभुजः स्यात्सदारविः॥१॥
२.	चन्द्रः	शिवा	+	जलम्	श्वेतः श्वेताम्बरधरः, श्वेताश्वः श्वेतवाहनः। गदापाणिर्द्विबाहुश्च, कर्तव्यो वरदः शशी॥२॥
३.	भौमः	स्कन्दः	+	पृथ्वी	रक्तमाल्याम्बरधरः, शक्तिशूलगदाधरः। चतुर्भुजो रक्तरोमा, वरदः स्याद्धरासुतः॥३॥
४.	बुधः	विष्णुः	+	विष्णुः	पीतमाल्याम्बरधरः, कर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिः, सिंहस्थो वरदो बुधः॥४॥
५.	गुरुः	ब्रह्माः	+	इन्द्रः	देवदैत्यगुरुस्तावत् पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ।
६.	शुक्रः	इन्द्रः	+	इन्द्राणी	दण्डिनौ वरदौ कार्यौ, साक्षसूत्रकमण्डलू॥५, ६॥
७.	शनिः	यमः	+	प्रजापतिः	इन्द्रनीलद्युतिः शूली, वरदो गृद्धवाहनः। बाणाबाणासनधरः, कर्त्तव्योऽर्कसुतस्तथा॥७॥
८.	राहुः	कालः	+	सर्पः	करालवनः खड्ग, चर्मशूली वरप्रदः। नीलसिंहासनस्थश्च, राहुरत्र प्रशस्यते॥८॥
९.	केतुः	चित्रगुप्तः	+	ब्रह्मा	धूम्रा द्विबाहवः सर्वे, गदिनो विकृताननाः। गृध्रासनगता नित्यं, केतवः स्युर्वरप्रदाः॥९॥

(मत्स्यपु. ९४)

सूर्य– सूर्यग्रह के अधिदेवता शिव तथा प्रत्यधिदेवता अग्नि हैं, ये कमलासन पर विराजमान तथा हाथ में कमल पुष्प लिए हुए हैं और इनकी कान्ति पद्मगर्भ के द्युति के समान है। सूर्य के रथ में सात अश्व हैं तथा उनकी सात ही लगाम है और उन्हें दो भुजाएँ हैं।

चन्द्र– चन्द्रग्रह के अधिदेवता शिवा भवानी हैं और इनके प्रत्यधिदेवता जल है। चन्द्रमा का अङ्ग श्वेत, वस्त्र श्वेत, श्वेत घोड़ा, श्वेत ही रथ तथा हाथ में गदा तथा ये वरदमुद्राधारी हैं।

भौम–भौमग्रह के अधिदेवता स्कन्द और प्रत्यधिदेवता पृथिवी हैं। ये लाल माला और लाल वस्त्रधारी, रक्त रोमावलीधारी हैं। चारों भुजाओं में शक्ति-शूल-गदा और वरमुद्रा धारण किये हुए हैं।

बुध–बुधग्रह के अधिदेवता विष्णु और इनके प्रत्यधिदेवता भी विष्णु हैं, ये पीले वस्त्र तथा पीत मालाधारी हैं। बुध पीत कर्णिकार पुष्प के समान वर्ण के हैं और हाथ में खड्‌ग-चर्म, गदा धारण किये हुए सिंह पर आरूढ़ तथा वरदमुद्राधारी हैं।

गुरु–गुरु के अधिदेवता ब्रह्मा और प्रत्यधिदेवता इन्द्र हैं, ये चार भुजाधारी, हाथ में दण्ड लिये हुए तथा वरद मुद्राधारी, पीताम्बरी और पीतमालाधारी हैं तथा रुद्राक्षमाला एवं कमण्डलु धारण किये हुए हैं।

शुक्र–शुक्रग्रह के अधिदेवता इन्द्र और प्रत्यधिदेवता इन्द्राणी हैं, ये श्वेतवस्त्रधारी तथा चतुर्भुज हैं और हाथ में दण्ड लिये हुए तथा वरद मुद्राधारी, रुद्राक्षमाला तथा कमण्डलुधारी हैं।

शनि–शनि के अधिदेवता यमराज और प्रत्यधिदेवता प्रजापति हैं और ये इन्द्र नीलमणि के समान वर्ण के हैं एवं शूलधारी हैं। शनि के हाथों में बाण-धनुष-शूल तथा वरदमुद्रा है, इनका गिद्ध वाहन है।

राहु–राहू के अधिदेवता काल और प्रत्यधिदेवता सर्प हैं, ये कराल मुख वाले खड्‌ग-चर्म और शूलधारी तथा वरदमुद्रा को धारण किये हुए हैं। ये नीलगिरि पर्वत के वर्ण के सिंहासन पर विराजमान हैं।

केतु–केतु के अधिदेवता चित्रगुप्त तथा प्रत्यधिदवेता ब्रह्मा हैं, इनका स्वरूप धूम्र वर्ण वाला है। ये ग्रह दो भुजा वाले हैं। केतु गदाधारी विकृत मुखवाले गृद्ध के आसन पर स्थित हैं। (मत्स्यपु. ९४)

गौः सूक्तं (अथर्ववे. 10/10)



गो=सूक्तम् (अथर्ववे. १०/१०)

नमस्ते जायमानायै, जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो, रूपायाघ्ने ते नमः॥

यया द्यार्यया पृथिवी, ययापो गुपिता रमाः।
वशां सहस्रधारां, ब्रह्मणाच्छावदामसि॥

गोसूक्त– जिस गो माता के अमृत रूपी दूध से यह सृष्टि वर्धन प्राप्त करती है और जिसके अमृत दूध से पूर्व में वर्धन हुई है उन गायों को प्रणाम है अथवा जो पूर्व जननी है और वर्तमान में जननी है, उन दोनों गो माता को प्रणाम करता हूँ। जिस गौ माता से द्युलोक, पृथिवी, जल और लक्ष्मी रक्षित होती हैं तथा जो अपने अनन्त दूध की धारा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर वर्धित करती है, उसे नमस्कार है। (अथर्व.वे. १०/१०)

सिन्दूरारुणकान्तिमिन्दुवदनं, केयूरहारादिभिः,
दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं, स्वर्गस्य सौख्यप्रदम्।
अम्भोजामयशक्तिकुक्कुटधरं, रक्ताङ्गरागांशुकं,
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां, भीतिप्रणाशोद्यतम्॥ (शारदा ति. १३/१२१)

सिन्दूर के समान रक्तकान्ति वाले, चन्द्रमा के समान मुख वाले, दिव्य केयूरहारादि से विभूषित शरीर वाले और जो स्वर्गसुख प्रदान करने वाले हैं तथा जो अपने हाथों में कमलमय शक्ति और कुक्कुट अस्त्र तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं लाल रंग का रेशमी वस्त्र एवं अङ्गराग धारण किये हुए हैं, ऐसे भगवान् सुब्रह्मण्य कार्तिकेय को हम नमस्कार करते हैं, जो प्रणाम करने वालों भक्तों को सदा कल्याण करने को उद्यत हैं। (शारदाति. १३/१२१)



त्रिजटावरदानम्। (आ.रा. १२)

कार्तिके माधवे माघे, चैत्रे माघचतुष्टये।
कृत्वाग्रे त्रिदिनं स्नानं, न कृतं पौर्णिमोर्ध्वतः॥
तेषां मासकृतं पुण्यं, हरत्वं वचनान्मम।
अशुचीनि गृहाण्येव, तथा श्राद्धहवींषि च॥
क्रोधाविष्टेन दत्तानि, त्रिजटे तानि तुभ्यं हि॥
पादशौचमनभ्यंगं, तिलहीनं च तर्पणम्।
तथा श्राद्धमदक्षिणम्॥

त्रिजटा के वरदान

सीता जी ने कहा–हे त्रिजटे! कार्तिक, वैशाख, माघ और चैत्र के पूर्व के तीन दिनों में जो पुरुष तुम्हारे उद्देश्य से स्नान करेंगे, उससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी तथा इन चारों मास की पूर्णमासी के पश्चात् जो स्नान नहीं करेंगे, उनका चारों मासों के स्नान का फल तुम्हें मिलेगा अर्थात् तुम उसको ले लेना। हे त्रिजटे! मैं तुम्हें और भी वरदान देती हूँ। अपवित्र घर में जो पुरुष विधिपूर्वक भी श्राद्ध हवन करेंगे, उनका फल भी तुम्हें मिलेगा एवं पवित्र गृहों के भी विधिपूर्वक किये गये श्राद्ध और हवनादि यदि शान्तभाव से न होकर क्रोधाविष्ट होकर किये जायेंगे, तो उनका भी फल तुम हर लेना।



गृहस्थस्य च नवकाः। (दक्षस्मृतिः ३)

१. सुधानव–

मुखं-चक्षु-र्मनो-वाचं, सौम्यं दद्याच्चतुष्टयम्।
अभ्युत्थानमिहागच्छ, पृच्छालापप्रियान्वितः॥
उपासनमनुब्रज्या, कार्यण्येतानि यत्नतः।

२. नवकर्माणि–

सन्ध्या स्नानं जपो होमः, स्वाध्यायो देवतार्चनम्।
वैश्वदेवं तथातिथ्यं, उधृतं चापि शक्तितः॥
पितृदेवमनुष्याणां, दीनानाथतपस्विनाम्।
मातापितृगुरूणां च, संविभागो यथार्हतः॥

३. विकर्माणि–

अनृतं पारदार्यं च, अभक्ष्यभक्षणं, स्तेयं,
अगम्यागमनं, अपेयपानं, हिंसनम्।
अश्रौतकर्माचरणं, मित्रधर्मबहिष्कृतम्॥

४. गोप्यानि–

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं, मन्त्रमैथुनभेषजम्। तपो दानापमानौ च।

५. प्रकाश्यानि–

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च, दानाध्ययनविक्रयाः।
कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहःपापमकुत्सनम्॥

६. सफलदानानि–

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे, विनीते चोपकारिणि।
दीनानाथविशिष्टेभ्यः॥

७. निष्फलदानानि–

धूर्ते वन्दिनि मन्दे च, कुवैद्ये कितवे शठे।
चाटुचारणचौरेभ्यो, दत्तं भवति निष्फलम्॥

८. अदेयानि–

सामान्यं याचितं न्यासं, आधिर्दाराश्च तद्धनम्।
क्रमायातं च निःक्षेपः, सर्वस्वं चान्वये सति॥

९. ईषद्दानानि–

भूमिरापस्तृणानि च पादशौच मभ्यङ्गमः।
आश्रयः शयनं, किंचिदन्नं अनश्ननवेत्॥

नव सुधा

प्रत्येक व्यक्ति को अपने घर आने वाले अतिथि के लिए नीरार्घ्य करना चाहिए। सोम्यतापूर्वक सरल शुचिशील स्वभावयुक्त होकर उसकी तरफ मुख करके देखे तथा उसके आतिथ्य में मन लगावे, सुन्दर मधुर वाणी बोले, उसके आने पर उठ जाये और कहें कि आइये श्रीमन्! प्रेमपूर्वक उसका कुशल पूछे। उसे सुन्दर आसन दे और जाने पर कुछ दूर तक उसे विदा करे। ये नव सुधा (अमृत) कहा गया है। (दक्षस्मृति)

नव कर्म

ब्राह्मणों के नौ कर्म–१. सन्ध्या, २. स्नान, ३. जप, ४. होम, ५. वेदाध्ययन, ६. देवार्चन, ७. वैश्वदेव, ८. अतिथिसत्कार, ९. यथाशक्ति दान–ये नौ कर्म ब्राह्मणों के कहे गये हैं। देवता, पितृ, मनुष्यों, दीन=नाथ, तपस्वियों तथा माता-पिता, गुरु- इनका यथायोग्य सम्मान और सत्कार के लिए अर्जित धन का विभाजन कर देना चाहिए।

विकर्म

असत्य बोलना, परस्त्री सेवन करना, अभक्ष्यभक्षण करना, अगम्यागमन करना, अपेय सुरादि का पान करना, हिंसा करना, अवैदिक कर्माचरण और मित्रधर्म से रहित आचरण–ये विकर्म अर्थात् निन्दित कर्म हैं।

गोपनीय

अपनी अवस्था, गृह के छिद्र (कटिया), मन्त्र, स्त्रीसंभोग, औषधि, तप, व्रत एवं दान और अपमान ये छिपाने योग्य हैं।

प्रकाशनीय

अपनी मूढ़ता, लिया हुआ ऋण, अपवित्रता, दान, अध्ययन, निन्दित कर्म, कन्यादान, वृषोत्सर्ग और एकान्त में किये गये पाप तथा अकुत्सा ये प्रकाशन (दूसरे से कहने) करने योग्य हैं।

सफल दान

माता-पिता-मित्र-गुरु-सुशील-उपकारी-दरिद्र और विद्वान् आदि को दिये दान सफल (फलदायी) होते हैं।

निष्फल

धूर्त, वन्दी, जड़बुद्धि अर्थात् अयोग्य, निन्द्रित विद्या वाले, छली, दुष्ट, चापलूस, चारण और चोरों को दिया दान निष्फल होता है।

अदेय वस्तु

सामान्य रूप से याचित, न्यास (धरोहर), मानसिक रोग, दारा (स्त्री) और स्त्री का धन, क्रमागत धन और सर्वस्व ये देने योग्य नहीं हैं।

स्वल्पदेय वस्तु

भूमि, जल, तृण, पाद शुद्धि, तेलमर्दन, आश्रय, शयन आदि किंचिद् देय हैं।



जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं, श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च॥ (अत्रि सं. १४०)

केवल जन्म से ही ब्राह्मण जानना चाहिए तथा निषेकादि सोलह संस्कारों से द्विज होता है, क्योंकि वह दूसरा जन्म माना जाता है। 'द्वाभ्यां संस्काराभ्यां जायत इति द्विजः'। तदन्यतर विद्या से इस द्विज में विप्रता आती है और तीनों योग्यताओं से सम्पन्न श्रोत्रिय होता है। (अत्रि सं १४०)

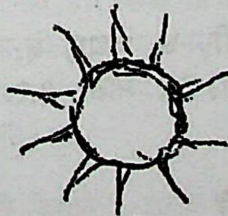


सारूप्यं तव पूजने शिव इति महादेवेति संकीर्तने,
सामीप्यं शिवभक्तिधूर्य जनता सांगत्य संभाषणे।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनु ध्याने भावानीपते,
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् कृतार्थोऽस्म्यहम्।। (शिवानन्दल. २८)

भगवान् शिव से भक्त कहता है कि–स्वामिन्! आपकी भक्ति से मेरे लिए चारों प्रकार की (सारूप्य-सामीप्य-सालोक्य-सायुज्य) मुक्ति अनायास ही प्राप्त है। आपके पूजन समय में सारूप्य मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि कहा है। 'देवो भूत्वा देवयंजेत्' 'देवता होकर देवों की पूजा करे तथा नाऽरुद्रो रुद्रमर्चते अर्थात् रुद्र ही रुद्र की पूजा करता है। इस प्रकार पूजन में मुझे सारूप्य मुक्ति प्राप्त है। हे महादेव! इस कीर्तन के करते समय आप भक्तों के बुलाने पर आ ही जाते हैं, तो सामीप्य प्राप्त होने से सामीप्यमुक्ति मिल जाती है। शिवभक्ति में अग्रसर जनसमूह के साथ सम्भाषण से सालोक्य मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिए मैं आपके पूजन आदि से ही कृतार्थ हो गया हूँ। (शिवानन्द ल. २८)

जडता पशु कलङ्किता, कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव!।
अस्ति यदि राजमौले!, भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम्।। (शिवान.ल. ६९)

हे चन्द्रमौले! मुझमें जड़ता नहीं है। मैं चेतन हूँ और मुझमें पशुता भी नहीं है। मैं मनुष्य हूँ और भगवान् मुझमें चन्द्रमा जैसी कलङ्किता तथा सपा' की भाँति मुझमें कुटिलता भी नहीं है। अतः मुझे शरण में ले लो और यदि ये सब पशुता आदि मुझमें हैं भी तो भी मैं आपके आभूषण का पात्र नहीं हूँ क्या? क्योंकि आपके पार्षद नन्दी क्या पशु नहीं है? चन्द्रमा आपका जो भूषण है, क्या कलङ्कयुक्त नहीं है? सर्प जो आपने धारण किये हैं सर्वथा कुटिल गति के नहीं हैं? मुझसे ही आपको क्या घृणा है। (शिवानन्दलहरी ६९)



एहि सूर्य सहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर।।

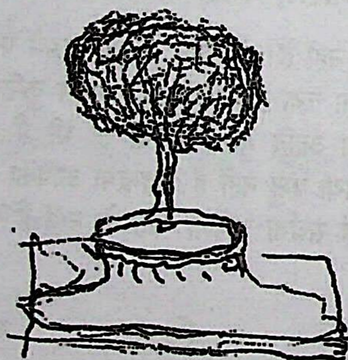
नमो विवस्वते ब्रह्मन्, भास्वते विष्णुतेजसे।
जगत्सवित्रे शुचये, नमस्ते कर्मदायिने॥

हे सूर्य नारायण! तुम हजार किरण वाले हो। हे तेजों के भण्डार! हे जगत्स्वामिन्! हे दिवाकर! आप आएँ और मुझ पर अनुकम्पा करें। भक्ति द्वारा प्रदत्त मेरे अर्घ्य को ग्रहण करें। हे विवस्वान्! हे ब्रह्मा! हे भास्कर! हे विष्णु के तेज से युक्त जगत् के प्रेरक! हे सम्पूर्ण कर्म के सञ्चालक! हे परम पवित्र! आपके लिए हम नमस्कार करते हैं।



तुलसी

रविवारे च संक्रान्तौ, द्वादश्यां श्राद्धवासरे।
तुलसी नो विचिन्वन्ति, ह्यमायां पूर्णिमादिने॥
तुलस्यमृतजन्मासि, सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थे चिनोमि त्वां, वरदा भव शोभने॥



१६ मातृकाः-१. गौरी, २. पद्मा, ३. शची, ४. मेधा, ५. सावित्री, ६. विजया, ७. जया, ८. देवसेना, ९. स्वधा, १०. स्वाहा, ११. माता, १२. लोकमाता, १३. धृतिः, १४. पुष्टिः, १५. तुष्टिः, १६. हृष्टिः।

तुलसी

रविवार को, संक्रान्ति को, द्वादशी को तथा पितृश्राद्ध के दिन, अमावस्या और पूर्णमासी को तुलसी नहीं तोड़ना चाहिए।

तुलसी तोड़ने का मन्त्र

हे तुलसि! तुम अमृत से उत्पन्न हुई हो, तुम भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय हो, मैं तुम्हें केशव के लिए ही चुन रहा हूँ। इसलिए हे शोभने! तुम मुझे अभीष्ट वर प्रदान करो।

१६ मातृका—मंगल कार्यों में सदा पूजनीय ये १६ मातायें हैं। इनके बिना मंगल कार्य सम्पन्न नहीं होते हैं। गौरी अर्थात् पार्वती जी जो सभी मंगल कार्यों की अधिष्ठात्री हैं। पद्मा अर्थात् लक्ष्मी जी, भगवान् विष्णु की शक्ति हैं। शची अर्थात् इन्द्रदेव की ऐन्द्री शक्ति हैं। मेधा अर्थात् बुद्धि, जो बुद्धि स्मृति आदि की अधिष्ठात्री हैं। इसी प्रकार सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृगण, लोकमातृगण, धृति, पुष्टि, तुष्टि और हृष्टि ये षोडश मातृकाएँ हैं।



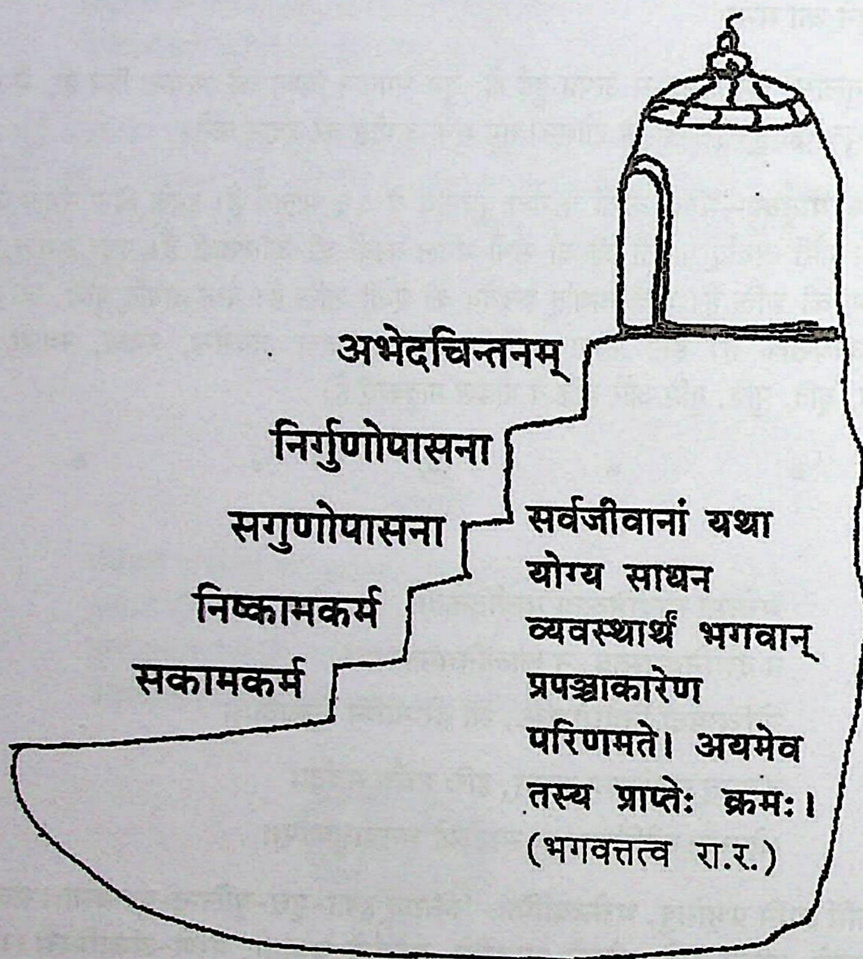
भक्तेस्तु सार्वत्रिकता सार्वदिकता-
न देशनियमस्तत्र, न कालनियमस्तथा।
नोच्छिष्टदौ निषेधोऽस्ति, श्री हरे नाम्नि लुब्धकः॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन्, हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च, स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्॥

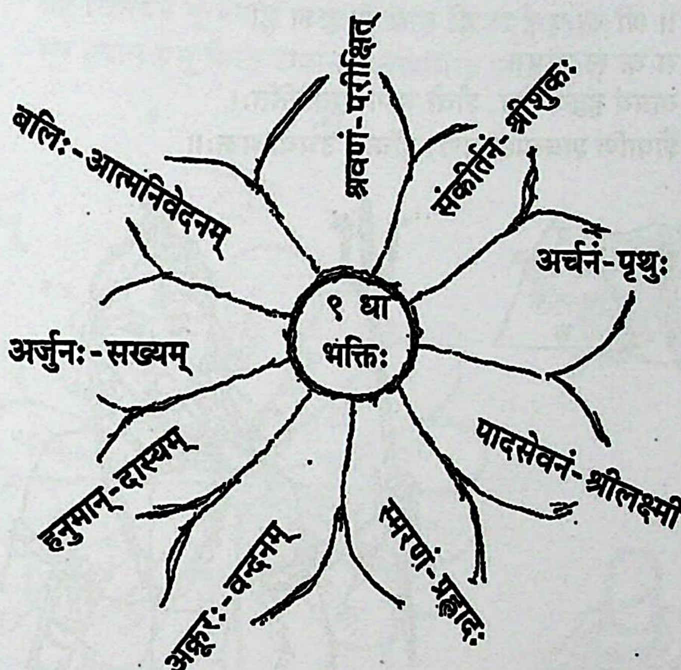
कर्मि ज्ञानि प्रभृतिषु, भक्तेर्व्याप्तिः- 'किरात् हूणा-गृध्र-पुलिन्द-पुलक्साः। सर्वावस्थासु च-गर्भे-प्रह्लादे, बाल्ये-ध्रुवे, यौवने-अम्बरीषे, बार्द्धके-ययातौ, मरणे-अजामिले। (श्रीमद्भा.टी. अन्विता २/९)

भक्ति तो सभी काल में सभी देश में हो सकती है, उसमें देश का, काल का, अधिकारी का, वर्णव्यवस्था का कोई नियम नहीं है। उसका उच्छिष्ट आदि में निषेध नहीं है। इसलिए हे राजन् उस भगवान् का भक्तिपूर्वक स्मरण-कीर्तन-श्रवण-मनन-सेवादि द्वारा अनुष्ठान करना चाहिए। यह भक्ति-कर्म-सांख्य-योग आदि सबसे व्यापक है। आत्मोद्धारिका है। किरात, हूण, गृध्र, पुलिन्द और पुलक्सा—आदि अधम जाति वाले भी इससे पवित्र हुए।

भक्ति की सर्वत्र गति दिखाते हैं—प्रह्लाद को गर्भ में ही भक्ति प्राप्त हुई। ध्रुव को अयोग्यावस्था अर्थात् बालकपन में ही भक्ति प्राप्त हुई। राजा अम्बरीष को यौवन अवस्था में भक्ति प्राप्त हुई। ययाति को बुढ़ापे में भक्ति प्राप्त हुई। अजामिल को मरते समय भक्ति प्राप्त हुई। (श्रीमद्भाग. अन्विता २/९)



भगवद्भक्ति मार्ग के उपासकों के लिए क्रमोपासना इस प्रकार है–सकाम कर्म द्वारा भगवान् की उपासना करना, यह भगवद्भक्ति का प्रथम सोपान है। द्वितीय सोपान में साधक भक्त निष्काम कर्म के अनुष्ठान करते हैं। तृतीय सोपान में सगुणोपासना पद्धति का आश्रय लिया जाता है। चतुर्थ सोपान के साधकभक्त निर्गुणोपासना का अनुष्ठान करते हैं और पंचम सोपान के साधक भक्त और भगवान् के अभेद (अभिन्नता) का चिन्तन करते हैं अर्थात् आत्मा-परमात्मा का अपरोक्ष ऐक्यानुभव चिन्तन द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिए कहा है कि सभी जीवों की यथा-योग्य साधन की व्यवस्था सम्पादन के लिए भगवान् स्वयं प्रपञ्चाकार (जगदाकार) रूप से परिणत हो जाते हैं। यही उस भगवान् (परमात्मा) की प्राप्ति का क्रम है। (भगवतत्त्व रा.र.)



श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मानिवेदन ये नव भक्तियाँ हैं। इनमें श्रवण भक्ति के उदाहरण राजा परिक्षित हैं। संकीर्तन भक्ति के श्रीशुकदेव, स्मरण भक्ति के प्रह्लाद, पादसेवन की लक्ष्मीजी, अर्चन के पृथु तथा वन्दन के अक्रूर, दास्य भक्ति के हनुमान्, सख्य के अर्जुन और आत्मनिवेदन अर्थात् सर्वसमर्पण के बलि राजा उदाहरण हैं।

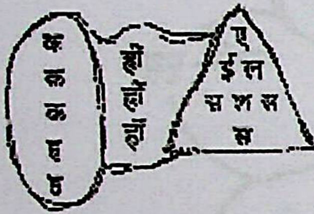
• • ❁ • •

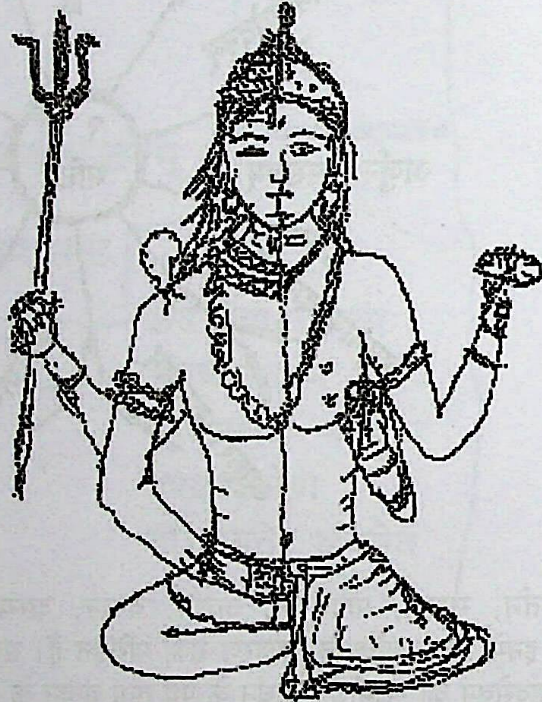
सर्वभूतेषु चात्मानं,
सर्वभूतानि चात्मनि॥
यः पश्यन् सञ्चरत्येषु,
जीवनमुक्तोऽभिधीयते॥ (शिवागी. १३/२९)

जो मोहरहित, अहंकाररहित, निर्लेप और सभी प्रकार से विषयों के सङ्ग से वर्जित (रहित) होता है तथा सभी भूतों (प्राणियों) में स्वात्मा को एवं सभी भूतों को स्वात्मा में देखता हुआ व्यवहार करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। (शिवगी. १३/२९)

• • ❁ • •

॥ श्रीं क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं
स क ल ह्रीम्॥
कत्रयं हद्वयं चैव, शैवो भागः प्रकीर्तितः।
शेषाणि शक्त्यक्षराणि, ह्रींकार उभयात्मकः॥



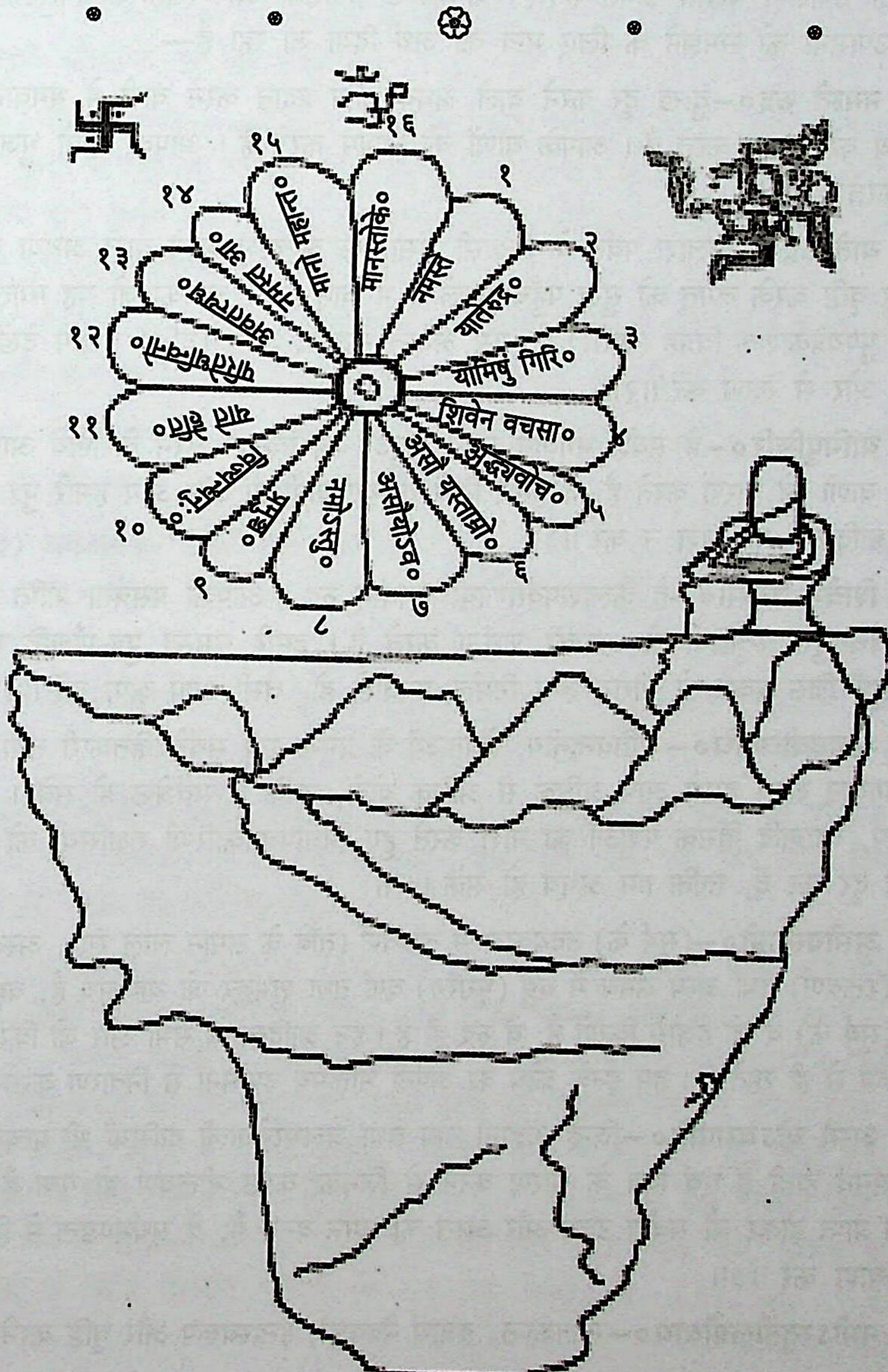


तीनों ककार और दोनों हकार शैव भाग है। 'क' वर्ण का वर्णाक्षर कोष के अनुसार परमात्मा ब्रह्म अर्थ होता है और 'हं' का अर्थ वर्णैकशेषी समास के अनुसार 'अहम्' अर्थात् जीवात्मा होता है। इन दोनों जीवात्मा और परमात्मा में परमार्थतः भेद नहीं है। दोनों में उपाधि ही भेद है और उपाधि को सर्वविचारतन्त्र के विवेक से मिथ्या ही सिद्ध किया जाता है। इसलिए परमार्थतः 'क' और 'ह' वर्ण वाच्य अर्थ शैव (शिव सम्बन्धी) भाग है, शेष प्रतीकाङ्कन के कोष्ठगत वर्णार्थ उस शिव का शक्ति वाचक है तथा ह्रींकार शब्दार्थ उभयार्थक है।



मधुवन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग श्याम सुन्दर के टाढ़े क्यों न जरे।
सखा स्याम अरु वन के पखेरु धिग्-धिग् सबन करे।
मोहन वेनु बजावत द्रुमतर सारंग टेक खरे।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम मुनिजन ध्यान टरे॥

वह चितवन तू मन न धरत है फिर-फिर पुहुप धरे।
सूर श्याम प्रभु विरह दावानल नखसिख लौं पसरे।।



उपर्युक्त चित्ररेखामध्यवर्ती पदों द्वारा भगवान् रुद्र के षोडश वेदमन्त्रों से अर्चन का संकेत है। साधना में रत साधकों के लिये भगवान् रुद्र के षोडश कलाओं से परिचय कराना इसका उद्देश्य है। यहाँ दो उपासना पद्धति ईंगित है (१) कर्मकाण्ड उपासना और (२) ज्ञानोपासना। प्रथम कर्मकाण्ड उपासना को समझने के लिए मन्त्र का अर्थ दिया जा रहा है—

(१) **नमस्ते रुद्र०**—दुःख दूर करने वाले अथवा ज्ञान प्रदान करने वाले हे भगवान् रुद्र! आपके क्रोध को प्रणाम करते हैं। आपके बाणों को प्रणाम करते हैं। आपकी दोनों भुजाओं को नमस्कार करते हैं ॥१॥

(२) **याते रुद्र०**—कैलाश पर्वत के निवासी संसार के कल्याण करने वाले अथवा वाणी में स्थित होकर वृष्टि करके जगत् को सुख पहुँचानेवाले हे भगवान् रुद्र! आपका जो यह मंगलकारक, सौम्य तथा पुण्यप्रकाशक विग्रह (शरीर) है, उस अनन्त सुखप्रद शरीर (दृष्टि) से हमें देखें अर्थात् हमारा सब ओर से रक्षण करें ॥२॥

(३) **यामिषुङ्गिरि०**—हे सर्वज्ञ भगवान् रुद्र! शत्रुओं का विनाश करने के लिये आप अपने हाथ में जो बाणों को धारण करते हैं; वे हमारे लिये कल्याणकारी हों और आप हमारे पुत्र पौत्रादि, गो एवं अश्वादिकों का नाश न करें ॥३॥

(४) **शिवेन वचसा०**—हे कैलाशपर्वतशायी भगवान् रुद्र! आपकी प्रसन्नता प्राप्ति हेतु हम मङ्गलमय वचनयुक्त स्तुतियों से आपकी प्रार्थना करते हैं। हमारे समस्त पुत्र-पौत्रादि एवं गो, अश्वादि पशुएँ जिस प्रकार से नीरोग तथा निर्मल मनवाले हों, वैसी आप कृपा करें ॥४॥

(५) **अद्ध्यवोचदधि०**—अतिवन्दनीय, देवताओं के प्रमुख एवं सर्वदेवहितकारी तथा सर्वरोग निवारक भगवान् रुद्र! हमसे आप अधिक से अधिक बोलें, ताकि मैं सर्वश्रेष्ठ हो सकें। हे रुद्र! अखिल सर्प, व्याघ्रादि हिंसक पशुओं का नाश करते हुए अधोपतनकारिणी राक्षसियों को सदा के लिए हमसे दूर कर दें, ताकि हम अभय हो सकें ॥५॥

(६) **असौयस्ताम्रो०**—(सूर्य के) उदयकाल में ताम्रवर्ण (ताँबे के समान लाल रंग), अस्तकाल में अरुणवर्ण (रक्तवर्ण) तथा अन्य समय में बभ्रु (भूरारंग) वर्ण तथा शुभङ्कर जो यह सूर्य है, वह रुद्र ही है। इनके (सूर्य के) ये जो हजारों किरणें हैं, वे रुद्र ही हैं। इन आदित्य के सभी ओर जो किरणें स्थित हैं, वे रुद्ररूप से ही रहते हैं। हम इनके क्रोध का अपनी भक्तिमय उपासना से निवारण करते हैं ॥६॥

(७) **असौ योऽवसर्पति०**—जिन्हें अज्ञानी गोप तथा जलभरनेवाली दासियाँ भी प्रत्यक्षरूप से देखने में समर्थ होती हैं एवं विष के धारण करने से जिनका कण्ठ नीलवर्ण हो गया है, तथापि रक्तवर्ण को प्राप्त होकर जो सर्वदा उदय और अस्त को गमन बनते हैं, वे सूर्यमण्डल में स्थित रुद्र हमारा कल्याण करें ॥७॥

(८) **नमोऽस्तुनीलग्रीवाय०**—नीलकण्ठ, हजारों नेत्रवाले, इन्द्रस्वरूप और वृष्टि करनेवाले रुद्र

को हम नमस्कार करते हैं। उन रुद्र के जो भृत्य हैं, उनको भी हम नमस्कार करते हैं ॥८॥

(९) **प्रमुञ्चधन्वनस्त्व०**—हे भगवान्! आप धनुष की दोनों कोटियों के मध्य में स्थित प्रत्यञ्चा (धनुष का डोर) का त्याग कर दें तथा हाथ में लिये हुए बाणों को भी दूर फेंक दें, ताकि हम निर्भय होकर आपके सौम्यरूप को देखें ॥९॥

(१०) **विज्ज्यन्धनुः०**—जटाजूट धारण करनेवाले भगवान् रुद्र का धनुष प्रत्यञ्चारहित हो जाय और तूणीर में रखे हुए नोकीले बाणों के अग्रभाग कुण्ठित हो जांय एवं इन रुद्र के बाण भी नष्ट हो जाँय तथा खड्ग रखने का जो कोश (म्यान) भी खड्ग रहित हो जाय अर्थात् हमारे लिये वे भगवान् रुद्र सर्वथा शस्त्ररहित रहें ॥१०॥

(११) **यातेहेति०**—बहुवृष्टि करनेवाले हे रुद्र! आपके हाथों में जो आयुध हैं, वे उपद्रवरहित हो जाये और आप सुदृढ़ धनुष से हमारी रक्षा सब ओर से करें ॥११॥

(१२) **परितेधन्वनो०**—हे भगवान् रुद्र! आपका जो धनुषरूप आयुध है, वह सर्वतः हमारा त्याग कर दे और बाणों से भरा हुआ वह भी तरकश हम से दूर कर दें ॥१२॥

(१३) **अवतत्य०**—सैकड़ों बाणों और हजारों नेत्र को धारण करनेवाले हे भगवान् रुद्र! धनुष की प्रत्यञ्चा तथा बाणों के अग्रभागों को तोड़कर आप सदा हमारे प्रति शान्त और शुद्ध मनोभाववाले हो जाएँ ॥१३॥

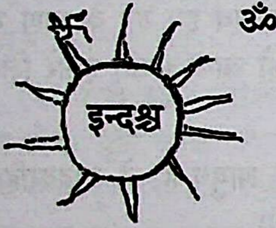
(१४) **नमस्तऽआयु०**—हे भगवान् रुद्र! आप शत्रुओं को मारने में दक्ष हैं, इसलिये धनुष चढ़ाये हुए बाणों को हम प्रणाम करते हैं तथा आपके दोनों बाहुओं सहित धनुष को हमारा प्रणाम है ॥१४॥

(१५) **मानोमहान्त०**—हे भगवान् रुद्र! आप हमारे गुरु, पितृव्य आदि जो वृद्धजन हैं, उन्हें मत मारिए, हमारे बालक, तरुण, गर्भस्थ शिशु, माता-पिता, प्रिय पुत्र, पौत्र आदि प्रियजनों की हिंसा मत करें, उन्हें मत मारें ॥१५॥

(१६) **मानस्तोके०**—हे भगवान् रुद्र! हमारे पुत्र, पौत्र, आयु, गौओं, घोड़ों और वीरों को मत मारें, उनकी हिंसा मत करें, हम सब हवि से युक्त होकर आपका आवाहन-पूजन करते हैं ॥१६॥

उपर्युक्त उपासना पद्धति के द्वारा भगवान् रुद्र के व्यापक स्वरूप का दिग्दर्शन होता है, जो कर्मकाण्ड उपासनामार्ग का आश्रयभूत है। इससे इतर भी परमात्मा रुद्र की उपासना के मार्ग हैं। उपासना को सनातन शास्त्रों में अधिकारी भेद से विविध रूपों में कहा गया है। योगी एवं ज्ञानाश्रयी मार्गावलम्बियों के लिये उपर्युक्त वेद मन्त्र के सोलह मन्त्रों से उपासना को यहां भगवान् शिव के षोडश कलाओं के रूप में कहा गया है। ॐ ही शिव है और शिव ही रुद्र है। 'ॐ' स्वरूप भगवान् रुद्र प्रणव ब्रह्म है और उनकी षोडश कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) 'अः', (२) 'उः', (३) 'मः', (४) '॥' (अर्धमात्रा), (५) '०' (बिन्दु), (६) नाद, (७) कला, (८) कलातीत,

(९) शान्ति, (१०) शान्त्यतीत, (११) उन्मनी, (१२) मनोन्मनी, (१३) तुर्या, (१४) मध्यमा, (१५) पश्यन्ति और (१६) परा। ये ऊँकार ब्रह्म की षोडश मात्राएँ या कलाएँ हैं। इसी को आश्रय करके अधिकारी उपासक यथा गुरूपदिष्ट मार्ग का आश्रय लेकर ज्ञानमार्ग की उपासना में प्रवृत्त होता है।



विवश्वाँश्चैके। (तै. आ.)

त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुः त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्व मिन्द्रस्त्वं निशाकरः।।
त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं पृथिवी त्वं विश्वं खमथाच्युतः।
स्वार्थे स्वाभाविके अर्थे च बहुधा संस्थितिस्त्वयि।।
विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं, विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
विश्वभुग्विश्वमायुस्त्वं, विश्वक्रीडारतिः प्रभुः।।
नमः शान्तात्मने तुभ्यं, नमो गुह्यतमाय च।
अचिन्त्यायाप्रमेयाय, अनादिनिधनाय च।।

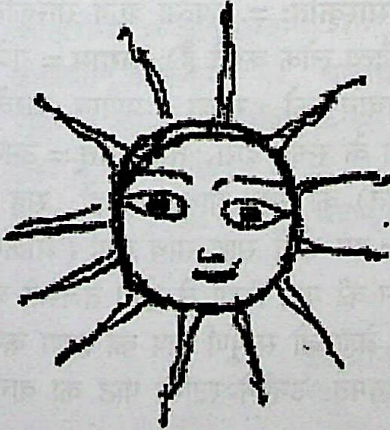
।। मैत्रायणी उ.।५।।

महात्मा कौत्सायनी ने अपनी उपासनाक्रम में भगवान् सूर्य की परमात्मा ब्रह्मरूप से स्तुति की है। उक्त स्तुति की व्याख्या की जा रही है—

विश्वेश्वर = हे सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता भगवान् सूर्य, **त्वम्** = तुम, **ब्रह्मा** = सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हो, **च** = और, **त्वम्** = तुम, **विष्णुः** = पालनकर्ता देव विष्णु हो, **त्वम्** = तुम ही, **रुद्रः** = संहार कर्ता रुद्र हो, **त्वम्** = तुम, **प्रजापतिः** = प्रजा अर्थात् भूतात्माओं (चर–अचरों) के पति (स्वामी) हो, **त्वम्** = तुम, **अग्निः** = अग्निस्वरूप हो, **वरुण** = तृषा (प्यास) निवर्तक जल स्वरूप हो, **त्वम्** = तुम, **इन्द्रः** = सभी के स्वामी हो अथवा देवताओं के अधिपति देवराड् इन्द्र हो, **त्वम्** = तुम, **निशाकरः** = दिन को दो भागों में विभाजन करनेवाले निशा (रात्रि) के कर्ता चन्द्रमा हो एवं सर्वाह्लादकत्वगुणसम्पन्न सभी औधियों में अमृत स्रावक भी तुम्ही हो। **त्वम्** = तुम, **अन्नम्** = अन्न हो, **त्वम्** = तुम, **यमः** = यम हो, **त्वम्** = तुम, **पृथिवी** = पृथिवी हो, **त्वम्** = तुम, **विश्वम्** = विश्व (सम्पूर्ण जगत्) रूप हो, **खम्** = तुम आकाश, **अथ** = और, **अच्युतः** = विनाशरहित हो। **स्वाभाविके** = स्वाभाविक,

स्वार्थे = अपने, **अर्थे** = प्रयोजन के लिए, **बहुधा** = अनेक प्रकार से, **त्वयि** = तुम में, **संस्थिति** = विद्यमान रहने की शक्ति है। **विश्वेश्वर** = हे सम्पूर्ण जगत् के नियमन करने वाले ईश्वर ! **तुभ्यम्** = तुम्हारे लिये, **नमः** = मैं नमस्कार करता हूँ। **विश्वात्मा** = तुम विश्व (जगत्) के आत्मा स्वरूप हो, **विश्वकर्मकृत्** = इसलिए विश्व (सम्पूर्ण) कर्म के कर्ता भी तुम्ही हो, **विश्वभुग्** = संसार में जो भी भोक्तारूप हैं, वे तुम्हीं हो; **विश्वम्** = सम्पूर्ण, **आयुः** = जीवन, **त्वम्** = तुम ही हो, **विश्वक्रीडारतिः** = संसार में जो भी क्रिया-कर्म द्वारा प्रदर्शन हो रहा है, वह तुम्हारी क्रीडा ही है, अथवा सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन-पालन और संहरण करना ही आपकी क्रीड़ा (खेल) है, **प्रभुः** = और यही तुम्हारा प्रभुत्व-सामर्थ्य-ऐश्वर्य का दिग्दर्शन है। **शान्तात्मने** = हे शान्तात्मा, हे गुह्यतम = गुह्यों (रहस्यों) के भी रहस्य (गुप्त) स्वरूप ब्रह्मन् ! **तुभ्यम्** = तुम्हारे लिये, **नमः नमः** = मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। **च** = और आपके, **अचिन्त्याय** = चिन्तन से परे स्वरूप के लिए, **अप्रमेयाय** = किसी प्रमाणों से अग्राह्य असीम स्वरूप के लिए, **च** = और, **अनादिनिधनाय** = आदिरहित अविनाशी स्वरूप के लिए, **नमः** = नमस्कार करता हूँ।। (मैत्रायणी उ. ५)





सांस्कृतिर्भगवान् आदित्यलोकं जगाम ।
तमादित्यं नत्वा चाक्षुषीविद्यया तमस्तुवत् ।

ॐ सहनाववतु० शान्ति पाठः । हरिः ॐ ।
ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः ।
ॐ खेचराय नमः ! ॐ महासेनाय नमः ।
ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः ।
ॐ असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
ॐ मृत्योर्माऽमृतं गमय । हंसो भगवाञ्छुचिरूपः

प्रतिरूपः। विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं, हिरणमयं
ज्योतीरूपं तपन्तम्। सहस्त्ररश्मिः
शतधा वर्तमानः, पुरुषः प्रजानामुदत्येष सूर्यः ।।
ॐ नमो भगवते श्री सूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोवाहिनि वाहिनि स्वाहेति ।।
एवं चाक्षुषीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽब्रवीत्–चाक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति।
अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाऽथ विद्यासिद्धिर्भवति।
य एवं वेद स महान् भवति ।।१।।

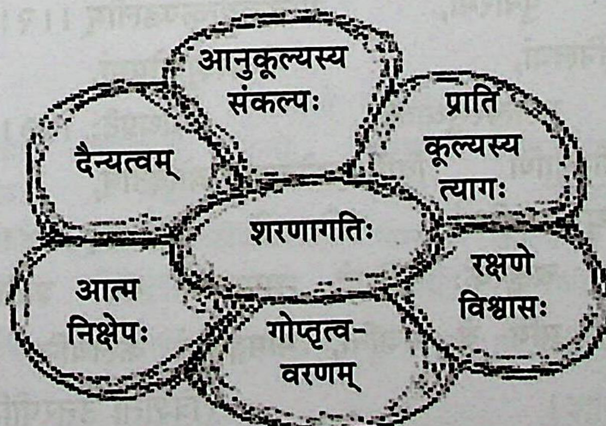
(अक्ष्युपनिषत्)

महात्मा सांस्कृति एकबार भगवान् आदित्य (सूर्य) के लोक में गये और भगवान् सूर्य को नमस्कार करके चाक्षुष्मती विद्या स्तोत्र के द्वारा उनकी स्तुति की, जिस विद्या से नेत्रसम्बन्धी रोग नष्ट होता है। यहाँ उक्त स्तुति की व्याख्या की जा रही है—**सांस्कृतिः** = महात्मा ऋषि सांस्कृति, **भगवानादित्यलोकम्** = भगवान् सूर्यनारायण लोक (जिसे आदित्य लोक कहते हैं); **जगाम** = गये। **तमादित्यम्** = वहाँ पर उन आदित्य (सूर्यनारायण) भगवान् को, **नत्वा** = प्रणाम करके, **चाक्षुष्मतीविद्यया** = चाक्षुष्मती (नेत्र रोगनिवारणसम्बन्धी) विद्या के स्तोत्र द्वारा, **तमस्तुवत्** = उनकी स्तुति की। **ॐ सहनाववतु** = हम गुरु और शिष्य (सांस्कृति) की साथ-साथ रक्षा हो, **सह नौ भुनक्तु** = दोनों साथ-साथ भोजन करें, **सह वीर्यं करवावहे** = हम दोनों साथ-साथ वीर्य (पराक्रम) को प्राप्त होवें, **तेजस्विनावधीतमस्तु** = अधीत अर्थात् अध्ययन की गयी विद्या से दोनों तेजस्वी बनें या दोनों की विद्या तेजस्विता को प्राप्त करे, **हरि ॐ** = ओम् ब्रह्म जो सम्पूर्ण पाप को हरण करने के कारण हरि कहलाते हैं, वे हमारी रक्षा करें। इस प्रकार प्रथमतः उन्होंने शान्ति पाठ का वाचन करके भगवान् सूर्य की स्तुति प्रारम्भ की—

ॐ = परमात्मा, **अक्षितेजसे** = नेत्रों में जो तेज (प्रकाश) स्वरूप से विराजमान हैं ऐसे, **भगवते** = भगवान्, **श्रीसूर्याय** = श्रीसूर्यनारायण को, **नमः** = प्रणाम करता हूँ, **ॐ खेचराय नमः** = ॐ मैं आकाश में विचरण करने वाले (**खे** = आकाशे चरतीति खेचरः) भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ। **ॐ महासेनाय नमः** = ॐ मैं महासेन नाम से विख्यात भगवान् सूर्य को प्रणाम करता हूँ। **ॐ सत्त्वाय नमः** = ॐ सत्त्वगुण प्रधान (विष्णुस्वरूप) सूर्य को प्रणाम करता हूँ। **ॐ असतः** = ॐ असत् से, **मा** = मुझको, **सद्गमय** = ॐ सत् की ओर प्रवृत्त कर उसे प्राप्त

कराओ। **तमसः** = अन्धकार से अथवा तमोगुण से, **मा** = मुझको, **ज्योतिर्गमय** = प्रकाश की ओर या सत्त्वगुण की ओर ले जाओ या प्राप्त कराओ। **ॐ मृत्योः** = ॐ मृत्यु से अथवा अज्ञान से, **अमृतम्** = अमृत की ओर या ज्ञान की ओर, **गमय** = हमें ले जाओ अथवा उसे प्राप्त कराओ। **हंसः** = हंसस्वरूप अथवा हंस का व्यत्यय (उलटा) "सोऽहम्" स्वरूप ब्रह्म, **भगवान्** = सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त, **शुचिरूपः** = शुद्ध (निर्मल) स्वरूप, **प्रतिरूपः** = जिसका जगत् प्रतिरूप है अथवा प्रत्येक रूप में तद्रूप से विराजमान (रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव), **विश्वरूपम्** = विश्वरूप, **घृणिनम्** = घृणी, **जातवेदसम्** = अग्निरूप, **हिरण्मयम्** = हिरण्यमय, **ज्योतीरूपम्** = ज्योतिस्वरूप, **तपन्तम्** = तपते हुए, **सहस्त्ररश्मिः** = हजारों (अनन्त) किरणोंवाले, **शतधा वर्तमानः** = सैकड़ों (असंख्य) रूप से विद्यमान, **पुरुषः** = पुरुष अर्थात् "पुरि हृदयाकाशे शेते इति पुरुषः" परमात्मा, **प्रजानाम्** = प्रजाओं (भूतात्माओं) को, **एष** = यह, **सूर्यः** = सूर्य, **उदयति** = प्रकाशित करता है ऐसे, ॐ भगवते = ॐ स्वरूप भगवान्। **अक्षितेजसे** = नेत्र में स्थित प्रकाशस्वरूप, **अहोवाह** = दिन-रात को वहन करनेवाले, **निवाहानि** = काल के निर्धारक, **भगवते** = भगवान्, **श्रीसूर्याय** = श्री सूर्य को, **स्वाहा** = नमस्कार करते हैं अथवा सुन्दर ढ़ंग से उनके लिए हवन (यज्ञ) करते हैं। **एवम्** = इस प्रकार, **स्तुतः** = सांस्कृति ऋषि से प्रार्थित, **श्रीसूर्यनारायणः** = भगवान् सूर्यनारायण, **सुप्रीतः** = प्रसन्न होकर, **अब्रवीत्** = कहा— **चाक्षुष्मतीम्** = इस चाक्षुष्मती, **विद्याम्** = विद्या का, **यः** = जो, **ब्राह्मणः** = ब्राह्मण, **नित्यम्** = प्रतिदिन, **अधीते** = पारायण करेगा या उपासना करेगा, **तस्य** = उसको, **अक्षिरोगः** = आँखसम्बन्धी रोग, **न** = नहीं, **भवति** = होगा, **अष्टौ** = आठ संख्या से युक्त, **ब्राह्मणान्** = ब्राह्मणों को, **ग्राहयित्वा** = वरण करके, **अथ** = उसके पश्चात्, जो इस स्तोत्र का पारायण करायेगा, **सिद्धिः** = उसे यह विद्या सिद्ध हो जायेगी अर्थात् उसकी कार्यसिद्धि, **भवति** = होती है अथवा होगी। **यः** = जो, **एवम्** = इस प्रकार से, **वेद** = इस विद्या की उपासना करके ज्ञान प्राप्त करेगा, **सः** = वह, **महान्** = महान्, **भवति** = हो जाता है या होगा ॥१॥

(अक्ष्युपनिषत्)



शरणं मे गिरिराज कन्यक तरुणेन्दु शेखरः

प्रतीक चित्रांकन के माध्यम से भगवत् शरणागति के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है कि— साधक भक्त सर्वप्रथम भगवत् शरणागति हेतु आनुकूल्य मानसिक संकल्प (प्रतिज्ञा) का वरण करे, द्वितीयतः भगवत्शरणागति में बाधक (प्रतिकूल) मानसिक चित्तवृत्ति का सर्वथा त्यागने की प्रतिज्ञा पूर्वक सतत वैसा प्रयत्न करे। तृतीयतः ईश्वर (उपास्य) के प्रति दृढ़ विश्वास को अन्तःकरण में स्थिर करे कि ईश्वर सब प्रकार से हमारी रक्षा करेंगे। चतुर्थतः गुरु द्वारा उपदिष्ट मन्त्र तथा साधना हेतु किये प्रयत्न को गोपनीय रखे। उन मन्त्रादि द्वारा की गयी साधना को प्रकाशित करने से साधक भक्त में कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये साधना में गोपनवृत्ति का यथा-आवश्यकतानुसार महत्त्व दिया गया है। चतुर्थतः साधक भक्त ईश्वर में स्वात्मा का निक्षेप (समर्पण) करे और पाँचवें सोपान आने पर दैन्यत्व भाववृत्ति का आश्रय ग्रहण करे। भक्तिमार्ग में दैन्यत्व का महत्त्व इसलिये है कि दैन्यचित्तवृत्ति से अहंकारादि का क्षय होता है। अहंकारादि का होना किसी भी साधनामार्ग में परम त्याज्य विषय है। इस प्रकार षष्ठ क्रम में साधक भक्त अनन्य भाव से परमात्मा ईश्वर के शरण में "हे गिरिराज हिमावान् की पुत्री से संबलित भगवान् तरुणेन्दुशेखर (शिव) आप एकमात्र मेरा शरण हैं" इस भावना की प्रधानता प्रगाढ़ और दृढ़ करके उसके शरणापन्न होना चाहिये। ये शरणागति के छः सोपान या क्रम हैं। यही प्रतीक चित्राङ्कन के कोष्ठकगत वाक्यों द्वारा कहा गया है।

❁

श्रीकुण्डलिनीस्तुतिः (शारदातिलक)

मूलेन्निद्रभुजङ्गराजसदृशीं, यान्तीं सुषुम्नान्तरम्,
भित्त्वाधारसमूहमाशु विलसत्, सौदामिनीसन्निभाम् ।।१।।
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतोघैः प्लुतम्,
संभाव्यस्वगृहागतां पुनरिमां, संचिन्तयेत्कुण्डलीम् ।।२।।
आधारस्थितशक्तिबिन्दुनिलयां, नीवारशूकोपमां,
नित्यानन्दमयीं गलत्परसुधावर्षैः प्रबोधप्रदैः ।।३।।
सिक्त्वा षट्सरसीरुहाणि विधिवत्कोदण्डमध्योदिताम्,
ध्यायेत् भास्वरबन्धुजीवरुचिरां, संविन्मयीं देवताम् ।।४।।
ज्ञानं गणेशो मम चक्षुरर्कः शिवो ममात्मा मम शक्तिराद्या ।
विभेदबुद्ध्या (विष्णुः) मयि ये भजन्ति, मामङ्गहीनं कलयन्ति मन्दाः ।।

(त्रिशती उत्तरपीठिकायां)

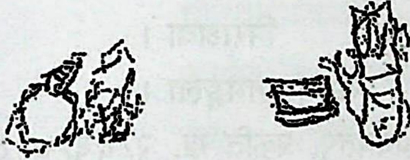
यस्य नो पश्चिमं जन्म, यदि वा शंकरः स्वयम् ।
तेनैव लभ्यते विद्या, श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ।।

(त्रिशती उत्तरपीठिकायां हयग्रीवः)

मुक्तावन्तर्मुखैव त्वं भुवनेश्वरि तिष्ठति ।। (शक्तिदर्शन)

पुस्तकजपवटिहस्ते ! वरदाभयचिह्नबाहुलते ।
कर्पूरामलदेहे ! वागीश्वरि ! विशोषयाशु मम चेतः ।।

(प्रपञ्चसारे ८/५६)



१ २ ३ ४

श्रीविष्णोर्नवशक्तयः–

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना, क्रिया योगा ततः परम् ।
प्रह्वी सत्या तथेशानाम=नुग्राह्या नवमी तथा ।।

(प्रपञ्चसारे २०/२९, शारदाति. १५/२५)

शिवस्य पीठशक्तयः–

रौद्री वामा ज्येष्ठा काली कलपदावली विकरिणी
बलप्रमथनी सर्वभूतदमनी मनोन्मनी ।।

(शा.ति. १८/१५/१६)

गणपतेः शक्तयः–

तीव्रा ज्वालिनी नन्दा, भोगदा कामरूपिणी
उग्रा तेजोवली, सत्या विघ्ननाशिनी । (शा.ति. १३/८)
काद्यं हाद्यं महेशानि ! काद्यं कालीगतं भवेत् ।
हाद्यं श्रीत्रिपुराख्यं च, कहाद्यं तारिणी मतम् ।।

हादिः-हस क ल ह्रीं हस क ल ह्रीं सकल ह्रीं (श्री) ।

(शक्तिसंगमतन्त्र ६/१२५)

श्रीकृष्णद्वारा देवीस्तुतिः—

त्वमेव सर्वजननी, मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ, स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ।।
कार्यार्थं सगुणा त्वं च, वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं, सत्या नित्या सनातनी ।।
तेजःस्वरूपा परमा, भक्तानुग्रहविग्रहा ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा, सर्वाधारा परात्परा ।।
सर्वबीजस्वरूपा च, सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा, सर्वमङ्गलमङ्गला ।।

(ब्रह्मवैवर्तपु. प्रकृति ख. २/६६/७-१०)

केशान् गाढतमो भ्रुवोः कुटिलता रागोऽधरं मुग्धता,
चास्यं चञ्चलताक्षिणि कठिनतोरोजौ कटिं क्षीणता ।
पादौ मन्दगतित्वमाश्रयदहो दोषास्त्वदंगाश्रयाः,
प्राप्ता सद्गुणतां गताश्च सुतरां श्रीराधिके! धन्यताम् ।।

(पं. श्रीसीतारामशा. व्यावर)

लक्ष्मी सरस्वती धात्री, त्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु
उपकरवेषरचना, विद्यासु श्रीरिति प्रथिता ।।

(व्याडिकोषः)

गंगां पुण्यजलां प्राप्य, त्रयोदश विवर्जयेत् ।
शौचमाचमनं चैव, निर्माल्यं मलकर्षणम् ।।
तैलसंमर्दनं क्रीडां, प्रतिग्रहमथो रतिम् ।
अन्यतीर्थाभिलाषा चान्यतीर्थप्रशंसनम् ।।

(पद्मपुराण)

।। ललिताचतुःषष्ट्युपचारमानसपूजा ।।

ॐ हृन्मध्यनिलये देवि, ललिते परदेवते ।
चतुष्षष्ट्युपचारांस्ते, भवत्या मातः समर्पये ।।१।।

कामेशोत्संगनिलये, पाद्यं गृहणीष्व सादरम् ।
भूषणानि समुत्तीर्य, गन्धतैलं च तेऽर्पये ।।२।।
स्नानशालां प्रविश्याथ तत्रत्य मणिपीठके ।
उपविश्य सुमने त्वं, देहोद्वर्तनमाचर ।।३।।
उष्णोदकेन ललिते, स्नापयाम्यथ भक्तितः ।
अभिषिञ्चामि पश्चात्त्वां, सौवर्णकलशोदकैः ।।४।।
धौतवस्त्राप्रोञ्छनं चारक्तक्षौमाम्बरं तथा ।
कुचोत्तरीयमरुणमर्पयामि महेश्वरि ।।५।।
ततः प्रविश्य चालेय; मण्डपं श्रीमहेश्वरि ।
उपविश्य च सौवर्णपीठे गन्धान् विलेपय ।।६।।
कालागुरुज धूपैश्च, धूपये केशपाशकम् ।
अर्पयामि च माल्यादि, सर्वर्तुकुसुमस्त्रजः ।।७।।
भूषामण्डपमाविश्य, स्थित्वा सौवर्णपीठके ।
माणिक्यमुकुटं मूर्ध्नि, दयया स्थापयाम्बिके ।।८।।
सरूपावर्णचन्द्रस्य, शकलं तत्र शोभताम् ।
सिन्दूरेण च सीमन्तमलंकुरु दयानिधे ।।९।।
भाले च तिलकं न्यस्य, नेत्रयोरञ्जनं शिवे ।
वालीयुगलमहच्चाम्ब, भक्त्या ते विनिवेदये ।।१०।।
मणिकुण्डलमप्यम्ब, नासाभरणमेव च ।
ताडकं युगलं देवि, यावकञ्चाधरेऽर्पये ।।११।।
आद्यभूषणसौवर्णचित्ताकर्षकाणि च ।
महापद्मकमुक्तावल्येकावल्यादिभूषणम् ।।१२।।
छात्रवीरं गृहाणाम्ब, केयूरयुगलं तथा ।
वलयावलिमङ्गुल्याभरणं ललिताम्बिके ।।१३।।
ओड्याणमथ कटयन्ते, कटिसूत्रं च सुन्दरि ।

सौभाग्याभरणं पादकटकं नूपुरद्वयम् ।।१४।।
अर्पयामि जगन्मातः, पादयोश्चांगुलीयकम् ।
पाशं वामोर्ध्वहस्ते च, दक्षहस्ते तथाङ्कुशम् ।।१५।।
अन्यस्मिन् वामहस्ते च, तथा पुण्ड्रेक्षुचापकम् ।
पुष्पबाणांश्च दक्षाधः पाणौ धारय सुन्दरि ।।१६।।
अर्पयामि च माणिक्य, पादुके पादयोः शिवे ।
आरोहावृतिदेवीमिश्रकं परशिवे मुदा ।।१७।।
समानवेशभूषाभिः, साकं त्रिपुरसुन्दरि ।
अत्र कामेशवामाङ्कपर्यङ्कोपरि निवेशिनीम् ।।१८।।
अमृतासवपानेन, मुदितां त्वां सदा भजे ।
शुद्धेन गांगतोयेन, पुनराचमनं कुरु ।।१९।।
कर्पूरवीटिकामास्ये, ततोऽम्ब विनिवेशय
आनन्दोल्लासहासेन, विलसन्मुखपङ्कजाम् ।
भक्तिमत्कल्पलताकेतां, कृती स्यां त्वां स्मरन् कदा ।।२०।।
मङ्गलारार्तिकं छत्रं, चामरं दर्पणं तथा ।
तालवृन्तं गन्धपुष्पधूपदीपांश्च तेऽर्पये ।।२१।।
श्रीकामेश्वरि तप्तहाटककृतैः स्थालीसहस्त्रैर्भृतिं
दिव्यान्नं घृतसूपशाकभरितं चित्रान्नभेदैर्युतम् ।
दुग्धान्नं मधुशर्करादधियुतं माणिक्यपात्रार्पितं
माषापूपकपूरिकादिसहितं नैवेद्यमम्बार्पये ।।२२।।
साग्रविंशतिपद्योक्तचतुष्षष्ट्युपचारतः ।
हृन्मध्यनिलया माता ललिता परितुष्यतु ।।२३।।

।। इति श्रीमच्छक्तियामलोक्तं मानसपूजनम् ।।

।। श्रीकुण्डलिनीस्तुतिः ।।

हंसं नित्यमनन्तमव्ययगुणं स्वाधारतो निर्गता ।।१।।

शक्तिः कुण्डलिनीसमस्तजननी हस्ते गृहीत्वा तमः
याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनानुभूयस्वयं
यान्ती स्वाश्रयमर्ककोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी ।।२।।

अव्यक्तं परबिम्बमंचितरुचिं नीत्वा शिवस्यालयं,
शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयवपुर्विद्युल्लतासन्निभा ।
आनन्दामृतकन्दगं पुरमिदं चन्द्रार्ककोटिप्रभं
संवीक्ष्य स्वगृहं गता भगवती ध्येयानवद्या गुणैः ।।३।।

मध्ये वर्त्मसमीरणद्वयमिथस्संघट्टसंक्षोभजं,
शब्दस्तोममतीत्य तेजसि तडित्कोटिप्रभाभास्वराम् ।
उद्यन्तीं समुपास्महे नवजवासिन्दूरसान्द्रारुणां,
सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवं प्राप्तां परां देवताम् ।।४।।

गमनागमनेषु जा(ला)ङ्घ्रिकी सा तनुयाद्योगफलानि कुण्डली,
मुदिताकुलकामधेनुरेषा भजतां काङ्क्षित (वाञ्छित) कल्पवल्लरी ।।५।।

हृत्पङ्केरुहभानुबिम्बनिलयां विद्युल्लतामन्थरां,
बालार्कारुणतेजसा भगवतीं निर्भर्त्सयन्तीं तमः ।
नादाख्यां परमर्धचन्द्रकुटिलां संविन्मयीं शास्वतीं
यान्तीमक्षररूपिणीं विमलधीर्ध्यायेद्विभुं तेजसाम् ।।६।।

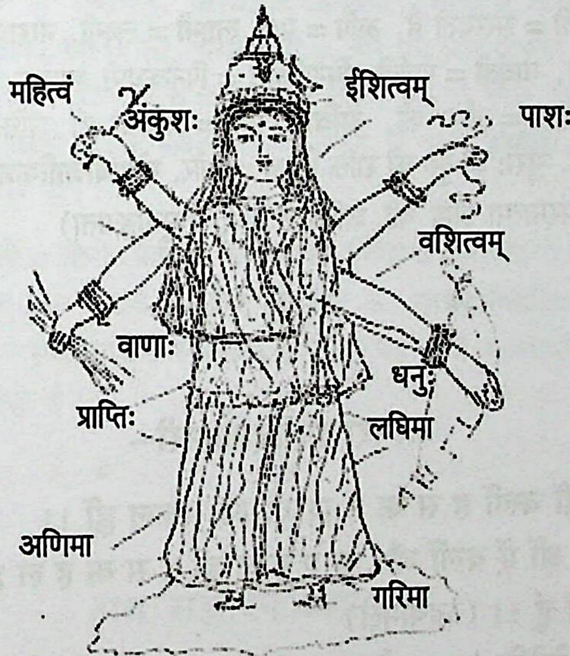
भाले पूर्णनिशापति (कर) प्रतिभटां नीहारहारत्विषा,
सिञ्चन्तीममृतेन देवममितेनानन्दयन्तीं तनुम् ।
वर्णानां जननीं तदीयवपुषा संव्याप्य विश्वं स्थितां,
ध्यायेत्सम्यगनाकुलेन मनसा संविन्मयीमम्बिकाम् ।।७।।

मूले भाले हृदि च विलसद्वर्णरूपा सवित्री-
पीनोतुङ्गस्तनभरतम (लस)न्मध्यदेशा महेशी ।
चक्रे चक्रे गलितसुधया सिक्तगात्री प्रकामं,
दद्यादाद्याश्रियमविकलां वाङ्मयी देवता नः ।।८।।

आधारबन्धप्रमुखक्रियाभिः समुस्थिता कुण्डलिनी सुधाभिः ।
त्रिधामबीजं शिवमर्चयन्ती शिवाङ्गना वः शिवमातनोतु ।।९।।
निजभवननिवासादुच्चरन्ती विलासैः,
पथि-पथि कमलानां चारुहासं विधाय ।
तरुणतरणिकान्ति कुण्डली देवता सा शिवसदनसुधाभिर्दीपयेदात्मतेजः ।।
सिन्दूरपुञ्जनिभमिन्दुकलावतंसमानन्दपूर्णनयनत्रयशोभिवक्त्रम् ।
आपीनतुङ्गकुचनम्रमनङ्गतन्त्रं शम्भोः कलत्रममितां श्रियमातनोतु ।।११।।
वर्णैरर्णवषड्दिशारविकलाचक्षुर्विभक्तैः क्रमा-
दाद्यैःसादिभिरावृतान् सहयुतैः षट्चक्रमध्यानिमान् ।
डाकिन्यादिभिराश्रितान् परिचितान् ब्रह्मादिभिर्दैवतैः-
भिन्दाना परदेवता त्रिजगतां चित्ते विधत्तां मुदम् ।।१२।।
आधाराद्गुणवृन्तशोभिततनुं लिङ्गत्रयं सत्त्वरं,
भिन्दन्तीं कमलानि चिन्मयघनानन्दप्रबोधोत्तरम् ।
संक्षुब्ध्यध्रुवमण्डलामृतकरप्रस्यन्दमानामृत
स्रोतः कन्दलिता(निभा) ममन्दतदिदाकारां शिवां भावयेत् ।।१३।।
मूलधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभाभास्वरे विभ्रमन्तं,
कामं बालार्ककालानलजरठकुरङ्गाङ्कप्रभाभम् ।
विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिः लसद्बन्धुजीवाभिरामं,
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुं जगदुदयलयैकान्तहेतुर्विचिन्त्यः ।।१४।।
तस्योर्ध्वं विस्फुरन्तीं स्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभाभास्वराङ्गी
मुञ्चच्छन्ती सुषुम्नामनुसरणिशिखाभा ललाटेन्दुबिम्बम् ।
चिन्मात्रां सूक्ष्मरूपां जगदुदयकरीं भावनामात्रगम्यां,
मूलं या सर्वधाम्नां स्फुरति निरुपमा हुंकृतोदञ्चितोरः ।।१५।।
नीता साशनकैरधोमुखसहस्रारुणाब्जोदरे,
श्च्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बमधुनः पीयूषधारास्रतीम् ।
रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिस्यन्दरूपा विशेद्,
भूयोऽप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा विशेत् ।।१६।।
योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवात्मनोऽन्तर्बीजांशं दुरितजरापमृत्युरोगान् ।

जित्वासौ स्वयमिव मूर्तिमाननङ्गसंजीवेच्चिरमतिनीलकेशजालः ।।१७।।
(शारदातिलके)

अरुणां करुणातरंगिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशपुष्पबाणचापाम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव भावये[1] भवानीम् ।।
(श्रीतन्त्रराजे)



यहाँ देवी भवानी के ध्यान का श्लोक श्रीतन्त्रराज से उधृत है। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तसती ग्रन्थ(गीताप्रेस) में "धृतपाशाङ्कुशचापहस्ताम्" पाठ छपा है, परन्तु पाठान्तर से अर्थभेद में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। इसका अर्थ है—मैं भगवती भवानी का ध्यान करता हूँ। जो भगवती भवानी अणिमा आदि सिद्धिमयी किरणों के प्रकाश से आवृत हैं। उनके शरीर का वर्ण लाल है। उनके नेत्रों में करुणा की तरङ्ग हिलोरें ले रही हैं तथा उनके हाथों में क्रमशः पाश, अङ्कुश, पुष्पबाण और धनुष शोभा पा रहे हैं। भवानी को भगवान् शिव की आदि शक्ति और महामाया कहा जाता है। भवानी उनका नाम इसलिये है कि वह इस भव अर्थात् संसार का सृजन करती हैं।

शक्तिः सिद्धिः गणेशस्य, ब्रह्मणश्च सरस्वती।
लक्ष्मीनारायणस्यापि, पार्वती च पिनाकिनः ।।४।।
अविद्या चैव जीवस्य, गुरोर्ज्ञानं परात्परम्।
मोक्षबीजात्मिका विद्या, शक्तिश्च परमात्मनः ।।५।।
(सूर्याङ्कगता)

सिद्धिः = सिद्धि, **गणेशस्य** = गणेश की, **शक्तिः** = शक्ति का नाम है, **च** = और, **ब्रह्मणः** = ब्रह्मा की शक्ति, **सरस्वती** = सरस्वती है, **अपि** = एवं, **लक्ष्मी** = लक्ष्मी, **नारायणस्य** = भगवान् नारायण की शक्ति है, **च** = तथा, **पार्वती** = पार्वती, **पिनाकिनः** = पिनाकधारी भगवान् शिव की शक्ति है ।।४।।

च = और, **जीवस्य** = जीव की, **अविद्या एव** = अविद्या ही शक्ति है, **परात्परं ज्ञानम्** = परात्पर परमात्मा का ज्ञान, **गुरोः** = गुरु की शक्ति है, **च** = और, **मोक्षबीजात्मिका विद्या** = मोक्षबीजात्मिका विद्या, **परमात्मनः** = परमात्मा ब्रह्म की शक्ति है ।।५।। (सूर्याङ्कगता)

कामराजाष्टादशाक्षरी—

ऐं कएईल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं श्रीं सकल ह्रीं ।।
ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः क ए इ ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं क्लीं हूं ।। (रुद्रयामले)
एकोच्चारेण देवेशि !, वाजपेयस्य कोटयः ।
अश्वमेधसहस्राणि, प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ।। (ज्ञानार्णवे)
कामो माया रमा बाला, त्रिकूटा स्त्रीभगांकुशौ ।
काली कामकला कूर्चः, सर्वादौ प्रणवः प्रिये ॥
श्री महाषोडशीया च, या ख्याता भुवनत्रये ।
ज्ञानेन मृत्युहा विद्या, सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ॥ (सिद्धयामले)

यह मन्त्र कामराज के नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्त्र की साधना से साधक को सम्पूर्ण मनोरथ की सिद्धि होती है। इसलिए इसका नाम "कामराज" मन्त्र है। चूँकि यह मन्त्र अष्टादश (अठारह) अक्षरवाला है, इसलिए इसे "कामराजाष्टाक्षरी" मन्त्र कहा जाता है।

व्याख्या—यह द्वितीय मन्त्र भी कामराज ही है। यह कामराज मन्त्र प्रकारान्तरवाला हैं। इसमें अठाईस अक्षर हैं। इसके अनुष्ठान से साधकों-भक्तों के सर्वकाम पूर्ण होते हैं। (रुद्रयामल)

व्याख्या—**देवेशि !** = हे परमेश्वरि !, **एकोच्चारेण** = जो एक बार भी इस मन्त्र का उच्चारण (जप) कर लेता है उसे, **कोटयः** = करोड़ों, **वाजपेयस्य** = वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। **अश्वमेधसहस्राणि** = हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है, **भवः** = और सम्पूर्णभूमण्डल के, **प्रादक्षिण्यम्** = प्रदक्षिणा का जो फल होता है, वह फल प्राप्त हो जाता है। (ज्ञानार्णव)

व्याख्या—**प्रिये !** = हे पार्वति !, **कामः** = कामबीज, **माया** = मायाबीज, **बाला** = बाला बीज, **त्रिकूटा** = त्रिकूटाबीज, **स्त्री** = स्त्री, **भगांकुशौ** = और भग और अंकुश बीज, **काली** = काली, **कामकला** = एवं कामकला बीज, **कूर्च** = कूर्चबीज आदि जो-जो बीज अथवा व्याहृतियाँ अथवा श्लोकात्मक मन्त्र हैं, **सर्वादौ** = उन सबके प्रारम्भ करने से पूर्व, **प्रणवः** = प्रणव मन्त्र 'ॐ' का उच्चारण करना आवश्यक है।

या = जो, **भुवनत्रये** = तीनों लोकों में, **श्रीमहाषोडशीया** = महाषोडशी देवी के, **ख्याता** = नाम से विख्यात है, **ज्ञानेन** = उस मन्त्रार्थ की देवी के बोध से, **मृत्युहाविद्या** = जनन-मरण सांसारिक चक्र को निवृत्त करती है। **सर्वाम्नायैर्नमस्कृता** = इसलिए यह सभी आम्नायों में स्थित साधकों द्वारा नमस्कृता अर्थात् पूजनीया है।



अथ सञ्जीवनीविद्या।

शुक्राचार्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सञ्जीवनी देवता।
ध्यानम्—कर्पूराभां हीरमुक्ताभूषणभूषिताम्बराम्।
ज्ञानमुद्रामक्षमालां, दधतीं चिन्तयेत्पराम्।।
ह्रीं हंसः सञ्जीवनि जूं हंसः कुरु कुरु सौः सौः स्वाहा।।

(श्रीविद्यार्णव त.७)

इस संजीवनी विद्या के शुक्राचार्य ऋषि हैं। इसका छन्द गायत्री है और इस विद्या की देवता सञ्जीवनी है। इसके ध्यान के अर्थ का भाव इस प्रकार है—जिसके शरीर की शोभा (वर्ण) कर्पूर के समान धवल (उज्ज्वलवर्ण) है और जो हारों-मुक्ताओं के मनकों से गूँथे हार के आभूषणों से विभूषित हैं तथा दिव्य रेशमी साड़ी को पहनी हुई हैं एवं अक्षमाला तथा ज्ञानमुद्रा को धारण की

हुई हैं। ऐसी पराम्बा भगवती का हम ध्यान करते हैं। ध्यान के बाद उसके मन्त्र के जप का विधान है। मन्त्र इस प्रकार है—"ह्रीं हंसः सञ्जीवनि जूं हंसः कुरु कुरु सौः सौः स्वाहा" इस मन्त्र के जप से साधक के आयु-आरोग्य की वृद्धि होती है और वह चिर जीवन प्रदान करने वाला होता है।

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र ७)

अजपा—

हंसः पदं प्रत्यहं जपते नरः उच्छ्वासे चैव निःश्वासे।
उत्पत्तिर्जप आरम्भो, मृतिरस्य निवेदनम्।
विना जपेन जपो भवति मन्त्रिणः।
श्रीगुरोः कृपया लभते।
षष्टिश्वासैर्भवेत् प्राणः षष्ट्या तैर्नाडिका स्मृता,
षष्टिनाड्या अहोरात्रम्।
हंसः ऋषिः, अव्यक्तगायत्री छन्दः,
परमहंसो देवता, हं बीजं, सः शक्तिः,
सोऽहं-कीलकम्, ऊँ-तत्त्वम्, नादः स्थानम्,
श्वेतो वर्णः, उदात्तः स्वरः, मोक्षे विनियोगः। (श्रीविद्यार्णव त. ७)

हंस पद (शब्द) को निरन्तर जीवात्मा जपता है। जब हम श्वास ग्रहण करते हैं, तो "हं" का उच्चारण (ध्वनि) स्वयं होता है और जब श्वास को छोड़ते हैं, तो "सः" का उच्चारण होता है, इसी बात को यहाँ कहा गया है। इतना ही नहीं जब हम इस हंस मंत्र के जप का आरम्भ करते हैं अर्थात् श्वास लेते हैं, तभी हमारा जन्म होता है और जब हम उसे छोड़तें है, तभी हमारी मृत्यु हो जाती है। इस तरह मन्त्री (जप करनेवाले) का विना जप किये ही निरन्तर जप होते रहता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब हम श्वास को छोड़ते हैं, तो एक आवृति (एकबार) मन्त्र का जप हो जाता है अर्थात् हम मर जाते हैं; फिर जप का प्रारम्भ अर्थात् जीवन (जन्म) कैसे होता है ? इसी का उत्तर यहाँ दिया गया है कि "गुरोः कृपया लभते" अर्थात् हम श्रीगुरु जो साक्षात् परमात्मा हैं, उनकी कृपा से जीवन प्राप्त करते हैं। अब उस जप के सम्बन्ध में विशेष कहा जा रहा है कि—

साठ श्वास के आवर्तन को प्राण कहा जाता है और साठ प्राण की नाड़ी कही जाती है एवं साठ नाड़ी का अहोरात्र अर्थात् (दिन और रात-चौबीस घण्टा) होता है। इस तरह परमेश्वर गुरु जिसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश कहा गया है—

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥" ब्रह्मा रूपसे स्रष्टा हैं; इसलिए वे जन्म देते हैं। विष्णु रूप में पालनकर्ता हैं, इसलिए पालन होता है और रुद्र (रुद्र) संहार (मृत्यु) करते हैं, तो हम मरते हैं। अतः प्रत्येक श्वास-प्रच्छ्वास में हम जीते-मरते हैं। इसलिए सदा उन परमात्मा-परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये, जिनसे हमारा निरन्तर जीवन रक्षित हो रहा है। जिस क्षण श्वास छोड़ने के बाद नहीं आवेगा अर्थात् जब गुरुकृपा नहीं होगी, तो इस क्षण हम मृत्यु अवस्था में पड़े रह जायेंगे, इस बात का निरन्तर ध्यान रखें। अब उस अजपा हंस मन्त्र के ऋष्यादि के सम्बन्ध में कहते हैं—यह जो हंस मन्त्र है, उसके हंस नामक ऋषि हैं, अव्यक्त गायत्री छन्द है और परमहंस नामक देवता ही देवता है। इसके "हं" बीज, "सः" शक्ति, "सोहं' कीलक, 'ऊँ' तत्त्व, नाद स्थान, श्वेत वर्ण, उदात्त-स्वर है तथा मोक्ष कर्म में इसका विनियोग (प्रयोग) करने का विधान है।

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र ७)



यादृग्जगदज्ञ विषयं तस्य न सत्यता
यादृक्तज्ञविषयं तनाख्य मद्द्वयम्॥

अब आत्ममन्त्र को कहते हैं—यह "ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा" आत्ममन्त्र है। इस मन्त्र के जप (मनन-ध्यान) करने से आत्म-परमात्म ऐक्यबोध प्राप्त होता है। (श्रीविद्यार्णवतन्त्र)

आत्ममन्त्रः—ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा॥ (श्रीविद्यार्णवत. १५)

ब्रह्मार्पणमन्त्रः—

ॐ इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकारेण जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु अवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तच्च सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु ठः ठः स्वाहा॥

(श्रीविद्यार्णवत. १३)

व्याख्या–अब ब्रह्मार्पणमन्त्र को लिखते हैं—ब्रह्म (परमात्मा) को सम्पूर्ण कर्म अर्पण किये जाने हेतु जिस मन्त्र को जपते हैं, वह मन्त्र 'ब्रह्मार्पण' मन्त्र कहलाता है। मन्त्र शब्द "मन्तृ गुप्तसम्भाषणे" धातु से सम्पन्न होता है। जिसका अर्थ है—मन ही मन मनन करना, स्वयं से विचार करना अर्थात् जहाँ—जिस स्थिति में कोई द्वितीय चिन्त्य वस्तु न हो, उसे मन्त्र कहते हैं। अब ब्रह्मार्पणमन्त्र की व्याख्या करते हैं— मन्त्र के आदि में 'ॐ' प्रणव है। आगे कहते हैं—**इतः** = अब से, **पूर्वम्** = पहले, **प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारेण** = प्राण, बुद्धि और देह के धर्म में अपने अहंकारपूर्वक जो भी, **जाग्रत्स्वप्नसुषुटप्त्यवस्थासु** = जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में स्थित रहकर, - मनसा-मन से, वाचा = वाणी से, **कर्मणा** = कर्म से, **हस्ताभ्याम्** = दोनों हाथों से, **पद्भ्याम्** = दोनों पैरों से, **उदरेण** = उदर से, **शिश्ना** = शिश्ना (जननेन्द्रिय) से, **यत्स्मृतम्** = ज़ो कुछ भी स्मरण किया, **यदुक्तम्** = जो कुछ भी बोला, **यत्कृतम् च** = और जो कुछ भी मैंने किया, **तत्सर्वम्** = वे मनसा-वाचा-कर्मणा किये हुए सम्पूर्ण कर्म, **ब्रह्मार्पणम्** = ब्रह्म-परमात्मा को समर्पण, **भवतु** = हो जाय, **ठः ठः** = यह मन्त्रान्त बीज है और स्वाहा का अर्थ है, उन कृतकर्म को हम ठीक-ठीक ढ़ंग से सतर्कता और यत्नपूर्वक ब्रह्मरूपी अग्नि में हवन करते हैं। (श्रीविद्यार्णवतन्त्र १३)

अष्टाङ्गनमनम्–

हस्त-पद-जानु-वक्षःमूर्धा-दृष्टिःवाक्-चित्तम् एतैः ।

पञ्चाङ्गनमनम्–

हस्त-जानु-शिरो-वाक्यधीभिः । (श्रीविद्यार्णव त. १३)

साष्टाङ्ग प्रणाम करने की विधि के अन्तर्गत-हाथ-पैर, जानु (घुटने), वक्षस्थल, मूर्धा (मस्तक), दृष्टि, वाक् (वाणी) और चित्त (मन), इन अंगों के द्वारा प्रणिपात (प्रणाम) करने का विधान किया गया है।

पञ्चाङ्ग प्रणाम करने की विधि में-हाथ, जानु, मस्तक, वाक्य और बुद्धि के द्वारा प्रणाम करने की विधि कही गयी है। (श्रीविद्यार्णवतन्त्र १३)

पुरश्चरणम्—

जपो होमः तर्पणं च सेको ब्राह्मणभोजनम् ।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके, पुरश्चरणमुच्यते ।।

(वैष्णवतन्त्रे)

वैष्णवों के सम्प्रदायानुसारी पुरश्चरण, विधि कहते हैं—**जपः** = उपास्य इष्ट देव के नाममन्त्र का पुरश्चरणसंख्या जप, **होमः** = किए गए पुरश्चरण संख्या की सफलता हेतु इष्टदेव के नाममन्त्र जप का दसांश उसी मन्त्र से हवन, **तर्पणम्** = किए गए हवनसंख्या के दसांश तर्पण, **सेको ब्राह्मणभोजनम्** = ग्यारह-इक्कीस आदि एक संख्यासहित संख्या के ब्राह्मणों का भोजन, **पञ्चाङ्गोपासनम्** = दोनों हाथ, दोनों पैर और वाणी से उपास्य की सेवा करना, **लोके** = वैष्णव लोगों में, **पुरश्चरणम्** = पुरश्चरण, **उच्यते** = कहा जाता है। (वैष्णवतन्त्र)



अकारादि क्षकारान्त बिन्दुमन्मातृकाक्षरैः ।
अनुलोमविलोमस्थैः, क्लृप्तया वर्णमालया ।।
प्रत्येकवर्णयुक्मन्त्रा, जप्ताः स्युः सर्वसिद्धिदाः ।
वैरिमन्त्रापि तु नृणां, सुसिद्धाद्यास्तु किं पुनः ।। (उत्तरतन्त्रे)

पञ्चविंशतिभिः प्रोक्ता, मणिभिर्मुक्तिदायिनी ।
कुशग्रन्थ्या जपेद्विप्रः, सुवर्णमणिभिः नृपः ।।

(श्रीविद्यार्णव त.)

रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशतिद्वे,
षट्-षट्, कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशैव द्वादशैव ।
वाह्वोरिन्दोकलाभिः चैकमेकं शिखायाम्,
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतं सः नीलकण्ठः ।।

जपे–

मनः संहरणं शौचं, मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो, जपसम्पत्तिहेतवः॥ (नारदः)
भूशय्याब्रह्मचारित्वं, मौनं चाप्यनसूयता।
नित्यं त्रिषवणस्नानं, क्षुद्रकर्मविवर्जनम्॥ (मन्त्रार्णवे)
नित्यपूजा नित्यदानं, देवतास्तुतिकीर्तनम्।

नैमित्तिकार्चनं चैव, विश्वासो गुरुदेवयोः॥
जपनिष्ठा द्वादशैते, धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः।
ष्टदम्भद्वेषौ तथोत्साद, उच्चाटो भ्रममारणो
व्याधिश्च ....। (श्रीविद्यार्णव तन्त्र १६)
उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो, मुक्तकेशो मलावृतः।
अपवित्रकरोऽशुद्धः, प्रलपन्न जपेत् क्वचित्॥ (वायवीय सं.)
अनास्थाजपमत्यन्तमश्रद्धाजपकर्मणि
आलस्यं भावनाशक्तिः, सिद्धिनाशाय निश्चितम्॥
जपे होमे तथा दाने, स्वाध्याये पितृतर्पणे।
अशून्यं तु करं कुर्यात्, सुवर्णरजतैः कुशैः॥ (वायवीय सं.)
अनामिकायां तद्धार्यं, दक्षिणस्य करस्य तु। (पारस्करः)

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य, शश्वदावर्तनं हि यत्।
अन्तङ्गाक्षराणां च, न्यासपूर्वो जपः स्मृतः॥
(श्री विधार्णव तन्त्र १६)

आसनम्–

कुशाजिनाम्बरैर्युक्तं, चतुरङ्गुलमूर्ध्वतः।
चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा, सुदृढं मृदु निर्मलम्॥ (नारदः)
नादीक्षितो विशेज्जातु, कृष्णसाराजिने गृही।
विशेद्यतिवनस्थश्च, ब्रह्मचारी च स्नातकः॥ (सारसंग्रहे)

कर्तव्यस्य समस्तस्य, नियमग्रहणं व्रतम् ।
चरुमूलफलक्षादधिभिक्षान्नसक्तवः
एतत्सप्तविधं प्रोक्तं, पवित्रं व्रतभोजनम् ।। (कुम्भजः)

हविष्यान्नम्–

हैमन्तिकं सितास्विन्नं, शालिमुद्गास्तिलायवाः ।
कलायकङ्गुनीवारा, वास्तुकं हिलमोचिका ।।
षष्ठिका कालशाकं च, मूलकं केमुकेतरम् ।
कन्दं सैन्धवसामुद्रं, गव्ये च दधिसर्पिषी ।।
पयोऽनुध्दृतसारं च, पनसाम्रे हरीतिकी ।
पिप्पली जीरकं चैव, नागरङ्गकतिन्तिणी ।।
कदली लवली धात्री, फलान्यगुडमैक्षवम् ।
अतैलपक्वं मुनयो, हविष्यान्नं प्रचक्षते ।।
(शातातपः)

निश्चयोत्साहधैर्याच्च, तत्त्वज्ञानस्य दर्शनम् ।
अल्पाशनादसङ्गाच्च, षड्भिर्मन्त्रः प्रसिध्यति ॥

प्रयासाद्बहुभक्ष्याच्च, प्रजल्पान्नियमाग्रहात् ।
नीचसङ्गाच्च लौल्याच्च, षड्भिर्मन्त्रो न सिद्ध्यति ।। (ब्रह्मयामले)



२. प्रकारः–पुरश्चरणम्–

ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा, शुचि पूर्वमुपोषितः ।
नद्यां समुद्रगामिन्यां, नाभिमात्रे जले स्थितः ।।
स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं, जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
ततो होमादिकं चरेत् ।। (कुलप्रकाशतः)

३. प्रकारः—पुरश्चरणम्—

मन्त्री तु प्रजपेन्मन्त्रं, मातृकाक्षरसम्पुटम् ।
अनुलोमविलोमेन, मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।। (कुम्भसम्भवः)

मनोरथानामक्लेशः सिद्धेरुत्तमलक्षणम् । (श्री विद्यार्णव तन्त्र १६)

यस्य { देवे / मन्त्रे / गुरौ } भक्तिर्निश्चला तस्य सिद्धिः ।

रहस्यपुरश्चरणम्—

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां, पक्षयोरुभयोरपि ।
सूर्योदयं समारभ्य, यावत्सूर्योदयान्तरम् ।।
तावज्जप्त्वा निरातङ्कः, सर्वसिद्धोश्वरो भवेत् । (श्रीविद्यार्णवत. १७)

अब पुरश्चरण की प्रकारान्तर से द्वितीय और तृतीय विधि को कहते हैं। पुरश्चरण की द्वितीय विधि की व्याख्या इस प्रकार है—

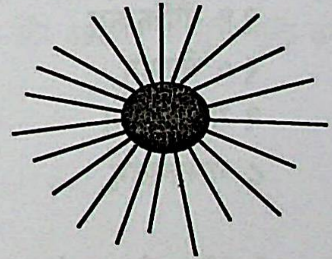
अर्कस्य = सूर्य का, **इन्दोः वा** = अथवा चन्द्र का, **ग्रहणे** = जब ग्रहण लगे, तब उस ग्रहणकाल में, **पूर्वमुपोषितः** = पूर्व से ही उपवास करके अर्थात् सूर्यग्रहण के बारह घण्टा पूर्व और चन्द्रग्रहण के नौ घण्टा पूर्व से उपवास (अन्नाहार रहित) करके, **शुचिः** = बाह्य आभ्यन्तर से शुद्ध होकर, **समुद्रगामिन्याम्** = जो नदी अपने उद्भवस्थान से समुद्र में गिरती (यथा-गंगा) हो, **नद्याम्** = उस नदी में, **नाभिमात्रे** = नाभिपर्यन्त, **जले** = जल में, **स्थितः** = प्रवेश कर–खड़े होकर, **स्पर्शात्** = ग्रहण के स्पर्शकाल से, **विमुक्तिपर्यन्तम्** = मोक्षकाल पर्यन्त, **समाहितः** = समाहित मन से, **मन्त्रम्** = मन्त्र का, **जपेत्** = जप करना चाहिये। **ततः** = उसके बाद, **होमादिकम्** = होम, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण भोजन आदि दशांश अनुष्ठानाङ्ग कर्म को, **चरेत्** = करना चाहिये। यह पुरश्चरण की द्वितीय विधि है। (कुलप्रकाश से) पुरश्चरण की तृतीय प्रकार की विधि इस प्रकार है—**मन्त्री** = मन्त्रजप करनेवाला जापक, **मातृकाक्षर सम्पुटम्** = मातृकाक्षर से सम्पुटित, **मन्त्रम्** = मन्त्र का, **अनुलोमविलोमेन** = अनुलोम-विलोम विधि से, **प्रजपेत्** = जप करे, **मन्त्रसिद्धिः** = इस विधि से जप करने पर मन्त्र की सिद्धि, **प्रजायते** = हो जाती है, अर्थात् उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है। (कुम्भसम्भव)

व्याख्या—सिद्धपुरुष के लक्षण पूर्व में कहा गया है, अब उसके दूसरे लक्षण को कहते हैं— **मनोरथानामक्लेशः** = मनोरथों (वासना) के दुःख से जो रहित है अर्थात् जिसकी सारी वासना नष्ट हो गयी है और कोई भी मनोरथ उसे नहीं रह गया है; अतः उसके क्लेश से जो रहित पुरुष है, ऐसा पुरुष सिद्ध पुरुष है। **सिद्धेः** = सिद्धि का, **उत्तमलक्षणम्** = यही उत्तम लक्षण है जानना चाहिये। (श्री विद्यार्णव तन्त्र १६)

सिद्धों के अन्य भी लक्षण हैं—**यस्य** = जिसके, **देवे** = देवता में, **मन्त्रे** = मन्त्र में, **गुरौ** = और गुरु में, **निश्चला** = निश्चल (दृढ़), **भक्तिः** = भक्ति है, **तस्य** = उस पुरुष की, **सिद्धिः** = उसे करामलकवत् सिद्धि है। अर्थात् उसे अनायास सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अब रहस्यपुरश्चरण के सम्बन्ध में कहते हैं—**उभयोः** = दोनों, पक्षयोः अपि = पक्षों अर्थात् शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की, **अष्टम्याम्** = अष्टमी, **चतुर्दश्याम् वा** = अथवा चतुर्दशी तिथि में, **सूर्योदयम्** = सूर्योदय से, **समारभ्य** = प्रारम्भ करके, **यावत्** = जब तक, **सूर्योदयान्तरम्** = दूसरे दिन का सूर्योदय नहीं हो जाता, **तावत्** = तब तक, **निरातङ्कः** = निर्भयतापूर्वक, **जप्त्वा** = जप करने से, **सर्वसिद्धिश्वरः** = सभी प्रकार की सिद्धियों के अधिपति, **भवेत्** = हो जाता है। (श्रीविद्यार्णवतन्त्र १७)

◉ ◉ ✿ ◉ ◉



अन्तरोपासना—

स्वयं हि त्रिपुरा देवी, लौहित्यं तद्विमर्शनम्।
पाशाङ्कुशौ रागद्वेषौ, मनस्तस्या भवेद्धनुः ।।
शब्दस्पर्शादयो बाणाः,
कर्मधीन्द्रियचक्रस्थां, देवीं संवित्स्वरूपिणीं पूजयेत् सर्वसिद्धये ।।

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र १७)

अब आन्तर-उपासना के सम्बन्ध में लिखते हैं—**स्वयं हि** = साधक स्वयं में ही, **त्रिपुरा देवी** = मैं त्रिपुरा देवी हूँ-इस प्रकार ध्यान-चिन्तन करे। **तत्** = उस त्रिपुरा देवी का, **लौहित्यम्** = लाल रंग का स्वरूप है और यह शरीर भी रक्तमांसादिक से सनी हुई मूर्ति है, इसलिये मैं त्रिपुरा देवी ही हूँ, इस प्रकार की भावना करे। **विमर्शनम्** = इस प्रकार ध्यान-चिन्तन कर विमर्श करे कि–, **रागद्वेषौ** = शरीर में जो राग-द्वेष है, पाशाङ्कुशौ = वही त्रिपुरा देवी का आयुध पाश एवं अङ्कुश है।

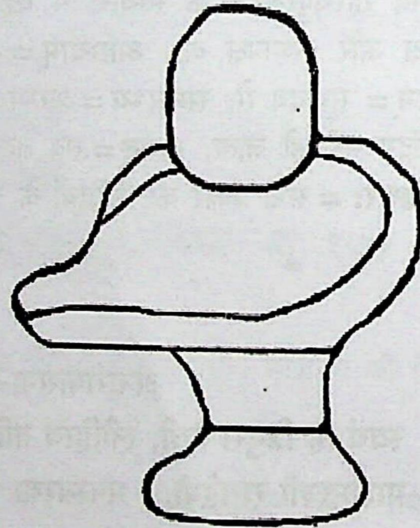
तस्याः = तथा उस देवी का, **धनुः** = धनुष, **मनः** = यह मन है। इस प्रकार जिस शरीर में 'अहम्' अहंकार के कारण मैं अलग कुछ हूँ, ऐसा जान रहा था वह असत् था। अब जाना कि मैं

स्वयं त्रिपुरा अर्थात् तीनों लोकों में अथवा तीनों पुरियों (शरीरों) में व्याप्त त्रिपुरा देवी ही हूँ, ऐसी भावना ही आन्तर साधना है। **शब्दस्पर्शादयः** = इतना ही नहीं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये जो अन्तःकरण के विषय हैं, **बाणाः** = वे उनके बाण हैं, **कर्मधीन्द्रियचक्रस्थाम्** = कर्म नियोक्त्री जो ज्ञानेन्द्रियचक्र (समूह) है उस पर वह विराजमान हैं, **संवित्स्वरूपिणीम्** = ऐसी ज्ञानस्वरूपा, **देवीम्** = देवी का, **सर्वसिद्धये** = सभी प्रकार की सिद्धि के लिए, **पूजयेत्** = उक्त प्रकार से ध्यान करके उपासना करे। (श्रीविद्यार्णवतन्त्र १७)

⊛ ⊛ ❀ ⊛ ⊛

१६ बाणजम्– नर्मदाजलमध्यस्थम्

१५ पारदम्	**७ गोमेदम्**
१४ हीरकम्	**६ इन्द्रनीलम्**
१३ सौवर्णम्	**५ पुष्परागम्**
१२ राजतम्	**४ काश्मीरम्**
११ मौक्तिकम्	**३ पद्मरागम्**
१० वैद्रुमम्	**२ स्फाटिकम्**
९ माणिक्यम्	**१ पाषाणजम्**
८ गारुत्मतम्	(श्रीविद्यार्णवत॰)



यहाँ श्रीविद्यार्णवतन्त्र के अनुसार सोलह प्रकार के लिङ्गों का उल्लेख किया गया है। लिङ्गार्चन का व्यवहार सनातनधर्मावलम्बियों के तान्त्रिक, यौगिक, वैदिक, स्मार्त, भाक्त आदि परम्परा में भूरिशः रहा है। लिङ्ग वस्तुतस्तु अव्यक्त-प्रकाश-ज्ञान-मोक्ष एवं आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही है। व्यक्त लिङ्ग प्रकृति से सम्बद्ध, स्थूल स्वरूप एवं कर्मकाण्डियों का आराध्य है। यद्यपि स्थूलबुद्धि के आराधक भी कर्मकाण्ड विज्ञान के माध्यम से उस सूक्ष्म परमात्मतत्त्व, सत्य, ज्ञान, अनन्त, अपरिमेय, व्यापक ब्रह्म को ही स्मरण-चिन्तन-आराधन करता है, क्योंकि स्थूलग्राहिणी बुद्धि प्रकृति सम्बद्ध लिङ्ग को ही ग्रहण करने (प्रथमावस्था) में अर्ह होती है और आराधना के द्वारा बुद्धि का सूक्ष्मग्रहण सामर्थ्य के उदय होने पर उस सूक्ष्म निरञ्जन-निराकार शिव तत्त्व को ग्रहण कर पाने में वह (बुद्धि) सक्षम होती है। इसलिए प्रत्येक सम्प्रदाय (परम्परा) में प्रथमावस्था के साधक (अर्चक) प्रकृतिसम्बद्ध लिङ्ग का अर्चन-उपासना करते हैं। परन्तु सभी प्रकार की अर्चना-साधना की प्राप्ति परमात्मा ब्रह्म ही है और वह शिव (कल्याण) स्वरूप है—"नृणामेको गम्यः त्वमसि पयसामर्णव

इव'' ''सर्वेषां शास्त्राणां परमात्मनि एव तात्पर्यः'' इस प्रकार शास्त्रों में प्रभूतरूप से कहा गया है।

प्रकृत में विद्यार्णव तन्त्र में सोलह प्रकार के लिङ्गों की चर्चा है, परन्तु अन्य जगहों में—ताम्रजलिङ्ग, रसमयलिङ्ग, रैत्यलिङ्ग, रक्तचन्दनलिङ्ग, शंख, कांस्य, आयस, पार्थिव, पित्तल, रङ्ग, अष्टलोह, त्रिलोह, दारुमय आदि लिङ्गों का उल्लेख और उनके माहात्म्य, आराधना विधि, अधिकारी को दर्शा कर उस-उस लिङ्गार्चन के फल भी कहे गये हैं। कुछ लिङ्गों की अर्चना को कलियुग में निषिद्ध भी किया गया है—

ताम्रलिङ्गं कलौ नार्चेत्, रैत्यस्य सीसकस्य च।
रक्तचन्दनलिङ्गं च, शंखकस्यायसं तथा।। (मत्स्यसूक्ते)

पाषाणजम् = पाषाण (पत्थर) के बने लिङ्ग, **स्फाटिकम्** = स्फटिकशिला से निर्मित, **पद्मरागम्** = पद्मरागमणि से निर्मित, **काश्मीरम्** = केशर से बने लिङ्ग, **पुष्परागम्** = पुष्परागमणिनिर्मित, **इन्द्रनीलम्** = इन्द्रनीलमणि का लिङ्ग, **गोमेदम्** = गोमेद पत्थर का लिङ्ग, **गारुत्मतम्** = गरुत्मत् से निर्मित लिङ्ग, **माणिक्यम्** = माणिक निर्मित लिङ्ग, **वैद्रुमम्** = विद्रुम मणि से निर्मित लिङ्ग, **मौक्तिकम्** = मुक्ता से तैयार लिङ्ग, **राजतम्** = रजत (चाँदी) निर्मित लिङ्ग, **सौवर्णम्** = सुवर्ण (सोना) से निर्मित लिङ्ग, **हीरकम्** = हीरे से निर्मित लिङ्ग, **पारदम्** = पारद (पारा) से बने लिङ्ग और **बाणजम्** = नर्मदा नदी से प्राप्तबाणलिङ्ग ये सोलह लिङ्ग उत्कृष्ट कोटि के हैं, जिसके अर्चन-पूजन और आराधन से भुक्ति-मुक्ति उभय फल प्राप्त होते हैं।

शालिग्रामः—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं, मूलं दूर्वाक्षताः सुत!
जायते मेरुणा तुल्यं, शालिग्रामशिलार्चितम्॥ (स्कान्दे)
शालिग्रामा युगाः पूज्याः, युगेषु द्वितीयं न हि।
अयुग्मा नैव पूज्यन्ते, अयुग्मेष्वेक एव हि।।
स्थूला निहन्ति चैवायुः, निष्कला तु अलाञ्छिता।। (बृहन्नारदीये)

शालिग्रामा युगाः = शालिग्राम शिला यदि घर में दो हों तो उसमें युग्म संख्या की, **पूज्याः** = पूजा करनी चाहिये; **समेषु** = युग्म (जोड़ा) संख्या में से, **द्वितीयम्** = असम संख्या की पूजा, **न हि** = नहीं करनी चाहिये। **अयुग्मेषु** = अयुग्म संख्या में बहुत शिलाएँ हों; तो **एकः** = किसी एक की, **हि** = ही पूजा करनी चाहिये। **स्थूला** = स्थूल शिला के पूजन करने से,

आयुः = आयुष्य का, **एव** = ही, **निहन्ति** = क्षय होता है अर्थात् अधिक स्थूल (विशाल) शिला का पूजन नहीं करनी चाहिये। **निष्कला** = कलाओं से रहित, **अलाञ्छिता** = लाञ्छन (दाग-धब्बा) रहित शालिग्राम शिला ही पूज्य है। परन्तु चक्रांकित, स्फुटित (फूटी हुई) भी शिला पूजा में ग्राह्य है। (बृहन्नारदीयपुराण)

चिन्तामणिः—सरस्वत्याः ।
ॐ ह्रीं ह्स्त्रैं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः ।
कण्वः, त्रिष्टुप्, चिन्तामणि सरस्वती ।

ध्यानम्—

हंसारुढां मौक्तिकाभां, मन्दहास्येन्दुशेखराम् ।
वीणामृतघण्टाक्षस्त्रग् दीप्तहस्तां पंकजस्थिताम् ।। (मेरुतन्त्रे)
एकाक्षरो मन्त्रः 'ऐम्'
जपेत् द्वादशलक्षं तु, मुग्धोऽपि वाक्पतिर्भवेत् । (मन्त्रमहार्णवे)

सरस्वती का चिन्तामणि मन्त्र "ॐ ह्रीं ह्स्त्रैं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः" है। इस मन्त्र के ऋषि कण्व, छन्द अनुष्टुप् और देवता चिन्तामणि सरस्वती जी हैं। चिन्तामणि सरस्वती ध्यान मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार है—

हंसारुढाम् = वे भगवती सरस्वती जी हंस की सवारी करती हैं, **मौक्तिकाभाम्** = उनके शरीर की कान्ति मौतिक के वर्ण की है, **मन्दहास्येन्दुशेखराम्** = वे मन्द-मन्द मुस्कुरा रही हैं और वे मस्तक पर चन्द्रमा धारण की हुई हैं, **वीणामृतघटाक्षस्त्रग्दीप्तहस्ताम्** = उनके कान्तिमय हाथों में अमृतकलश, अक्षमाला, सुशोभित हो रहा है, **पंकजस्थिताम्** = और कमलपुष्प के आसन पर वे विराजती है।

(मेरुतन्त्र)

एकाक्षर सरस्वती चिन्तामणि मन्त्र "ऐम्" है। बारह लाख इस मन्त्र का जप करने से पुरश्चरण होता है और जड़ व्यक्ति भी बृहस्पति के समान विद्वान् वक्ता हो जाता है। (मन्त्रमहार्णव)

सम्पत्सरस्वती मनुः—
क्लीं ऐं सौः सौः ऐं क्लीम् ।
कृष्णः गायत्री, सम्पत्सरस्वती, सम्पत्त्यर्थः—१००००० जपः ।
पायसेन होमः । (शक्तिसङ्गमतन्त्रे २०)

धन-सम्पत्ति के लिये सरस्वती के उपासक को यह मन्त्र जपना चाहिये—"क्लीं ऐं सौः सौः ऐं क्लीम्" ॥ इस मन्त्र के श्रीकृष्ण ऋषि, गायत्री छन्द और सम्पत्सरस्वती देवता एवं समत्तिप्राप्त्यर्थ इस मन्त्र का विनियोग है। इस मन्त्र का एक लक्ष जप करने से पुरश्चरण होता है तथा पुरश्चरणान्त दशांश पायस से होम का विधान है। (शक्तिसंगम तन्त्र २०)

● ● ❁ ● ●

दशाक्षरो मृत्युञ्जयो मन्त्रः—

ॐ जूँ सः मां पालय सः जूँ ॐ ।।
वामदेवः, पंक्तिः, मृत्युञ्जयो महारुद्रो देवता,
मृत्युनिवारणे विनियोगः ।। (श.सं.त. २०)
त्र्यक्षरमृत्युञ्जयः—ॐ जूँ सः ।
कहोलः, दैवी गायत्री, मृत्युञ्जय महादेवः । (मन्त्ररत्नमंजूजा)
ओकारयुतश्चामुण्डाशापविमोचनम् मनुः—
निस्त्रिंशः साधकं छिन्द्यान्निस्त्रिंशेन न संशयः ।

(पुरश्चर्यार्णव प्रथम खण्ड मंत्रशाप प्रकरण)

दशाक्षर मृत्युञ्जय मन्त्र विधि लिखते हैं—मृत्युञ्जय का दशाक्षर मन्त्र "ॐ जूँ सः मां पालय सः जूँ ॐ" है। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, पंक्ति छन्द और मृत्युञ्जय महारुद्र देवता हैं तथा मृत्यनिवारणार्थ इसका विनियोग है। (श.सं.त. २०) इसी प्रकार मृत्युञ्जय त्र्यक्षरमन्त्र "ॐ जूँ सः" का कहोल ऋषि, दैवी गायत्री छन्द और मृत्युञ्जय महादेव देवता तथा मृत्यु निवारण में इसका विनयोग है।

(मन्त्ररत्नमञ्जूषा)

व्याख्या—ऊँकार युक्त चामुण्डा शाप विमोच मन्त्र यह है—"निस्त्रिंशः साधकं छिन्द्यान्निस्त्रिंशेन न संशयः ।"

● ● ❁ ● ●

पञ्चब्रह्ममयः शिवः–

१. ब्रह्मा-सद्योजातः–सर्वजनशक्त्युपहितः ।

२. विष्णुः–वामदेवः–पालनशक्त्युपहितः ।

३. रुद्रः–अघोरः–संहारशक्त्युपहितः ।

४. सदाशिवः–तत्पुरुषः–तिरोभावशक्त्युपहितः ।

५. ईश्वरः–ईशानः–अनुग्रहशक्त्युपहितः ।

परशिव का पञ्चब्रह्ममय पाँच रूप यहाँ कहे गये हैं। परशिव का प्रथम ब्रह्मा देवता और सद्योजात ऋषि हैं एवं वे समष्टिजनन (सर्वजनीन) शक्ति से उपहित हैं। द्वितीय परशिव के विष्णु देवता, वामदेव ऋषि हैं, जो सम्पूर्ण जन के पालनशक्ति से सम्पन्न हैं। तृतीय परशिव के रुद्रदेवता, अघोर ऋषि हैं, जो संहारशक्ति सम्पन्न हैं। चतुर्थ परशिव के सदाशिव देवता तत्पुरुष ऋषि हैं और वे तिरोभाव (लय-विलीन) कर लेने की शक्ति से उपहित हैं। पाँचवें के ईश्वर देवता और ईशान ऋषि हैं, जो अनुग्रहशक्तिसम्पन्न हैं।

• • ✿ • •

अजपानाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी
अरुणकिरणजालै रञ्जिता सावकाशा,
विधृत जपवटीका पुस्तकाभीतिहस्ता ।
इतरकरवराढ्या फुल्लकह्लारसंस्था,
निवसतु हृदि बाला, नित्यकल्याणशीला ।। (मन्त्रकोषः)

अपजा नामक गायत्री ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर की भी ईश्वरी है। अब गायत्री के ध्यान को लिखते हैं—जो भगवती आकाश में स्थित अरुण (रक्त) किरणसमूह से रञ्जित (सुशोभित) हो रही है और जो हाथ में जपमालिका, पुस्तक तथा अभय मुद्रा धारण की हुई है एवं इतर कर दाहिने हाथ में वरमुद्रा धारण की हुई है तथा जो प्रफुल्ल (खिले हुए) कमल पुष्प पर आसन लगायी हुई है, ऐसी नित्य कल्याण प्रदान करनेवाली भगवती बाला मेरे हृदय में वास करे। (मन्त्रकोष)

• • ✿ • •

भक्तिः—

वैधी— रागानुगा—निर्गुणा

श्रवणं, कीर्तनं, अर्चनं

पादसेवनं, स्मरणं, वन्दनं अनुरागादेव

श्रवणादौ

दास्यं, संख्यं, आत्मनिवेदनम् प्रवृतिः

पुनः प्रत्येका त्रिधा—

सात्त्विकी, राजसी, तामसी। तत्रानावृत

सापि प्रत्येका त्रिधा— पूर्णानन्दस्फूर्तिः।

सात्त्विक सात्त्विकी—सिद्ध्यर्था,

सा.रा.—हरिप्रीत्यर्था, पापक्षयार्था सा.ता.।

राजसी—

रा.सा.—ऐश्वर्यार्था, रा.रा.—यशोऽर्था।

रा.ता.—विषयार्था।

तामसी—

ता.सा.—मात्सर्यर्था, ता.रा.—दम्भार्था।

ता.ता.—हिंसार्था।। (वीरमित्रोदयभक्ति ख.)

यहाँ भक्ति पर सम्यग् विचार किया जा रहा है—"भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियतेऽनयेति भक्तिरिति करणव्युत्पत्त्या—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्।।" (भागवत्पु. ५-२३)

जिस सेवा की विशेष विधि (उपासना) के द्वारा अन्तःकरण की वृत्ति को भगवदाकार रूप से उस सेवा की विशेष विधि (उपासना) के द्वारा अन्तःकरणवृत्ति के भावविशेष को भक्ति कहते हैं। ये उपर्युक्त नवधोक्ता साधन भक्ति के नाम से कहा जाता है—"इति नवधोक्ता साधनभक्तिरभिधीयते" (इति हठदीपिकाटीकायां ब्रह्मानन्दः) भगवान् पतञ्जलि भक्ति के सन्दर्भ में कहते हैं—"ईश्वरप्रणिधानाद्वा" (पा.यो.सू. १/२३) ईश्वरविषयकात् प्रणिधानात् भक्तिविशेषात् समाधिलाभः समाधिफलं भवतीति

सूत्रार्थः। भजनमन्तःकरणस्य भगवदाकारतारूपं भक्तिरिति भावव्युत्पत्त्या फलभूता भक्तिरभिधीयते। सैव प्रेमभक्तिरित्युच्यते।'' (हठदीपिका ज्योत्स्नाटीकायां) अर्थात् ईश्वर के प्रणिधान (भक्तिविशेष) से समाधिलाभ (प्राप्ति) होती है अथवा समाधिरूप फल प्राप्त होता है, यही योगसूत्रकार पतञ्जलि भगवान् का आशय है। अथवा ''भजनं भक्तिः'' भी अर्थ हो सकता है; क्योंकि अन्तःकरण का जो भगवदाकाररूप है वही भजन है, वही भक्ति है अथवा भावव्युत्पत्ति से उत्पन्न फलभूता भक्ति है। जिसे प्रेमा भक्ति कहा जाता है। परन्तु स्वामी नारायण तीर्थ का कथन है ''प्रेमभक्तियोगस्तु ईश्वरचरणारविन्दविषयकैकान्तिकात्यन्तिकप्रेमप्रवाहोऽविच्छिन्नः'' इति। अर्थात् ईश्वर चरणारविन्द विषयक ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अविरल (अखण्ड) प्रेमप्रवाह को प्रेमभक्ति योग कहा जाता है। आचार्य स्वामी मधुसूदन सरस्वती का कथन है कि—''द्रवीभावपूर्विका मनसो भगवदाकारतारूपा सविकल्पकवृत्तिः भक्तिः'' इति। अर्थात् मन का द्रवीभावपूर्वक जो भगवदाकार रूप सविकल्पक चित्तवृत्तिविशेष होता है, उसे भक्ति कहा जाता है। प्रसंग में उपर्युक्त नवधा भक्ति को उपस्थित करते हुऐ जो उसके नौ प्रकार दिये गये हैं और जिसे वैधी भक्ति कहा गया है, उसके विषय में अब कहा जा रहा है कि—उन भागवतोक्त श्रवणादि नौ प्रकार की भक्ति में उपास्य के प्रति अनुराग के आधिक्य के कारण श्रवणादि में भक्तों की प्रवृत्ति होती है। इसलिए इसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। परन्तु जो साधक-भक्त निर्गुण उपास्य के प्रति प्रवृत्ति रखते हैं, वे अनावृत्त पूर्णानन्द की स्फूर्ति की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं। इस तरह वैधी भक्ति के दो भेद यहाँ कहे गये—(१) रागानुगा, (२) निर्गुणा। पुनः उन प्रत्येक के तीन-तीन भेद हैं—(१) सात्त्विकी, (२) राजसी तथा (३) तामसी। इन तीनों सात्त्विक्यादि भक्ति साधना से भी पूर्णानन्द ब्रह्म की स्फूर्ति का साक्षात्कार होता है। पुनः उपर्युक्त सात्त्विकी भक्ति के भी तीन भेद होते हैं—(१) सात्त्विक सात्त्विकी, (२) सात्त्विक राजसी एवं (३) सात्त्विक तामसी। सात्त्विक सात्त्विकी भक्ति उपास्य की सिद्धि को प्रदान करनेवाली होती है। सात्त्विक राजसी भक्ति में भगवान् हरि को प्रिय वस्तुओं के अर्पण द्वारा सेवा-भक्ति की जाती है और सात्त्विक तामसी भक्ति से साधक-भक्त के पूर्वकृत पापों का क्षय होता है। राजसी भक्ति के भी तीन भेद हैं—(१) राजस सात्त्विकी, (२) राजस राजसी तथा (३) राजस तामसी। राजस सात्त्विकी भक्ति से ऐश्वर्य की प्राप्ति, राजस राजसी से यश की प्राप्ति और राजस तामसी भक्ति से साधक-भक्त को सांसारिक एवं दिव्य भोग की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तामसी भक्ति के भी तीन भेद होते हैं—(१) तामससात्त्विकी, (२) तामस राजसी और (३) तामस तामसी। तामस सात्त्विको भक्ति से मात्सर्य (एक दूसरे की भक्ति से ईर्ष्या) होत हैं, तामस राजसी भक्ति में साधक को साधना कर्म का दम्भ होता है एवं तामस तामसी में साधक-भक्त साधना में हिंसा को स्वीकारते और वैसा आचरण भी करते हैं। ऐसे साधना पथ के पथिक आराध्य देवता के उद्देश्य से पशुबलि, नरबलि का व्यवहार करते हैं। (वीरमित्रोदय भक्ति खण्ड)

यस्य हस्तौ च पादौ च, मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च, स तीर्थफलमश्नुते।।
अश्रद्दधानः, पापात्मा, नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिंष्ठश्च पञ्चैते, न तीर्थफलभागिनः।।(स्क.पु.का.ख. ६)

जिस व्यक्ति का दोनों हाथ-पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सुसंयत है, वही तीर्थ का फल प्राप्त करता है, अन्य नहीं। जो वेद, पुराणादि का, देव-द्विज, मातृ-पितृ आदि में श्रद्धाभाव नहीं रखता और पापात्मा है, नास्तिक, संशयात्मा तथा स्वार्थी हैं, ऐसे पाँचों प्रकार के व्यक्ति तीर्थफल को नहीं पाते। (स्कन्दपुराण का.ख. ६)

रविसप्तति नाम–

हंसो भानुः सहस्रांशु, स्तपनस्तापनो रविः।
विकर्तनो विवस्वांश्च, विश्वकर्मा विभावसुः।।१।।
विश्वरूपो विश्वकर्ता, मार्तण्डो मिहिरोंऽशुमान्।
आदित्यश्चोष्णगुः सूर्योऽर्यमा ब्रध्नो दिवाकरः।।२।।
द्वादशात्मा सप्तहयो, भास्करोऽहस्करः खगः।
सूरः प्रभाकरः श्रीमान्, लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः।।३।।
त्रिलोकेशो लोकसाक्षी, तमोऽरिः शश्वतः शुचिः।
गभस्ति हस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः सुमहोरणिः।।४।।
द्युमणिर्हरिदश्वोऽर्को, भानुमान् भयनाशनः।
छन्दोऽश्वो वेदवेद्यश्च, भास्वान् पूषा वृषाकपिः।।५।।
एकचक्ररथो मित्रो, मन्देहारिस्तमिस्रहा।
दैत्यहा पापहर्ता च, धर्मो धर्मप्रकाशकः।।६।।
हेलिकश्चित्रभानुश्च, कलिघ्नस्ताक्ष्र्यवाहनः।
दिग्पतिः पद्मिनीनाथः, कुशेशयकरो हरिः।।७।।

धर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डाशुः कश्यपात्मजः ।
एभिः सप्ततिसंख्याकैः,पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ।।८।।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तर्नमस्कारसमन्वितैः ।
दद्यादर्घ्यमनर्घ्याय, सवित्रे ध्यानपूर्वकम् ।।९।।
प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्यादुदयास्तमये रविम् ।
व्याधिभिर्मुच्यते घोरर्न दरिद्रो न दोषभाक् ।।१०।।
कालेन निधनं प्राप्य, सूर्यलोके महीयते ।

(स्क.पु.का.ख.१०)

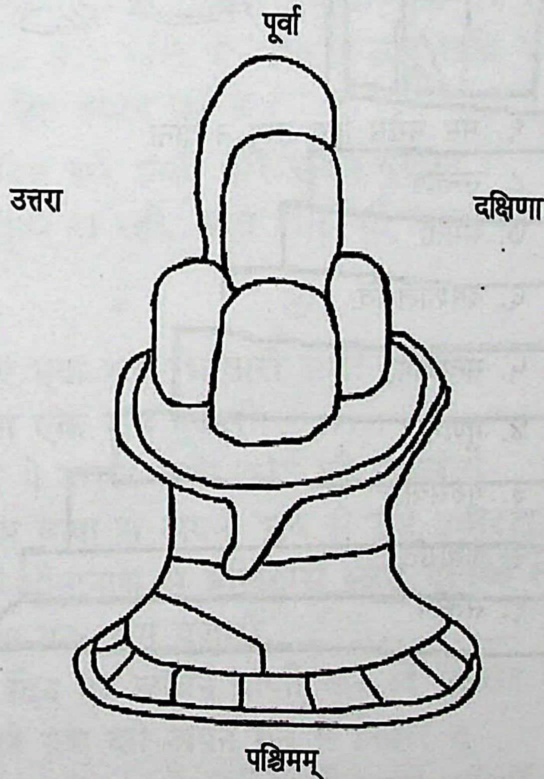
स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में सूर्य के सत्तर नामों से आराधना का विधान किया गया है। सूर्य के सत्तर नाम क्रमशः ये हैं—(१) हंस, (२) भानु, (३) सहस्रांशु, (४) तपन, (५) तापन, (६) रवि, (७) विकर्तन, (८) विवस्वान्, (९) विश्वकर्मा, (१०) विभावसु, (११) विश्वरूप, (१२) विश्वकर्ता (१३) मार्तण्ड, (१४) मिहिर, (१५) अंशुमान्, (१६) आदित्य, (१७) उष्णगु, (१८) सूर्य, (१९) अर्यमा, (२०) ब्रध्न, (२१) दिवाकर, (२२) द्वादशात्मा, (२३) सप्तहय, (२४) भास्कर, (२५) अहस्कर, (२६) खग, (१७) सूर, (२८) प्रभाकर, (२९) श्रीमान्, (३०) लोकचक्षु, (३१) ग्रहेश्वर (३२) त्रिलोकेश, (३३) लोकसाक्षी, (३४) तमोऽरि, (३५) शाश्वत, (३६) शुचि, (३७) गभस्तिहस्त, (३८) तीव्राशुः, (३९) तरणि, (४०) सुमहोरणि, (४१) द्युमणि, (४२) हरिदश्व, (४३) अर्क, (४४) भानुमान्, (४५) भयनाशन, (४६) छन्दोऽश्व, (४७) वेदवेद्य, (४८) भास्वान्, (४९) पूषा, (५०) वृषाकपि, (५१) एकचक्ररथ, (५२) मित्र, (५३) मन्देहारि, (५४) तिमिस्रहा, (५५) दत्यहा, (५६) पापहर्ता, (५७) धर्म, (५८) धर्मप्रकाशक, (५९) हेलिक, (६०) चित्रभानु, (६१) कलिघ्न, (६२) ताक्ष्यंवाहन, (६३) दिक्पति, (६४) पद्मिनीनाथ, (६५) कुशेशयकर, (६६) हरि, (६७) धर्मरश्मि, (६८) दुर्निरीक्ष्य, (६९) चण्डाशु, (७०) कश्यपात्मज।

इन सत्तर नाममन्त्रों से सूर्य उपासना का विधान है कि–उपासक ताम्रपात्र में शुद्ध जल, लालचन्दन, लाल पुष्प लेकर प्रत्येक नाम मन्त्र में चतुर्थी विभक्ति का संयोजन कर नमस्कारसहित उदयकालिक और अस्तकालिक सूर्यनारायण को अर्घ्य दे। प्रत्येक नाम मन्त्र के पूर्व प्रणव ओम् का उच्चारण करे और नाम मन्त्र का चतुर्थ्यन्त उच्चारण पूर्वक अर्घ्यदान के साथ नमः शब्द अन्त में उच्चारण करे। इस तरह उपासना करने से उपासक दरिद्र नहीं होता। किसी प्रकार का उसे दुःख नहीं रह जाता, भयंकर से भयंकर जन्म-जन्मान्तर के व्याधियों से छुटकारा मिल जाता है और वह दरिद्रता तथा अन्य दोषों से मुक्त होकर अपनी आयुपूर्ण कर मृत्यु के उपरान्त सूर्यलोक को प्राप्त करता है।

(स्क.पु.का.ख. १०)



१	२	३	४	५
सद्योजातः शुक्लं पश्चिमे भूमिः	वामदेवः पीतवर्णं उत्तरे जलम्	अघोरः कृष्णं दक्षिणे अग्निः	तत्पुरुषः रक्तः पूर्वे वायुः	ईशानः श्यामलम् मध्ये आकाशः



भगवान् शिव के पाँच मुखों में प्रथम सद्योजात देवता पश्चिमवाला मुख है। इसका वर्ण शुक्ल और तत्त्व भूतत्त्व है। द्वितीय उत्तर मुख के वामदेव देवता हैं, जिनका वर्ण पीत और तत्त्व जलतत्त्व है। तृतीय मुख दक्षिण में कृष्ण के वायुदेवता हैं। अघोर अग्नितत्त्वरूप हैं। चतुर्थमुख पूर्व में रक्तवर्ण के तत्पुरुष देवता हैं। तत्पुरुष वायुतत्त्वरूप हैं। मध्य में श्यामलवर्ण के ईशान देवता आकाश तत्त्वस्वरूप हैं।

९. मम भरोस हिय हरषु न दीना
८. सन्तोष
७. समता
६. दमशील वि.
५. मन्त्रजाप
४. गुणगान
३. गुरुसेवा
२. कथारति
१. सत्संग

भक्ति का प्रथम चरण सत्सङ्ग, द्वितीय भगवद्भक्तिकथा में रति, तृतीय गुरु की निश्छल सेवा, चतुर्थ भगवद्गुणगान, पञ्चम भगवद्नाममन्त्र का जाप, छठी भक्ति इन्द्रिय पर दमन का स्वभाव और विविध कर्मप्रपञ्च से विरक्तिभाव, सातवीं समता, आठवीं सन्तोष, और नौवी भक्ति भगवान् के भरोसे पर दीनता और हर्षरहित होकर जीवन यापन करना ये नव भक्ति के प्रकार हैं



जित देखौं तित श्याम मई है ।
श्याम कुञ्ज वन जमुना श्यामा, श्याम गगन घन घटा छई है ।।
सब रंगन में श्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है ।
मैं वौरी की लोगन की ही, श्याम पुतरिया बदल गई है ।।
चन्द्रसार रविसार श्याम है, मृगमद श्याम काम विजयी है ।
नीलकण्ठ को कण्ठ श्याम है, मनो श्यामता वेलि वई है ।।
श्रुति को अक्षर श्याम देखियत, दीपशिखा पर श्याम तई है ।
नर देवन की कौन कथा है, अलख ब्रह्म छवि श्याम मई है ।।
जित देखौं तित श्याम मई है ।

हरि हेरत हिय हरि गयो, हरि सर्वत्र देखात ।
अपनी हूँ सुधि ना रही, कहा और की बात ।।



दाता एक राम भिखारी सारी दुनियाँ,
दाता एक राम पुजारी......... ।।
द्वारे पे उसके जाके कोई भी पुकारता,
परम कृपा से अपनी भव से उसे उबारता,
ऐसे दीनानाथ से बलिहारी सारी दुनियाँ ।।
दाता एक राम पुजारी.................. ।।
दो दिन का जीवन प्राणी कर ले विचार तू,
प्यारे प्रभु को अपने मन में निहार तू
विना हरिनाम के दुखियारी सारी दुनियाँ ।।
दाता एक राम पुजारी.................. ।।
नाम का प्रकाश जब अन्दर में उगायेगा,
प्यारे श्रीराम का दरसन तू पायेगा ।
ज्योति से जिसकी उजारी सारी दुनियाँ ।।
दाता एक राम पुजारी................ ।।

मन की तरंगें मार लो, तब हो जायगा भजन ।
आदत बुरी सुधार लो, तब हो जायगा भजन ।।
पापों की गंदगी लगी, मैला कुसंग रंग,
धो पाप मन को शान्त कर, तब हो जायगा भजन ।।
झूठे जगत में वासना के, भूत पर चढ़ा,
भटके हैं इससे भाग ले, तब हो जायगा भजन ।।
क्या है भजन जाना नहीं, मन की गढ़ंत में,
आँखे अकल की खोल ले, तब हो जायगा भजन ।।
है लक्ष्य तेरा क्या इसे, जाना नहीं अभी ।
साखी बना लो शास्त्र को, तब हो जायगा भजन ।।
आदत बुरी सुधार लो, तब हो जायगा भजन ।।



आना है तो उस राह में, कुछ फेर नहीं है
भगवान् के घर देर है, अन्धेर नहीं है ।।
आना है तो आ......................।।
जब तुझसे न सुलझे तेरे, उलझे हुए ये धन्धे ।
भगवान् के इन्साफ पे, सब छोड़ दे वन्दे;
खुद ही वो तेरी मुश्किल को, नित आसान करेगा ।
जो तू नहीं कर पाया वो, भगवान् करेगा ।।
आना है तो आ......................।।१।।
इस दर पे तेरा शीश, झुकाना ही बहुत है ।
जो कुछ है तेरे दिल् में, सब उसको खबर है ।
वन्दे तेरे हाल पे, मालिक की नजर है ।।
आना है तो आ......................।।२।।

विन माँगे भी मिलती है, यहाँ मन की मुरादें।
दिल साफ हो जिसका, वो यहाँ आके अदा दे।।
मिलता है जहाँ न्याय, वो दरबार यही है।
संसार की सबसे बड़ी सरकार यही है।।
आना है तो आ........................।।३।।
आया नहीं भगवान् को, दरबार में अब तक।
कमबख्त के कोड़े पड़े, बाजार में जब तक।
अपने करम फल पाने का, भण्डार यही है।।
आना है तो आ........................।।४।।



विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः।
अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत्।।(भागवत ७/१५/१२)

१. विधर्मः—धर्मबुद्ध्यापि कृते, यस्मिन् क्रियमाणे स्वधर्मस्य बाधः स्यात्।

२. परधर्मः—अन्येनान्यस्मै उपदिष्टः।

३. आभासः—स्वाश्रमविपरीतस्वेच्छया कल्पितः।

४. उपमाः—पाखण्डो दम्भो वा।

५. छलः—शास्त्रवचनानामन्यथाऽर्थकरणम्।

अधर्म की पाँच शाखाएँ।

अर्थ—विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा तथा छल- ये अधर्मरूपी वृक्ष की पाँच मोटी-मोटी शाखाएँ हैं, धर्मज्ञ पुरुष को चाहिये की अधर्म के समान इनका यत्नपूर्वक त्याग कर दे।

सम्बन्ध—अधर्मरूपी वृक्ष के पाँच शाखाओं के स्वरूप का वर्णन।

व्याख्या—१. "धर्मबाधो विधर्मः स्यात्" धर्मबुद्धि से भी जिस कर्म के करने पर किसी के स्वधर्म में बाधा पड़े, तो उसे विधर्म कहते हैं। जैसे—कोई मन्दिर में बैठ कर जप कर रहा हो,

आप आए और वहीं मन्दिर धूलने लग गये, वह व्यक्ति भींग गया, उसके आसन गीले हो गये, अब वह जप कैसे करे, उसके धर्म में बाधा लगी, अतः आपका कार्य विधर्म हो गया; आप बाद में धुल सकते थे, उसे सूचित कर सकते थे, पश्चात् अपना कार्य करते।

इसी (विधर्म) को अन्य प्रकार-से समझें। कोई 'सन्त' आये हैं भीड़ लगी है, आप हाथों में फूलों की माला लिये लोगों के पैरों को पैरों-से दबाते माला पहनाने पहुँच गये, आपने सन्त के दर्शन में उनको बाधा पहुँचाई, अतः आपका यह कार्य विधर्म हो गया।

२. अन्यस्य क्षत्रियादेश्चोदितो विहितो यो धर्मः युद्धादिः सोऽन्यस्य ब्राह्मणादेः परधर्मः। "परधर्मोऽन्यचोदितः" ब्राह्मण वैश्य, शूद्र से अन्य क्षत्रिय के लिये शास्त्र ने जो आज्ञा प्रदान की है, युद्धादि की वह क्षत्रिय से अन्य ब्राह्मण वैश्य, शूद्र के परधर्म है। "सन्ध्या वन्दन". द्विजाति के लिये धर्म है, वही शूद्रादि के लिये परधर्म है।

३. **आभास**—धर्म इव आभास ते इति धर्माभासः न तु धर्मः। जो धर्म के सदृश प्रतीत होता है उसे धर्माभास कहते है। यस्तु पुंभिः स्वेच्छया चतुर्भ्य आश्रमेभ्यः पृथग् अवधूताद्याश्रमः कल्पितः स आभासः। जो मनुष्यों के द्वारा स्वेच्छया चारों आश्रमों से पृथक् अवधूतादि आश्रमों की कल्पना कर ली गई है, वह आभास कहलाता है।

४. **उपमा**—"उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा" पाखण्ड या दम्भ (दिखावे) का नाम 'उपधर्म' अथवा 'उपमा' है। पाखण्डः वेदविरुद्धागमोक्तो धर्मः दम्भो वा परवञ्चनार्थो वा धर्मः उपधर्मः। वेदविरुद्ध आगमोक्त धर्म पाखण्ड है तथा परवञ्चनादि दम्भ है। पहले स्त्रियाँ भी वेद पढ़ती थीं, तो आज क्यों नहीं पढ़ सकती। पहले ऐसा हुआ तो आज क्यों नहीं, इस प्रकार के दृष्टान्त से धर्म का निर्णय नहीं होता।

५. **छलः**—शास्त्रवचनानामयथाऽर्थकरणम्। शास्त्र के वचनों का अर्थ जैसा होना चाहिये, वैसा न कर दूसरे प्रकार का अर्थ कर देना छल है "शब्दभिच्छलः" शब्दस्य भिद् भेदनं मुख्यार्थबाधनं छलः। यथा—"न मांसभोजने दोषो न मद्ये न च मैथुने" इत्यादि शास्त्रवाक्यो को शास्त्रा की आज्ञा है, ऐसा अर्थ करना।

"अधर्मशाखा पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत्" अधर्म की इन पाँच शाखाओं को धर्मज्ञ पुरुष अधर्म के समान ही त्याग दे।

१. ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म

२. ऐं सच्चिदेकं ब्रह्म

३. ह्रीं सच्चिदेकं ब्रह्म
४. श्रीं सच्चिदेकं ब्रह्म

अकारेण जगत्पाता संहर्ता स्यादुकारतः ।
मकारेण जगत्स्रष्टा प्रणवार्थ उदाहृतः ।।३२।।
''सच्छब्देन सदा स्थायि चिच्चैतन्यं प्रकीर्तितम्''
एकमद्वैतमीशानि बृहत्त्वाद् ब्रह्म गीयते ।
मन्त्रार्थं कथितो देवि साधकाभीष्टसिद्धिदः ।।३४।।
मन्त्रचैतन्यमेतत्तु तदधिष्ठातृदेवता ।।३५।।
अस्याधिष्ठातृदेवेशि सर्वव्यापि सनातनम् ।
अवितर्क्यं निराकारं वाचातीतनिरञ्जनम् ।।३६।।
वाङ्मायाकमलाद्येन तारहीनेन पार्वति ।
दीयते विविधा विद्या मायाश्रीः सर्वतोमुखी ।।३७।।

मन्त्र जपार्थ न्यास प्रयोग—करन्यास
ओम् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
सत् तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
चिन्मध्यमाभ्यां वषट् ।
एकमनामिकाभ्यां हुम् ।
ब्रह्म कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
ओम् सच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।
अङ्गन्यास—ओम् हृदयाय नमः ।
चिच्छिखायै वषट्।
सच्छिरसे स्वाहा ।
एकं कवचाय हुम् ।
ब्रह्म नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ओम सच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

ब्रह्ममानसपूजा—

गन्धं दद्यान्महीतत्त्वं पुष्पमाकाशमेव च।
धूपं दद्याद्वायुतत्त्वं दीपं तेजः समर्पयेत्।
नैवेद्यं तोयतत्त्वेन प्रदद्यात्परमात्मने।।५२।।

सर्वप्रथम "प्रणव" मन्त्र का उच्चारण करे पश्चात् "सच्चित्" पद का उच्चारण करे, पुनः "एकम्" पद का उसके बाद "ब्रह्म" पद का उच्चारण करे। इस प्रकार क्रम से एक-एक पद का उच्चारण करने पर "ओम् सच्चिदेकं ब्रह्म" मन्त्र का उद्धार होगा। यह मन्त्र सिद्ध-असिद्ध-अरि-मित्र आदि दोषों से रहित है।

इसके अनुष्ठान के लिए तिथि-नक्षत्र, राशि, आदि का विचार; कुलाकुलादि के नियम या संस्कार की भी अपेक्षा नहीं होती।

"सर्वथा सिद्धमन्त्रोऽयं नात्र कार्या विचारणा" यह मन्त्र सर्वथा सिद्ध है, इसमें किसी प्रकार का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। किसी सद्गुरु से इस मन्त्र को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

"मन्त्रग्रहणमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत्" ब्रह्ममन्त्र को ग्रहणमात्र-से देही ब्रह्ममय हो जाता है। साधक को मन्त्र का अर्थ एवं उसकी चैतन्य शक्ति को जानकर इस मन्त्र का जप करना चाहिये।

"अतोऽस्यार्थं च चैतन्यं कथयामि शृणु प्रिये"

अर्थ—"अ"—कार का अर्थ है जगत्पाता, "उ"—कार का अर्थ है संहारकर्ता और "म" कार का अर्थ जगत् की सृष्टि करनेवाला, प्रणव का यही अर्थ कहा गया है।।३२।।

अर्थ—"सत्" शब्द का तात्पर्य है सदास्थायी एवं चित् शब्द का अर्थ 'चैतन्य' कहा गया है।

हे ईशानि! "एक" शब्द का अर्थ हैं द्वैतभाववर्जित, बृहत् होने से ब्रह्म कहा जाता है। हे देवि! यह साधकों का अभीष्ट करने वाला मन्त्र का अर्थ मैंने तुमसे कहा है।।३४।।

अर्थ—मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता का ज्ञान होने को ही मन्त्र चैतन्य कहते हैं।।३५।।

अर्थ—हे देवेशि! जिस तत्त्व को अवितर्क्य, सर्वव्यापी, सनातन, निराकार, वाचातीत एवं निरंजन अर्थात् अमल कहते हैं, वह विभु परमात्मा ही इस मंत्र के देवता हैं।।३६।।

अर्थ—"ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म" मन्त्र प्रणव छोड़कर "ऐं", "ह्रीं" तथा "श्रीं" को प्रणव के स्थान पर जोड़कर नाना विद्या, माया और सर्वतोमुखी लक्ष्मी प्रदान करने वाली हो जाती है ॥३७॥

अर्थ—न्यास के पश्चात् "ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मूलमन्त्र के द्वारा अथवा प्रणव मन्त्र से आठ, बत्तीस एवं सोलह के क्रम से पूरक, कुम्भक एवं रेचक करे। प्राणायाम के बाद चैतन्य ब्रह्म का हृदय में ध्यान करे। मन्त्र—

ॐ हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपं सकलभुवनबीजं ब्रह्म चैतन्यमीडे ।।

जो निर्विशेष सम्पूर्ण विशेषणों से अथवा भेदों से शून्य चेष्टा या क्रिया रहित, हरिहर एवं ब्रह्मा के भी जानने योग्य योगियों के द्वारा ध्यान गम्य, जिनकों जानकर साधक जन्म-मृत्यु के भय-से रहित हो जाता है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के बीजस्वरूप है, उस ब्रह्म चैतन्य की मैं स्तुति करता हूँ। इस प्रकार ध्यान कर के साधक श्रद्धा एवं भक्ति के साथ मानसोपचार के द्वारा ब्रह्म की अर्चना करें।

अर्थ—मानस पूजा में पृथ्वी-तत्त्व को गन्ध के रूप में कल्पना कर गन्ध अर्पण करें। जैसे—

१. ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि। हे देव! मैं पृथ्वीस्वरूप चन्दन आपको समर्पित कर रहा हूँ। ऐसे ही
२. ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि। (समर्पयामि)
३. ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि। (आघ्रापयामि)
४. ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं परिकल्पयामि। (दर्शयामि)
५. ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।
६. सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

इसके बाद मन-ही-मन "ओम् सच्चिदेकं ब्रह्म" उस महामन्त्र का जप कर ब्रह्म को समर्पण करे अनन्तर बाह्य पूजा आरम्भ करे। अन्त में पुनः "ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मूल मन्त्र का जप करे। जप समर्पण करके स्तोत्र एवं कवच का पाठ करे।



ॐ अग्निरिति भस्म । ॐ वायुरिति भस्म ।
ॐ जलमिति भस्म । ॐ स्थलमिति भस्म ।
ॐ व्योमेति भस्म । ॐ सर्वं हवा इदं भस्म ।

ॐ मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति।
ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे।
ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्।
ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति भुजयोः।
ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति हृदये।

भस्मानुलेपन से पूर्व शक्ति के अधान के लिए भस्म को अभिमन्त्रित करने की शास्त्रीय विधि है। भस्म को वाम हस्त में रखकर जल डालकर मिलाते हुए "अथर्वशिर उप०" के "अग्निरिति" मन्त्रों का पाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे" उच्चारण कर ललाट में तर्जनी मध्यमा एवं अनामिका अंगुली से त्रिपुण्ड्र (तीन रेखा बाएँ से दायें तरफ खींचना चाहिये।

यह अग्नि भस्म है। यह वायु भस्म है।
यह जल भस्म है। स्थल भी भस्म है।
यह आकाश भस्म है। निश्चय ही यह सारा संसार भस्म है।
मन सहित चक्षुत्रय भी भस्म संज्ञक ही है।
ग्रीवा में।
दोनों भुजाओं में तथा मणिबन्ध से किञ्चित् ऊपर लगाये।
हृदय में लगाना चाहिये।



बृहस्पतिकृतं शिवस्तोत्रम्।

"बृहस्पतिरुवाच"

जय देव परानन्द जय चित्सत्यविग्रह।
जय संसाररोगघ्न जय पापहर प्रभो।।१।।
जय पूर्ण महादेव जय देवारिमर्दन।
जय कल्याण देवेश जय त्रिपुरमर्दन।।२।।
जय हंकारशत्रुघ्न जय मायाविषापह।
जय वेदान्तसंवेद्य जय वाचामगोचर।।३।।
जय रागहरश्रेष्ठ जय द्वेषहराग्रज।

जय साम्ब सदाचार जय सर्वसामद्भुत ।।४।।
जय ब्रह्मादिभिः पूज्य जयविष्णो परामृत ।
जय विद्यामहेशान जयविद्याप्रदानिशम् ।।५।।
जय सर्वाङ्गसम्पूर्ण नागाभरणभूषित ।
जय ब्रह्मविदां प्राप्य जय भोगापवर्गद ।।६।।
जय कामहर प्राज्ञ जय कारुण्यविग्रह ।
जय भस्म महादेव जय भस्मावगुण्ठित ।।७।।
जय भस्मरतानां तु पाशभङ्गपरायण ।
जय हृत्पंकजे नित्यं यतिभिः पूज्यविग्रह ।।८।।

अर्थ—बृहस्पति जी ने कहा—हे दिव्य प्रकाशयुक्त, परमानन्दस्वरूप, आप ज्ञानस्वरूप हैं, सत्यमूर्ति हैं, संसाररोग का समूल नाशक, पाप का हरण करने वाले सर्वसमर्थ प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो, जय हो ।।१।।

अर्थ—श्रुति कहती है—"पूर्णमदः" ऐसे पूर्ण महादेव आपकी जय हो, देवता के अरि (शत्रुओं) का मर्दन करने वाले आपकी जय हो। हे देवताओं के ईश सब पर शासन करनेवाले, कल्याणस्वरूप त्रिपुरासुर के भी मर्दनकर्ता आपकी जय हो जय हो ।।२।।

अर्थ—अहंकाररूपी सबसे बलवान् शत्रु के भी शत्रु इसका नाश कर भक्तों को सुख देने वाले, आपकी जय हो। माया (मैं-मेरा, तू-तेरा) रूप विष के अपहर्ता आपकी जय हो ।।३।।

अर्थ—वेदान्तवाक्यों से जाने जानेवाले आपकी जय हो। आप तक वाणी की भी गति नहीं है, "न तत्र वाग्गच्छति" ऐसे वाणी के अविषय आपके लिए जय हो। विषयविषयक राग (आसक्ति) का हरण करनेवाले हे श्रेष्ठ ! आपकी जय हो। राग के विपरीत द्वेष का हरण करने वाले अग्रज (अग्रे जयति इति अग्रजः) प्रथम संग्रामविजेता आपकी जय हो। हे अम्बिकापति सदाचार के प्रवर्तक, पालक, आपकी जय हो। सबसे अधिक आश्चर्यजनक अद्भुत, आपके लिए जय हो ।।४।।

अर्थ—ब्रह्मादि देवताओं से पूजित-वन्दित हे पूज्य ! आपकी जय हो। हे सूक्ष्म अणो, व्यापक परम अमृतस्वरूप आपकी जय हो। सम्पूर्ण विद्याओं के शासक, निरन्तर विद्या प्रदान करनेवाले आप प्रभु की जय हो ।।५।।

अर्थ—सभी अंगों से पूर्ण, नाग अलङ्कार से विभूषित आपकी जय हो। ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा प्राप्य, भोग तथा अपवर्ग प्रदान करनेवाले आपकी निरन्तर जय हो ।।६।।

अर्थ—काम का हरण करनेवाले हे प्राज्ञ ! आपकी जय हो। करुणा (दया) के विग्रह (स्वरूप)

आपकी जय हो। हे भस्मस्वरूप, महादेव आपकी जय हो। हे भस्मावगुण्ठित भस्मानुलिप्त आपकी जय हो ॥७॥

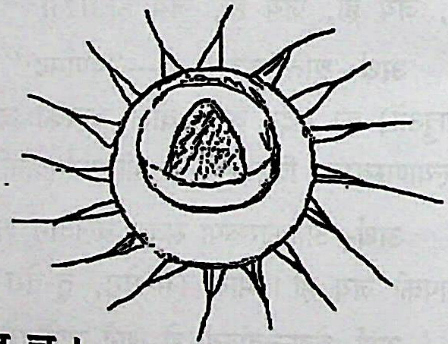
अर्थ—जो सर्वदा भस्म में रत रहते हैं, मायाबद्ध पशुसदृश जीवों के पाश (अज्ञानावरण) के नाश-परायण आपकी जय हो। हृदय कमल में सदा ही यत्नशील मुनियों के द्वारा पूजित, पूज्यविग्रह की सदा ही जय हो ॥८॥ (सू.सं. २/११/७०-७८)



हृत्पुण्डरीकमध्ये तु सोमसूर्याग्निमण्डले।
विद्युल्लेखकल्याणं ज्वलन्तं वह्निरूपिणम् ॥
शिवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षाणां षट् समाहितः। (सू.सं. ४/८)

तात्पर्यदीपिका—हृदम्बुजमध्ये पीठं परिकल्प्य तन्मध्ये सूर्यसोमाग्निमण्डलानि यथाक्रमं द्वादशषोडशदशकलात्मकान्युत्तरोत्तरमान्तरत्वेन संचिन्तनीयानि। (टीका)

मध्येऽनन्तं पद्ममस्मिंश्च सूर्यं सोमं वह्नि-
तारवर्णैर्विभक्तैः। (प्रपञ्चसारस्य)



अथवा साम्बमीशानं श्रीसदाशिवमेव च।
नृत्यमानं तथा देवं ध्यात्वा मन्त्रन्तु साधयेत् ॥
अथवा प्राकृतं भावं स्वीयमुत्सृज्य सर्वदा।
शिवोऽहमिति संचिन्त्य साधेयदिदमुत्तमम् ॥ (सू.सं. ४/८)
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये मन्त्रेणानेन पूजयेत्।
अथवा मण्डले सौरे चन्द्रमण्डलकेऽथवा।
अग्नौ वा प्रतिमायां वा शिवं नित्यं प्रपूजयेत् ॥

आसनं प्रथमं दद्यादावाहनमनन्तरम् ।
अर्घ्यं ततः परं दद्यात्पाद्यं चैवः ततः परम् ।।
पुनराचमनं दद्यात्स्नापयेत्तु ततः परम् ।
वासो दद्यात्पुनर्यज्ञोपवीतं भूषणानि च ।।
गन्धं पुष्पन्तथा धूपन्दीपमोदनमेव च ।
माल्यमालेपनं दद्यान्नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।
षडक्षरेण मन्त्रेण सर्वं कुर्याद्विचक्षणः ।। (सू.सं. ४/८)

षडक्षर मन्त्र का ध्यानसहित जपविधि ।

श्लोकार्थ—हृदयकमल के मध्य में पीठ (आसनस्वरूप) की परिकल्पना कर के इस पर सूर्य, सोम तथा अग्निमण्डल का चिन्तन करे। यहाँ श्लोक का क्रम विवक्षित नहीं है। पहले सूर्यमण्डल, उसके भीतर चंन्द्रमण्डल तथा उसके (चन्द्रमण्डल के) अन्दर वह्निमण्डल का चिन्तन करे।

सूर्य को द्वादशकलात्मक, सोम षोडशकलात्मक तथा अग्नि को दशकलात्मक चिन्तन करे। बिल्कुल भीतरी भाग में विद्युत् लेखा (रेखा) की भाँति जलती हुई वह्नि के रूप में कल्याणस्वरूप भगवान् शिव का ध्यान करता हुआ, छह लाख षडक्षर मन्त्र का जप करे।

एक लक्ष मन्त्र से तर्पण तथा एक हजार से आहुति प्रदान करनी चाहिये। हवन घृत, दुग्ध अथवा पलाश के पुष्पों से करनी चाहिये। एवं यह मन्त्र सिद्ध होकर मुक्ति-मुक्ति प्रदाता हो जाता है। अथवा परिच्छिन्न भाव का परित्याग कर के 'शिवोऽहम्' मैं साक्षात् शिव हूँ ऐसा चिन्तन करता हुआ मन्त्र को जपे, इस तरह भी यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

अर्थ—मध्य में अनन्त पद्म (उपलक्षण से सहस्रदल वाला) इसमें सूर्य, सोम तथा वह्नि को अलग-अलग तार (प्रणव द्वारा) वर्णों से वेष्टित देखे। (टीकायां प्रपञ्चसारस्य)

अर्थ—अथवा नाचते हुए साम्बसदाशिव का ध्यान करता हुआ मन्त्र की साधना करे, इस प्रकार भी यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

अपने प्राकृत भाव (यह देह मैं हूँ, कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी हूँ) का उत्सर्जन कर सर्वदा कल्याणरूप 'शिवोऽहम्' ऐसा निश्चय कर मन्त्र का साधन करे।

अर्थ—हृदयकमल के मध्य मे स्थित भगवान् शिव का इस मन्त्र से पूजन करे, अथवा सूर्य

में, सोम में, या फिर अग्निमण्डल में उनका अर्चन करे। साधक शिवलिङ्ग में नित्य अच्छी प्रकार से उनकी आराधना करे।

साधक को अठारह उपचारों से उनकी आराधना करनी चाहिये; उसका क्रम है—सर्वप्रथम आसन दे, उसके बाद आवाहन करे, पुनः क्रमेण अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, माला, आलेपन, नमस्कार और अन्त में विसर्जन करे।



।। श्रीविष्णुकृतमातृकारूपशिवस्तोत्रम् ।।

(श्रीविष्णु ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीशिवो देवता, मातृकाशक्तिः)

(मातृका पञ्चाशदक्षररूपमन्त्रतादात्म्येन शिवोऽनुसंध्येयः)

अकाराय नमः साक्षादनन्तानन्दमूर्तये।
आत्मभूताय सर्वेषामतिशुद्धाय शूलिने ।।१।।
आकारायातिशुद्धाय साक्षिणे सर्ववस्तुनः।
अम्बिकापतये तुभ्यमसङ्गाय नमो नमः ।।२।।
इकारायेश्वराख्याय सर्वसिद्धिकराय च।
इन्द्रादिलोकपालानामियत्ताकारिणे नमः ।।३।।
ईकाराय वरिष्ठाय वाञ्छितार्थप्रदाय च।
वञ्चकानामलभ्याय वसुदाय नमो नमः ।।४।।
उकारायोग्रजन्तूनामुग्ररूपाय शूलिने।
उत्तमानां तु जन्तूनामुपास्याय नमो नमः ।।५।।
ऊकारायोपवीताय ह्यूर्जितायोत्तमात्मने।
उत्तमज्ञानगम्याय नमस्ते परमात्मने ।।६।।
ऋकारायाऽऽदिभूताय रामपूर्वार्चिताय च।
ऋचामथ स्वरूपाय नमः सत्यपरमात्मने ।।७।।

ॠकाराय निसर्गाय नित्यतृप्ताय शम्भवे ।
रसादिभूतरूपाय नमः शुद्धचिदात्मने ।।८।।
ऌकाराय लसद्गण्डमण्डिताभरणाय च ।
लिङ्गलिङ्ग्यादिहीनाय लिङ्गरूपाय ते नमः ।।९।।
ॡकाराय लयस्थाय ध्वंसकायाऽऽदिहेतवे ।
लाक्षारुणशरीराय लाभस्थानाय वै नमः ।।१०।।
एकाराय नमः शश्वदिदंतासाक्षिणे तथा ।
अहंतासाक्षिणे साक्षात्प्रत्यगद्वयवस्तुने ।।११।।
ऐकारायामलज्ञानप्रभावपरिशीलिनाम् ।
आत्मरूपतया नित्यं प्रतीताय नमो नमः ।।१२।।
ओकाराय विरिञ्चाय विष्णवे रुद्रमूर्तये ।
वाच्यवाचकहीनाय स्वयंभानाय वै नमः ।।१३।।
औकाराय महेशाय महामन्त्रार्थरूपिणे ।
महादेवाय मात्रादिप्रपञ्चाय नमो नमः ।।१४।।
बिन्दुरूपाय बीजाय बीजाधिष्ठानरूपिणे ।
बीजनाशकरज्ञानस्वरूपाय नमो नमः ।।१५।।
विसर्जनीयरूपाय विस्मयाय महात्मने ।
विसर्जनीयनिष्ठानां विशेषार्थाय वै नमः ।।१६।।
ककाराय कपूर्वादिदेवतापूजिताय च ।
करणग्रामसंहर्त्रे कालावीताय वै नमः ।।१७।।
खकाराय खपूर्वादिभूतपञ्चकहेतवे ।
खमूर्ताय खलप्रज्ञागोचराय नमो नमः ।।१८।।
गकाराय गणेशाय गणवृन्दार्चिताय च ।
गङ्गाधराय गुह्याय गुणातीताय ते नमः ।।१९।।
घकाराय घनाकारघातकाय घनात्मने ।

घटादिजगदाकाररहिताय नमो नमः ॥२०॥
ङकाराय ङमन्त्रार्थस्वरूपाय शिवात्मने।
ङाङीङूसंजितार्थनामगम्याय नमो नमः ॥२१॥
चकाराय च मन्त्रार्थस्वरूपायामितात्मने।
चमन्त्रार्थनिषण्णानाममृताय नमो नमः ॥२२॥
छकाराय च्छलालस्यच्छादनादिविशेषतः।
छादनच्छन्दनच्छन्नविभागाय नमो नमः ॥२३॥
जकाराय जगच्छक्तिस्वरूपाय जयार्थिनाम्।
जयप्रदाय देवाय जम्भमोहाय ते नमः ॥२४॥
झकाराय झमन्त्रार्थस्वरूपायामृतात्मने।
झमध्यचन्द्रबिम्बाय नमः साम्बाय शम्भवे ॥२५॥
ञकाराय ञमन्त्रर्थस्वरूपाय ज्ञमूर्तये।
ज्ञप्तिमात्रैकनिष्ठानां मुक्तिदाय नमो नमः ॥२६॥
टकाराय टटाटीटूपूर्वकैस्तु महारवैः।
अर्चिताय सुरश्रेष्ठैरसुरैश्च नमो नमः ॥२७॥
ठकाराय ठमन्त्रार्थस्वरूपाय ठमन्त्रतः।
ठठादिगणपूज्याय ठमध्याय नमो नमः ॥२८॥
डकाराय डडाडीडूडेडोडैश्च महारवैः।
डामरैरभिपूज्याय नमो नृत्यप्रियाय च ॥२९॥
ढकाराय ढमन्त्रार्थपरिज्ञानवतां नृणाम्।
ढसंज्ञितमहानन्दप्रदाय सततं नमः ॥३०॥
णकाराय णणाणीणूणेणोणौरवैः सदा।
णाकिनीगणपूज्याय णसंज्ञाय नमो नमः ॥३१॥
तकाराय तमन्त्रार्थस्वरूपाय तताय च।
तत्त्वमित्यभिपूज्याय तत्त्वभूताय वै नमः ॥३२॥

थकाराय थमन्त्रार्थस्वरूपाय थसंज्ञितैः ।
महागणैश्च पूज्याय थमध्याय नमो नमः ।।३३।।
दकाराय दयारूपमहाशक्तिमयाय च ।
देशजातिविहीनाय दिवारात्राय वै नमः ।।३४।।
धकाराय धरण्यादिमहाभूतस्वरूपिणी ।
धराधरहृदिस्थाय धमध्याय नमो नमः ।।३५।।
नकाराय नगेन्द्राय नामजात्यादिहेतवे ।
नमः शिवाय नम्याय नानारूपाय शूलिने ।।३६।।
पकाराय परानन्दस्वरूपाय परात्मने ।
परापरविहीनाय पावनाय नमो नमः ।।३७।।
फकाराय फलाख्याय फलाख्यगणयोनये ।
फलाख्यगणपूज्याय नमः पूर्णस्वरूपिणे ।।३८।।
बकाराय बकाराख्यमहाबीजैकजापिनाम् ।
बन्धनागारनाशैकहेतवे वेधसे नमः ।।३९।।
भकाराय भवाब्धेस्तु तारकाय भवायते ।
भवशब्दैकवेद्याय भवानीपतये नमः ।।४०।।
मकाराय महामायापाशनाशैकहेतवे ।
ममकारविहीनानां महानन्दाय वै नमः ।।४१।।
यकाराय यथार्याय यथार्थज्ञानिनां नृणाम् ।
यथार्थप्रत्यगद्वैतब्रह्मणे सततं नमः ।।४२।।
रकाराय रतिप्रीतिप्रियाय रतिहेतवे ।
रशब्दवपुषे रोगभवनाशाय वै नमः ।।४३।।
लकाराय लतासोमस्वरूपाय लतात्मने ।
लाभालाभविहीनाय लब्धरूपाय वै नमः ।।४४।।
वकाराय वरिष्ठाय वासुदेवादिहेतवे ।

वाञ्छावागुरविच्छित्तिहेतुभूताय वै नमः ।।४५।।
शकाराय शरण्याय शम्भवे शरणार्थिनाम् ।
शरणाय शरच्चन्द्रधवलाय नमो नमः ।।४६।।
षकाराय षडाधारषट्चक्रादिस्वरूपिणे ।
षडक्षरनिषण्णाय नमः षण्मुखहेतवे ।।४७।।
सकाराय सशब्दार्थस्वरूपाय सदात्मने ।
साक्षिणेऽसाक्षिरूपाणां नमः साधूपकारिणे ।।४८।।
हकारायाहमर्थाय सदाऽहङ्कारसाक्षिणे ।
हाहाहूहूकगीताय हंसरूपाय वै नमः ।।४९।।
लकाराय लकाराख्यमहामन्त्र प्रियाय च ।
लोलाचञ्चलसंसारनाशनाय नमो नमः ।।५०।।
क्षकाराय क्षमन्त्रार्थस्वरूपाय क्षमावताम् ।
क्षेमदाय मम क्षेमस्वरूपाय नमो नमः ।।५१।।
मातृकावपुषे मातृमानमेयादिसाक्षिणे ।
मातृकामन्त्रलभ्याय महसे च नमो नमः ।।५२।।
मातृकाधारभूताय मातृकामूलरूपिणे ।
महामन्त्रैकवाच्याय महसे ब्रह्मणे नमः ।।५३।।
अष्टधा चाष्टवर्गैस्तु विभक्तायामलात्मने ।
अशेषशब्दभूताय तत्तदर्थाय वै नमः ।।५४।।

अर्थ—सम्पूर्ण प्राणियों (जीवों) के आत्मस्वरूप अतीव निर्मल, शूल आदि आयुध धारण करने वाले, आनन्द मूर्ति (स्वरूप) (विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इति श्रुतेः) ऐसे साक्षात् अकार (वर्णरूप), परमात्मा शिव के लिए, नमस्कार है ॥१॥

सम्पूर्ण वस्तुओं के साक्षी, मायाविद्या उपाधि रूप सम्बन्ध के परित्याग से अतिशुद्ध अम्बिका के पति होते हुए भी असंग (असंगो ह्ययं पुरुषः) आकाररूप आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२॥

'ईश्वर' इस नाम वाले सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाले। इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों को सीमित सामर्थ्य प्रदान करने वाले इकार रूप शिव को नमन है ॥३॥

अत्यन्त वरिष्ठ (सबसे ज्येष्ठ, श्रेष्ठ) इच्छित वस्तुओं को देनेवाले, वञ्चना करनेवालों के लिए अलभ्य तथा अपने अर्थार्थी भक्तों को वसु (धन) प्रदान करने वाले, ईकार रूप देव को पुनः-पुनः नमस्कार है ॥४॥

उग्र जन्तुओं को दण्ड देने के लिए, हाथ में शूल धारण करने के कारण उग्रस्वरूप वाले उत्तम जन्तुओं (प्राणियों) के द्वारा पूजित होने वाले 'उकार' रूप आपको मुहुर्मुहुः नमस्कार है ॥५॥

उपवीताय–भोगमोक्षार्थिभिः सकललौकेरूपगताय। भोग तथा मोक्ष की याचना करने वाले सभी व्यक्ति आपके पांस ही उपगत होते हैं (आते हैं) अत्यन्त सामर्थ्यवान् आत्मस्वरूप श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा ज्ञानस्वरूप में जो गम्य हैं, ऐसे 'ॐकार' रूप आपको नमस्कार है ॥६॥

सबके कारणस्वरूप, पूर्वकाल में राम के द्वारा अर्चित, सम्पूर्ण ऋग्वेद के ऋचाओं के अर्थरूप, सत्यात्मक आत्मरूप से स्थित, ऋकाररूप शिव के लिए नमस्कार है ॥७॥

निसर्गाय समस्तवस्तूनां स्वाभाविकरूपाय–समस्त वस्तुओं के स्वाभाविक रूपवाले, नित्यतृप्त, शुद्ध चिदात्मा होते हुए भी जलादि महाभूतों का ऱूप धारण करने वाले ऋकार रूप शम्भु को नमस्कार है ॥८॥

हे शिव ! कुण्डलादि आभरणों से शोभायमान कपोल वाले, ज्ञानस्वरूप, प्रमाण, प्रमेय के विभाग से रहित, ऌकारस्वरूप वाले आपको नमस्कार है ॥९॥

प्रलयकाल में भी स्थित रहनेवाले, सबके आदिकारण, ध्वंसकर्ता, लाक्षा की तरह अरुण गात्रवाले, सम्पूर्ण जीवों के कर्मफल के दाता, ॡकार वर्णरूप वाले के लिए नमस्कार है ॥१०॥

शश्वद् अर्थात् सनातन (सदा रहने वाले) 'इदंता' (यह) एवं 'अहंता' (मैं) रूप से भासने वाले के साक्षीस्वरूप, साक्षात् प्रत्यग (अपरोक्ष), अद्वितीय एवं यथार्थ वस्तुरूप में प्रतीत होनेवाले आप 'एकार' रूप परमात्मा को नमस्कार है ॥११॥

अमल (निर्मल) ज्ञान के प्रभाव का परिशीलन करने वाले आत्मस्वरूप नित्य, प्रत्यक्, रूप से प्रतीत होने वाले आप 'ऐकार' रूप ईश्वर को नमस्कार है ॥१२॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रमूर्तिवाले, वाच्य एवं वाचक से रहित (शब्दशक्ति-से असम्बद्ध) स्वय स्वप्रकाश से होने वाले, ओकाररूप महादेव को नमस्कार है ॥१३॥

हे भगवान् ! आप ओंकार रूप महामन्त्र के अर्थरूप हैं। महान् ईश्वर हैं, अर्थात् सब पर

आपका शासन चलता है। महान् दिव्यगुणों से युक्त, पञ्चमहाभूत, तन्मात्रावाले हैं, आपको बारं-बार नमस्कार है ॥१४॥

आप बिन्दु (अनुस्वार) रूप परमात्मा के लिए नमस्कार है। जगत् के बीज (मूल कारण अविद्या के अधिष्ठानरूप) माया का नाश करने वाले ज्ञानस्वरूप आपको नमस्कार है ॥१५॥

परमाश्चर्यमय, महानात्मा, विसर्जनीयनीष्ठ (संसार का त्याग करनेवाले महात्माओं के द्वारा) विशेषतया प्रार्थनीय (ज्ञानमिच्छेच्छकराद्) आप विसर्ग रूप परमात्मा के लिए नमस्कार है ॥१६॥

ककार रूप-से स्थित आपके लिए नमस्कार है। जिनके नाम का आदि अक्षर 'क' है अर्थात् ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए पूजनीय (इनके द्वारा पूजित) लिङ्ग शरीर के नाशक आप काल की सीमा से भी परे हैं ॥१७॥

आकाश आदि पञ्चमहाभूतों के कारण, आकाशमूर्तिवाले, दुष्टों की प्रज्ञा के द्वारा न समझे जाने वाले, आप खकार वर्ण रूप परमात्मा को नमस्कार है ॥१८॥

सम्पूर्ण गणों के ईश्वर, स्वगणों सेवित (अर्चित), अपनी जटाओं में ज्ञान गंगा को या गंगादेवी को धारण करनेवाले, सबके हृदय गुफा में छुपे हुए सत्त्वादिगुणों से परे गकार रूपी ईश्वर के लिए नमस्कार है ॥१९॥

घन अर्थात् (ठोस) जो पोला नहीं हो, ऐसे मूर्त प्रपञ्च का रूप धारण करने वाले, बादल के आकार की तरह आच्छादक, अज्ञान के धातक, घतादि समस्त जगत् के आकार से रहित 'घकार' रूप प्रभु के हैं ॥२०॥

कल्याणस्वरूप, ङमन्त्रार्थरूप अर्थात् ङवर्ण मन्त्र के अर्थ रूप में प्रसिद्ध शिव, रूप वाले, ङा, ङी, ङू संज्ञा वाले पार्वती के भी द्वारा जो गम्य नहीं, ऐसे ङकार रूप परमात्मा के लिए नमन है ॥२१॥

ङमन्त्रार्थः—एकरुद्र आर्द्राद्युपलक्षितः।

ङमन्त्र का अर्थ—एक रुद्र आर्द्रादि से उपलक्षित (द्योतित) होते हैं।

'च' मन्त्र के अर्थरूप, अमितात्मा (अनन्त) रूपवाले, 'च' मन्त्र के अर्थ में निष्ठा रखने वालों को अपने अमृतस्वरूप का बोध करनेवाले आप 'चकार' स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥२२॥

चमन्त्रार्थः—आत्मशक्तिः कुर्मेशः।
'च'कार अर्थ—आत्म शक्ति वाले कुर्मेश।

आप 'छ' रूप वर्ण वाले परमात्मा को नमस्कार है। सम्पूर्ण जीवों के हृदयगुहा में निहित जीवों के मोक्ष की इच्छा को जगाने वाले, छल, आलस्य, माया आदि छादकों आवरणों को छिन्न-भिन्न

करनेवाले, 'छकार' रूप धारण कर स्थित आपका बारम्बार नमस्कार है ॥२३॥

जगत् की उत्पत्तिस्थितिसंहारविषयक जो शक्ति, वह आपका ही स्वरूप है। जय की अभिलाषा रखने वालों को आप ही जय प्रदान करते हैं। आप स्तुत्य है, क्योंकि सारे दिव्य गुण, परिपूर्ण रूप-से आप में ही रहते हैं। 'जम्भयतीति जम्भो मोहः' मूल अज्ञान के भी अधिष्ठान स्वरूप आप ही हैं, ऐसे जकार रूप आपको नमस्कार है ॥२४॥

अमृतस्वरूप परमात्मा आप ही 'झ' मन्त्र के अर्थ हैं। झकार लक्षित अमृत मध्य में है, जिसके ऐसे झमध्यचन्द्र वह बिम्ब (मूर्ति) जिसका स्वरूप है, ऐसा अमृत से परिपूर्ण चन्द्रमा का मण्डल आपका ही स्वरूप है, साम्ब मूर्ति परमात्मा जो झकार रूप से विराजमान हैं, उनके लिए नमस्कार है ॥२५॥

झमन्त्रार्थः—श्रीकण्ठादौ द्रापिणीशक्तियुक्तः।

झमन्त्र का अर्थ—श्रीकण्ठादि में द्राविणीशक्ति युक्त।

ज्ञानमूर्ति 'ञ' मन्त्र के अर्थरूप, ज्ञानमात्र स्वरूप में स्थित परमहंसों को मुक्ति प्रदान करने वाले 'ञ'कार स्वरूप, परमात्मा को नमस्कार है ॥२६॥

ञमन्त्रार्थः—नागरीशक्तिसहितः शर्वः।

ञमन्त्र का अर्थ—नागरीशक्ति के साथ शर्व।

सुरश्रेष्ठ इन्द्रादि देवताओं एवं अन्धकादि असुरों के द्वारा ट, टा, टी, टू आदि ध्वनियों से महान् कोलाहलपूर्वक अर्चित 'टकार' रूपं आप महेश्वर को नमस्कार है ॥२७॥

ठकार रूप-से स्थित आप शिव को नमस्कार है। हे प्रभु! आप 'ठ' मन्त्र के अर्थस्वरूप हैं। ठ, ठा आदि शब्द करनेवाले पार्षदगण ठ–मन्त्र से आपकी अर्चना करते हैं। चन्द्र के अधिष्ठाता आप को नमस्कार है ॥२८॥

ठमन्त्रार्थः—मञ्जरीशक्तिसहितलांगली।

ठमन्त्र का अर्थ—मञ्जरीशक्ति सहित लांगली।

डकार रूप 'वर्ण' वाले आपको नमस्कार है। भयङ्कर कोलाहल करने वाले ड, डा, डी, डू, डे, डो, डै इन शब्दों का उच्चारण कर बहुत अधिक कोलाहल करते हुए आपकी पूजा करते हैं, वस्तुतः आपको नृत्य प्रिय भी है ॥२९॥

ढ़मन्त्र का परिज्ञान रखने वाले लोगों को ढ–संज्ञक महान् आनन्द देनेवाले, ढकार रूप आप परमात्मा को निरन्तर प्रणाम है ॥३०॥

ढमन्त्रार्थः—वीरिणीशक्तिसहित अर्धनारीश्वरः।

ढमन्त्र का अर्थ–वीरिणीशक्ति के साथ अर्धनारीश्वर शिव।

णाकिनी शब्द का अनुकार्य छण्ट ध्वनि की तरह शब्द करने वाले पार्षद गण ण, णा, णी, णू, णे, णै, णो, णौ आदि शब्द से आपकी पूजा करते हैं। 'ण' अभिधान धारण करने वाले 'ण' रूप परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है ॥३१॥

णमन्त्रार्थः–कोटरीशक्तिसहित उमाकान्तः।

णमन्त्र का अर्थ–कोटरीशक्ति सहित उमाकान्त।

सबसे अधिक विस्तृत यानी व्यापक 'तमन्त्र' के वाच्यरूप, वास्तविक रूप से सर्वदा स्थित 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से अभिपूजित, 'त'काररूप आप ईश्वर को नमस्कार है ॥३२॥

णमन्त्रार्थः–कोटरीशक्तिसहित आषाढीशः।

णमन्त्र का अर्थ–कोटरीशक्तिसहित आषाढीश।

'थकार' रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है। आप 'थ' मन्त्र के अर्थस्वरूप हैं। थथा संज्ञक महागणों द्वारा आप पूज्य हैं, ये आपकी पूजा किया करते हैं। 'थ' वर्ण आपके 'प्रमथेश्वर' नाम के मध्य में आता है ॥३३॥

'दकार' रूप वाले आपको नमन है। आप दयारूप महती शक्ति से परिपूर्ण है दयासागर आदि अभिधानों से कहे जाते हैं। न तो आपका कोई एक देश है और न जाति, आप दिवारात स्वरूप हैं, आप ही दिन हैं, आप ही निशा हैं ॥३४॥

धरती, जल, वायु आदि महाभूत आपके स्वरूप हैं। धरा को धारण करने वाले कैलास पर्वत के हृदयस्थान (मध्य भाग) में आप निवास करते हैं। ध मध्य नामवाले अर्थात् 'मेधाप्रद' नाम के मध्य धकार है। ऐसे 'ध' रूप वर्ण या नाम वाले आपको नमस्कार है ॥३५॥

'नकार' रूप वर्ण वाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण पर्वतराजों के भी आप राजा हैं। जितने भी नाम या जातियाँ हैं, सबके कारण आप ही हैं। कल्याणरूप वाले आपको नमस्कार है, वस्तुतः नमन के योग्य आप ही हैं। नानारूप से युक्त शूल धारण करने वाले आप 'न' कार रूप परमात्मा को नमन है ॥३६॥

'पकार' रूप परमात्मा आपको पुनः पुनः प्रणाम है। आप परम आनन्दस्वरूप परमात्मा हैं। पर-अपर आदि भेदों से आप रहित हैं। सबको पवित्र करने के कारण आप पावन हैं ॥३७॥

'फकार' रूप धारण करने वाले आपको प्रणाम है। कर्मों के फल नाम वाले अर्थात्

राजयोग जनित प्राप्तव्य फल नाम वाले आप ही हैं। नाना प्रकार के शास्त्रीय शुभ अनुष्ठानों के फलस्वरूप से सम्पन्न आपके गण फल नामक गण कहे जाते हैं। उन्हें भी फल प्रदान करनेवाले आप ही हैं। वे नित्य आपकी पूजा करते हैं। पूर्ण स्वरूप वाले आपको नमस्कार है ॥३८॥

'बकार' रूप वाले परमात्मा आपको बारम्बार वन्दन करता हूँ। बकारसंज्ञक महाबीज मन्त्र का जप करने वालों के बन्धन रूपी कारागार के नाश के कारण रूप आप ही हैं। सम्पूर्ण कर्मों के विधान करनेवाले भी आप ही हैं ॥३९॥

जन्म-मृत्यु रूप संसार सागर-से तारनेवाले भव (सद्रूप) भवानी के पालन करने वाले 'भव' शब्द के ज्ञान द्वारा जाने जानेवाले 'भकार' रूप आपको भूयो-भूयो नमस्कार है ॥४०॥

'मकार' रूप से संसार में प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। महामाया के पाश को नाश करने के कारण मकार रूप आप ही हैं। निश्चय ही अहंता-ममता से शून्य साधु पुरुषों के लिए आप परम आनन्द-स्वरूप हैं ॥४१॥

'यकार' रूप वाले यज्ञपति को नमस्कार है। यथार्थ ज्ञानियों के लिए आप ही तत्त्व हैं। यथार्थ को जानने वाले आपको सत्य एवं प्रत्यक् अद्वैत ब्रह्म ऐसा मानते हैं ॥४२॥

'र' शब्द ही जिनका वपु (शरीर) है, ऐसा 'रकार' रूप परमात्मा को नमस्कार है। रति में प्रीति रखनेवालों के प्रिय, रति के कारण, रोग रूप संसार के नाशक भी आप ही हैं ॥४३॥

'लकार' रूप वाले आपको नमस्कार है। सोमलता के स्वरूप में आप ही हैं। लताओं की आत्मा, उसके पोषक तत्त्व चन्द्र आप हैं। आपको न किसी प्रकार का लाभ है और न हानि। सब-कुछ सर्वदा आपको प्राप्त ही है ॥४४॥

'वकार' वर्ण रूप वाले आपको नमन है। आप सबसे वरिष्ठ (श्रेष्ठ) हैं। वासुदेव आदि स्वरूप के कारण आप हैं। वाञ्छा नामक पिजड़े के विच्छित्ति (नाश) के कारण निश्चय आप ही हैं ॥४५॥

हे भगवान् आप ही शरण लेने योग्य हैं। शरणार्थियों का कल्याण करने वाले भी आप हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक शरच्चन्द के समान श्वेत वर्ण वाले आप 'शकार' रूप परमात्मा को प्रणाम है ॥४६॥

हे षकार रूप देव! आपको प्रणाम करता हूँ। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा तथा सहस्रासार ये षट् आधार शरीर में है, इनमें स्थित देवतादि आपके ही स्वरूप हैं। षडक्षर के द्वारा आप प्राप्त करने योग्य हैं। षण्मुख वाले देवों के सेनापति कार्तिकेय जी के

जनक आपको नमन है ।।४७।।

'स' शब्द के अर्थ रूप, सदात्मा, विषयासक्त संसारी लोगों में आसक्ति रहित, साधुओं के उपकारी सकाररूप आपके लिए नमस्कार है ।।४८।।

'हकार' रूप वाले परमात्मा आपको नमस्कार है। सर्वदा अहंकार के साक्षी रूप से स्थित, अहं शब्द के शक्यार्थ, हाहा, हूहू संज्ञक गन्धर्वां के द्वारा गाये जानेवाले, आप अजपा (हंस) मन्त्र रूप हैं ।।४९।।

'लकार' नामक महामन्त्र के अतिप्रिय, अश्वत्थ वृक्ष के पत्ते के सदृश सर्वदा चञ्चल संसार के नाश करने वाले लकार रूप आपको बारं-बार प्रणाम है ।।५०।।

विशेष–लकार मन्त्र दो बार आया है। पहले लकार को अन्तःस्थ में माना गया है, दूसरा लकार वर्ण वर्णसमाम्नाथ के क्रम के अनुसार है।

'क्षकार' रूप आप परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है। आप 'क्ष' मन्त्र के अर्थस्वरूप हैं। क्षमादान करनेवालों के आप क्षेम का वहन करते हैं। मुझ विष्णु के क्षेम का भी वहन करने वाले या रक्षक आप हैं ।।५१।।

क्षमन्त्रार्थः—मायाशक्तिसहित संवर्तकेयः।

क्षमन्त्र का अर्थ—मायाशक्तिसहित संवर्तकेय।

मातृका वपु धारण करने वाले आपको प्रणाम है। अ-से क्ष तक सम्पूर्ण वर्णों को मातृका कहते हैं। सम्पूर्ण अक्षर उनके अवयवस्वरूप हैं। प्रमाण-प्रमेय एवं प्रमाता के भी आप साक्षी हैं। मातृका मन्त्र के द्वारा आप लभ्य हैं। आप सबसे महान् हैं ।।५२।।

मातृका वर्णों के भी आप आधार हैं। मातृका वर्णों का मूल रूप जो शब्दब्रह्म वह आप ही हैं। हे महान् ब्रह्म आपको नमस्कार है ।।५३।।

यद्यपि आप निराकार हैं, तथापि आठ वर्गों में आठ प्रकार-से विभक्त हैं। १. स्वरवर्ग, २.क वर्ग, ३. च वर्ग, ४. तवर्ग, ५. टवर्ग, ६. पवर्ग, ७. यवर्ग और ८. शवर्ग। सम्पूर्ण शब्द एवं उनके अर्थ आप ही हैं। ऐसे स्वरूप वाले आपको नमस्कार है ।।५४।।

सम्पूर्ण उपाधियों से रहित स्वयं प्रकाश-स्वरूप आपको नमस्कार है ।।ॐ।।



।। वाक्शक्तिस्तोत्रम् ।।

वागुद्भूता परा शक्तिर्या चिद्रूपा पराभिधा ।
वन्दे तामनिशं भक्त्या श्रीकण्ठार्धशरीरिणीम् ।।१।।

इच्छासंज्ञा च या शक्तिः परिपूर्णशिवोदरा ।
वन्दे तामादरेणैव ममेष्टफलदायिनीम् ।।२।।

शक्तिर्या परमा साक्षाद्बीजभूताखिलस्य च ।
वन्दे तामनिशं भक्त्या नकुलीशशिवान्विताम् ।।३।।

ऊर्ध्वरूपाऽप्यधोरूपा तथाऽधस्याऽपि मध्यगा ।
मध्यरूपाऽपि चान्तःस्था या तां वन्दे वरप्रदाम् ।।४।।

विन्यासैर्वर्णसंक्लृप्तैर्विश्वविद्यालयात्मना ।
विद्योतमाना या वाचि वन्दे तामादरेण तु ।।५।।

एकधा च द्विधा चैव, तथा षोडशधा स्थिता ।
द्वात्रिंशद्भेदभिन्ना च या तां वन्दे परात्मदाम् ।।६।।

अकारादिक्षकारान्तैर्वर्णैरत्यन्तनिर्मलैः ।
अशेषशब्दैर्या भाति तामानन्दप्रदां नुमः ।।७।।

लक्ष्मीवागादिरूपेण नर्तकीव विभाति या ।
तामाद्यन्तविनिर्मुक्तामहं वन्दे वराननाम् ।।८।।

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च यस्या एव समुद्गताः ।
यस्यामेव विलीयन्ते तस्यै नित्यं नमो नमः ।।९।।

महदादिविशेषान्तं जगद्यस्याः समुद्गतम् ।
यस्यामेव लयं याति वन्दे तामम्बिकामहम् ।।१०।।

गुरुमूर्तिधरां गुह्यां गुह्यविज्ञानदायिनीम् ।
गुह्यभक्तजनप्रीतां गुहायां निहितां नुमः ।।११।।

य इदं पठते स्तोत्रं सन्ध्ययोरुभयोरपि ।
सर्वविद्यालयो भूत्वा स याति परमां गतिम् ।।१२।।

संविद्रूपिणी यो परा मा शक्ति वही शब्दरूप से विवर्त होती हुई, सर्वप्रथम पराख्या नाम से आविर्भूत होकर बिन्दु के रूप में अत्यन्त सूक्ष्म भाव-से स्फुटित (स्फोट रूप से) उद्भूत हो सर्वत्र वही शक्ति शब्दों में अनुस्यूत होती हुई प्राणियों के अर्थविवक्षा के हेतुक प्रयत्नजनित वायु के सम्बन्ध के कारण मूलाधार में अभिव्यक्त जो निस्पन्द वह परा कहलाती है। ऐसी परा वाक् रूप से विवर्तित होती हुई चिद्रूपिणी शक्ति, जो श्रीकण्ठ की अर्धाङ्गिनी है, उस भगवती अम्बा की मैं श्रद्धा एवं भक्ति के साथ निरन्तर वन्दना करता हूँ।।१।।

पूर्ववर्णित जो परा शक्ति है, वही इच्छाशक्ति के रूप में भी अवस्थित है। परिपूर्ण अनन्त कल्याण, सत्य, ज्ञानादि स्वस्वरूप महेश्वर के साथ जो एक उदर रूप से विराजमाना है, (अर्धनारीश्वर होने के कारण) मुझे अभीष्ट फल प्रदान करने वाली उस माहेश्वरी देवी की मैं आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ।।२।।

वही परमा शक्ति जो साक्षात् अखिल जगत् की कारणभूता है, नकुलीश रूपधारी शिव के साथ उस शक्ति की मैं भक्ति के साथ निरन्तर वन्दना करता हूँ।।३।।

ऊर्ध्व अर्थात् कार्य से पहले (प्रपञ्च से पहले) कार्यप्रपञ्च के उत्पत्ति काल में कार्यप्रपञ्च के बाद तथा कार्य में उपादान कारण रूप से वर्तमान, वर प्रदान करने वाली उस परमा देवी की मैं वन्दना करता हूँ।।४।।

अकारादि हकारान्त वर्ण के रूप में परिकल्पित वर्णविन्यासों से निर्मित गद्य-पद्य आकारों में विश्व की समस्त विद्याओं के आश्रयस्वरूपा वाक् रूप से जो विद्योतमाना (प्रकाशित) होने वाली है, उस परमा शक्ति की मैं आदरसहित वन्दना करता हूँ।।५।।

ताल्वोष्ठ के संश्लेषण से अभिव्यक्त वैखरीवाक् सर्वप्रथम आत्मस्वरूप-से स्थित रहती है, पुनः स्वर एवं व्यञ्जन के भेद से दो भागों में विभक्त होती है, पुनः अकार से लेकर विसर्ग पर्यन्त इन सोलह रूपों में विभक्त हो जाता है। तत्पश्चात् व्यञ्जन पुनः 'क' से 'स' तक बत्तीस भागों में विभक्त होता है, उस परमात्मस्वरूप बोधिका शक्ति की मैं वन्दना करता हूँ।।६।।

अकार-से लेकर क्षकारपर्यन्त अतिनिर्मल वर्णों के रूप में तथा तद्वर्णघटित सम्पूर्ण शब्दों के रूप में जो प्रकाशित होती है, उस परमानन्द प्रदान करने वाली देवी की मैं वन्दना करता हूँ।।७।।

जैसे–कोई नर्तकी एक होती हुई भी साज-सज्जाओं से विभूषित हो भिन्न-भिन्न स्वरूपों में प्रतीत होती है, या दिखाती है, तद्वत् एक ही परा शक्ति लक्ष्मी, सरस्वती आदि नाना रूपों में

प्रतीत होती है, उस आदि-अन्त से रहित (वरानना) स्मितमुखी देवी की मैं वन्दना करता हूँ ।।८।।

ब्रह्मा-से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक विश्व जिससे निकलता है और जिसमें विलीन हो जाता है, उस कारणात्मिका देवी को मैं नित्य बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।।९।।

जिस परमा देवी-से महत् तत्त्वादि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और जिसमें विलीन हो जाता है, उस अम्बिका देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१०।।

गुरु के स्वरूप को धारण करने वाली, गोपनीया, रहस्यभूत विज्ञान का उपदेश करने वाली, जो भक्त रहस्य में (एकान्त में) छुपकर देवी की उपासना करते हैं, उनपर प्रसन्न होने वाली, हृदयरूपी गुहा में निहित (स्थित) महादेवी को मैं नमस्कार करता हूँ ।।११।।

जो साधक दोनों सन्ध्याओं में (प्रातः सायं) इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विद्याओं का आलय बन जाता है तथा परमागति को प्राप्त कर लेता है ।।१२।।



अन्नपूर्णामन्त्रः

अन्नपूर्णामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, अन्नपूर्णेश्वरी देवता, तत्प्रीतये जपे विनियोगः ।

ध्यानम्– **आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वीं, दुग्धान्नपूर्णमितरेण च रत्नपात्रम् ।**
अन्नप्रदाननिरतां नवहेमवर्णाम्बां भजे कनकभूषणमाल्यशोभाम् ।।

मन्त्रः– **श्रीं ह्रीं क्लीं ॐ नमो भगवति अन्नपूर्णे ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा ।।**

अर्थ–अन्नपूर्णामन्त्र–अन्नपूर्णामन्त्र के ब्रह्माजी ऋषि, गायत्री छन्द, अन्नपूर्णेश्वरी देवता, भगवती की प्रीति के जप में विनियोग है।

ध्यानार्थ–भगवती अन्नपूर्णा अपने दक्षिण हस्त में स्वर्ण दर्वी तथा वाम हस्त में दुग्धान्न परिपूर्ण रत्नपात्र धारण कर पूर्ण रूप से समस्त प्राणियों को, जो वस्तुत माँ की सन्तान है, अन्न प्रदान में लगी हुई हैं माता का स्वरूप नूतन हेम के समान स्वर्णिम रूप लिए हैं, जिस पर कनक के आभूषण सहित दिव्य पुष्पों की माला सुशोभित हो रही है। जो सम्पूर्ण जीवों को अपनी कृपा दृष्टि से जीवन प्रदान करतीं है, उस अम्बा अन्नपूर्णा की मैं भजन करता हूँ अर्थात् ध्यान करता हूँ।



बलातिबलामन्त्रः—

बलातिबलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः, गायत्री छन्दः, गायत्री देवता, अकारोकारमकारा बीजाद्याः क्षुधादिनिरसने विनियोगः । क्लीमित्यादिषडङ्गन्यासः ।

ध्यानम्—अमृतकरतलार्द्रौ सर्वसंजीवनाढ्यावघहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे । प्रणवमयविकारौ भास्कराकारदेहौ सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ ।।

फट् स्वाहा ।।

ॐ ह्रीं बले महादेवि ह्रीं महाबले क्लीं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिप्रदे तत्सवितुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वदयामूर्ते बले सर्वक्षुद्भ्रमोपनाशिनि धीमहि धियो यो नो जाते प्रचुर्यः या प्रचोदयादात्मिके प्रणवशि स्कात्मिके हुँ फट् स्वाहा ।

अर्थ—बलातिबलामन्त्र—बलातिबला मन्त्र के विराट् पुरुष ऋषि हैं, गायत्री छन्द, गायत्री देवता, अकार बीज, उकार शक्ति तथा मकार कीलक है। क्षुधा आदि की निवृत्ति के लिए इसका विनियोग है।

क्लीं बीज मंत्र के द्वारा षडङ्गन्यास कर—

ॐ क्लीं हृदयाय नमः।
ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा।
ॐ क्लीं शिखायै वषट्।
ॐ क्लीं कवचाय हुम्।
ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वषट्।
ॐ क्लीं अस्त्राय फट्।

ध्यान—अमृतेन करतलौ यस्या आर्द्रौ—अमृत-से जिसके हाथ आर्द्र अर्थात् गीले हैं, सम्पूर्ण संजीवनी शक्तियों से जो आढ्य परिपूर्ण, अघसमुदाय अर्थात् पापों को दूर करने में जो अत्यन्त दक्ष यानि पूर्ण समर्थ हैं, वेदों के साररूप किरणों से युक्त, प्रणवमय विकार से सम्पन्न, भगवान् भास्कर के तुल्य प्रकाशयुक्त देह वाले, उन बला एवं अतिबला विद्या के अधिठातारूप देवताओं का मैं सदा अनुभव करता हूँ।

मन्त्रार्थ—गायत्री मन्त्र के सदृश।



श्रीपञ्चायतनार्तिकम्

करुणापारावारं कलिमलपरिहारं
कद्रूसुतशयितारं करधृतकह्लारम् ।
घनपटलाभशरीरं कमलोद्भवयितरं
कलये विष्णुमुदारं कमलाभर्तारम् ।
जयदेव जयदेव जय केशव हर गजमुख-
सवितर्नगतनयेऽहं चरणौ तव कलये ।।१।।
भूधरजारतिलीलं मङ्गलकरशीलं
भुजगेशस्मृतिलोलं भुजगावलिमालम् ।
भूषाऽकृतिमतिविमलसंधृतगाङ्गजलं
भूयो नौमि कृपालं भूतेश्वरमतुलम् ।
जयदेव जयदेव जय केशव हर गजमुख-
सवितर्नगतनयेऽहं चरणौ तव कलये ।।२।।
विघ्नारण्यहुताशं विहिताऽनयनाशं
विपदवनीधरकुलिशं विधृताङ्कुशपाशम् ।
विजयार्कज्वलिताशं विदलितभवपाशं
विनताः स्मो वयमनिशं विद्याविभवेशम् ।
जयदेव जयदेव जय केशव हर गजमुख-
सवितर्नगतनयेऽहं चरणौ तव कलये ।।३।।
कश्यपसूनुमुदारं कालिन्दीपितरं
कोलत्रितयविहारं कामुकमन्दारम् ।
कारुण्याब्धिमपारं कालानलमदरं
कारणतत्त्वविचारं कामय ऊष्मकरम् ।
जयदेव जयदेव जय केशव हर गजमुख-

सवितर्नगतनयेऽहं चरणौ तव कलये ।।४।।

निगमैर्नुतपदकमले निहतासुरजाले
हस्ते धृतकरवाले निर्जरजनपाले ।
नितरां कृष्णकृपाले निरवधिगुणलीले
निर्जरनुतपदकमले नित्योत्सवशीले ।
जयदेव जयदेव जय केशव हर गजमुख-
सवितर्नगतनयेऽहं चरणौ तव कलये ।।५।।

अर्थ—करुणा के सागर कलिमल को दूर करनेवाले, कद्रुसुतशेष पर शयन करने वाले अपने हाथ में लीला के लिए सायङ्कालीन विकसित होने वाले सुगन्धित कमल को धारण करने वाले, नीलमेघ के पटल के सदृश आभायुक्त, कमल पर उत्पन्न ब्रह्माजी के पिता, लक्ष्मी के स्वामी, सर्वत्र व्याप्त उदार भगवान् नारायण की मैं वन्दना करता हूँ, मैं अपने ज्ञानदृष्टि से उन्हें प्राप्त करता हूँ। हे देव ! आपकी जय हो, आपकी जय हो, हे केशव, हर, गजमुख, सूर्य, हे पर्वतराज की पुत्री आप सबके चरणों की मैं वन्दना करता हूँ। हे देव! आपकी जय, जय हो ।।१।।

पर्वतराज हिमालय की सुता पार्वती के साथ क्रीड़ा (लीला) युक्त, स्वयं अमङ्गल वेश धारण करने पर भी जगत् के प्राणियों का कल्याण करने के स्वभाव वाले, अपने स्वामी भगवान् नारायण की स्मृति चिन्तन में झूमने वाले, सर्पों की माला धारण करने वाले, जटा, भस्म, व्याघ्राम्बर से युक्त, रागरहित सुन्दर स्वरूप युक्त अपने मस्तक पर निर्मल गंगाजल को धारण करने वाले सम्पूर्ण जीवों के स्वामी, जिसकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती है, ऐसे कृपालु (दयालु) भगवान् शिव को मैं बारम्बार नमन करता हूँ। हे देव आपकी जय हो, जय हो ।।२।।

विघ्नरूपी अरण्य के लिए प्रचण्ड अग्नितुल्य, शास्त्रविरुद्ध नीति को दूर करने वाले, विपत्तिरूप पर्वत के लिए वज्रोपम, एक हाथ में अङ्कुश एवं दूसरे में पाश धारण करने वाले, जैसे—अर्क चारों ओर भ्रमण करते हैं, तद्वत् जिसका विजयध्वज चारों ओर चमचमाता हुआ लहरा रहा है, जन्म-मृत्यु रूपी भवपाश का जिन्होंने विशेषता से नाश किया हो, ऐसे भगवान् गणेश जी का निरन्तर हम झुक कर प्रणाम करते हैं। शिवा पुत्र गणेश विद्या रूपी ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उनके कृपा कटाक्ष से मन्द भी महान् ऐश्वर्यशाली अर्थात् विद्यायुक्त हो सकता है। हे देव ! आपकी जय हो, जय हो ।।३।।

कश्यप जी के पुत्र अतीव उदार, यमुना के पिता, तीनो कालों में विहार करनेवाले, जिसकी

सुगन्ध-से मन मोहित हो जाता हो, ऐसे मन्दार पुष्प की माला धारण करने वाले, अपार करुणा के सिन्धु कालरूपी अनल से अभय युक्त, कारण तत्त्व परमात्मा का विचार करने वाले, अपनी स्वल्प उष्मा से जगत् को ऊर्जा देने वाले हे देव ! आपकी जय, जय हो ।।४।।

वेद भी जिसके चरणकमलों की स्तुति करते हैं, असुर जाल (समुदाय) को पूर्ण रूप से नाश करनेवाली, हाथ में तलवार धारण करने वाली, देवताओं को अपनी कृपादृष्टि से पालन (रक्षा) करने वाली, कृष्ण पर वरदानों की वर्षा करने वाली, जिसकी लीला एवं गुणों की कोई सीमा नहीं, अत: देवताओं के द्वारा वन्दित चरणकमलयुक्त, सर्वदा उत्सव करने के स्वभाववाली हे देवि ! तुम्हारी जय हो, जय हो ।।५।।





सम्पर्क सूत्र

पवन कुमार

498/28 साउथ सिविल लाइन,
मुज्जफरनगर, उत्तर प्रदेश पिन कोड : 251001
फोन नं. : 09359984709
काशी मुमुक्षु भवन सभा, विट्ठौ चौक, अस्सी, वाराणसी

फोन नं. : 09359984709